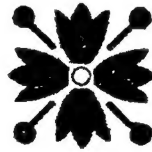
कल्याण कथा कोष

[प्रथम खण्ड]

संकलयिता एवं संयोजक
प्रखरवक्ता बालब्रह्मचारी पण्डितरत्न प्रवर्तक

पं. र. श्री. कल्याणऋषिजी महाराज



प्रकाशक
श्री अमोल जैन ज्ञानालय
धुलिया ४२४००१ (महाराष्ट्र)

सुबोध लघु कथाएँ

पुस्तक : कल्याण कथा कोष

(प्रथम भाग) (चतुर्थ संस्करण)

पृष्ठ संख्या - ३५२

प्रकाशक :-

श्री अमोल जैन ज्ञानालय

कल्याण स्वामी रोड

पो. धुलिया (महाराष्ट्र)

*चतुर्थ संस्करण

११०० प्रति

सन १९९४

मुद्रक :

नंदलाल हुकमचंदजी रुणवाल.

मे. रुणवाल प्रिंटर्स, ग. नं. २, धुलिया.

☎ : २३४५०

सहुलियत मूल्य : १२=०० (बारा रुपये मात्र.)



अपनी बात

सव्वा कहा धम्मकहा जिणेई ।

धर्मकथा सब कथाओ को जीत लेती है अर्थात् उत्तम कथा वही कही जा सकती है, जिसमे धर्म (अहिसा, सयम और तप) की प्रेरणा मिलती हो ।

आगम साहित्य के चार विभाग किये जाते है ।—(१) द्रव्यानुयोग, (२) गणितानुयोग (३) चरण करणानुयोग और (४) कथानुयोग । इनमे से चौथा सुगम होने से सर्वजन-भोग्य है ।

मनुष्य प्रारम्भ से ही कथा-प्रेमी रहा है । यही कारण है कि अनुभवियों ने अपना सन्देश कथा के माध्यम से प्रकट करने का सत्प्रयास किया है जैसे:–

स्नान के बाद किसी अछूत के स्पर्श से अपने को अपवित्र मानने वाले आद्य शकराचार्य से जब यह कहा गया –"शरीर सबका अपवित्र ही है और आत्मा सबकी पवित्र ही है । आपके ही कथनानुसार ब्रह्म सत्य है, जगत मिथ्या है, जीव ब्रह्म ही है, दूसरा नही, जो ब्रह्म आप मे है, उसी से मेरे ब्रह्म का सस्पर्श हुआ है तो कौन सा अनर्थ हो गया ? जहाँ अद्वैत है वहाँ छूआछूत की भावना कैसे रह सकती है ? तब पुन स्नान करने का विचार स्थगित कर उस अछूत को प्रणाम करते हुए वे अपने निवास की ओर लौट आये । इन घटनाओ से जहाँ ज्ञान को आचरण मे लाने की प्रेरणा मिलती है, वही सत्य को स्वीकारने का साहस रखने की भी (कथा—१३०)

देर मे आने वाले याचक को दूसरे दिन सुबह आने का आदेश देने वाले युधिष्ठिर को समझाने की दृष्टि मे भीम ने नगारा बजाया । किसी सुभट द्वारा पूछे जाने पर उत्तर दिया—"मै इस खुशी मे नगारा बजा रहा हूँ कि मेरे बडे भाई ने काल पर विजय प्राप्त कर ली है, उन्हें कल सुबह तक अपने जीवित रहने का पूरा विश्वास है" यह सुनते ही व्यग से तिलमिलाकर युधिष्ठिर ने खाली हाथ लौटे याचक के घर दानशाला से अन्न तत्काल पहुँचवा

दिया जीवन का कोई भरोसा नहीं है, इसलिए जितनी जल्दी जितना भी हो सके, उतना परोपकार किया जाना चाहिए-ऐसी प्रेरणा इस घटना से मिलती है।(कथा-१३६)

चाँदी और सोने के टुकड़े उठाने की सलाह देने वाले साथियों से-'इतनी दूर से इतने दिनों तक जिस लोहे का भार मैं उठाये रहा, उसे भला कैसे छोड़ सकता हूँ ?"-ऐसा कहने वाले लोहवणिक् की कथा में बखूबी यह बात कह दी गई है कि कट्टरपन्थी अविवेकी लोग परम्परागत अन्धविश्वासों एवं मिथ्यात्वों से चिपके रहते हैं। समझ में आने पर भी सम्यक्त्व को स्वीकार नहीं करते। (कथा २५२)

कहाँ तक गिनायें ? "कल्याण कथा कोष" का यह प्रथम खण्ड आपके सामने है ही, सब जानते हैं कि वासना-विकारवर्धक अश्लील कथा साहित्य बाजार में छाया हुआ है। ऐसी स्थिति में सदाचारवर्धक विशुद्ध कथा साहित्य को जनता के हाथों में पहुँचाने की आवश्यकता और भी बढ़ गई है। तीन सौ इकतीस लघु कथाओं की इस पुस्तक में उसी आवश्यकता की पूर्ति का एक साधारण-सा प्रयास किया जा रहा है।

लघुकथाओं के इस विशाल संकलन की भाषा को सजाने-संवारने तथा विस्तृत कथावस्तु को संक्षिप्त करने का सफल प्रयास अनुभवी सम्पादक काव्यतीर्थ मुनि द० श्री शान्तिप्रकाशजी 'सत्यदास' एम. ए. (संस्कृत) ने किया है। जो सोने में सुगन्ध के समान है।

प्रकाशकीय

'कल्याण कथा कोष' का यह प्रथम भाग का चतुर्थ संस्करण हो रहा है, यह स्पष्ट ही पुस्तक की लोकप्रियता का प्रमाण है।

हमारी संस्था के मार्ग-दर्शन एवं प्रेरणस्त्रोत स्व. पंडितरत्न गुरुदेव श्री कल्याण ऋषिजी महाराज साहित्य सर्जक ही नहीं, समाज संघटक, विद्वदरत्न चिन्तक और ज्ञान प्रसारक भी थे । आप अंततक स्थविर अवस्था में प्रतिक्षण जागरुक एवं कार्यशील रहकर समाज को सद्साहित्य, स्वाध्याय एवं ज्ञान की महान प्रेरणा देते रहते थे ।

आज बढती हुई महँगाई के समय में भी हम सहूलियत मुल्य में पाठकों को सुरुचिपूर्ण, शिक्षाप्रद तथा जीवन निर्माणकारी साहित्य दे रहे हैं, आशा है पाठक इसका समुचित उपयोग कर जीवन को कृतार्थ करेंगे।

विनीत :-

प्रा. प्रेमसुख कन्हैयालाल छाजेड

मंत्री; श्री अमोल जैन ज्ञानालय,

धुलिया.

सम्पादकीय

कल्याण करने वाली लघुकथाओं का यह सुविशाल संकलन प्रखर वक्ता पण्डितरत्न मुनि श्री कल्याणऋषिजी म० सा० के अथक परिश्रम का एक सुफल है—प्रसाद है। दीक्षा जीवन के प्रारम्भ से ही आपको ऐसी कथाओं में विशेष रुचि रही है। अपने धार्मिक प्रवचनों को मार्मिक एवं मनोरंजक बनाने के लिए प्रसंगानुसार आप इन कथाओं का उपयोग करते रहे हैं।

आपके द्वारा संकलित हजारों कथाओं में से चुनी हुई ग्यारह सौ कथाओं के स्रोत ये हैं :—

(१) इनसे सीखें
(२) कथाकल्पतरु (प्रथम भाग)
(३) कुछ सत्य, कुछ तथ्य
(४) कुछ सुनी कुछ देखी
(५) फूल और शूल
(६) मुस्लिम महात्माओ (गुजराती)
(७-११) वक्तृत्वकला के बीज (पाँच खण्ड)
(१२-१३) वीरकथामृत दो खण्ड (गुजराती)
(१४) श्री सुबोधक कथा सागर (गुजराती)
(१५-१७) हस्तलिखित कथा संग्रह [तीन खण्ड]
(१८-२०) हीरक हार [तीन भाग]

इनमें से "दृष्टान्त दिग्दर्शन" नामक एक सौ एक कथाओं का संकलन निकल चुका है। शेष ९९९ कथाएँ "कल्याण कथा कोष" नाम से तीन खण्डों में एक साथ निकल रही हैं। प्रथम खण्ड में ३३१ कथाएँ हैं।

इस खण्ड में "अघोरी" से 'दया' तक अकारादि क्रम से ९६ विषयों पर ३३१ कथाएँ दी गई हैं, इसलिए यह स्वाभाविक है कि किसी-किसी विषय पर अनेक कथाएँ हों। 'अभिमान' पर सबसे अधिक १६ कथाएँ हैं, इसी प्रकार 'अविवेक' पर १४, 'त्याग' पर भी १२, 'क्रोध' पर १३, 'आचरण' पर ११, 'आचार्य' 'अहिंसा' 'उपदेश' पर १०-१०, 'आत्मा' 'असंतोष' 'चतुराई' पर ७-७ तथा शेष विषयों पर इससे कम कथाएँ हैं।

प्रत्येक कथा मे दो-दो सुभाषित रखे है, एक प्रारम्भ में और दूसरा अन्त मे।

कथा की आत्मा को सुरक्षित रखते हुए प्रत्येक कथा का इस प्रकार पुनर्लेखन किया गया है कि वह एक पृष्ठ मे समाविष्ट हो जाय। १–२ कथाओ को छोडकर प्राय सभी एक पृष्ठ में आ गई है। आशा है यह सग्रह पाठको को रुचिकर और उपयोगी लगेगा।

शान्तप्रकाश 'सत्यदास'



बालब्रह्मचारी, जैनाचार्य शास्त्रोद्धारक

स्व. पूज्य श्री .अमोलक ऋषिजी महारा

(संक्षिप्त जीवन–परिचय)

१ **जन्म स्थान :** भोपाल (मालवा)।

२ **माता-पिता :—** सुश्राविका श्रीमती हुलासाबाई और धर्मप्रेमी श्रीमा [illegible] कस्तूरचन्दजी कांसटिया (ओसवाल बड़े साथ)।

३ **जन्मतिथि :—** संवत् १९३३ भाद्रपद कृष्णा चतुर्थी के दिन प्रातः [illegible] ६ बजे।

४ **दीक्षा के समय आयु :—** ग्यारह वर्ष, ५ महीने और [illegible] दिन।

५ **दीक्षातिथि :—** संवत १९४४ फाल्गुन कृष्णा दूज गुरुवार।

६ **दीक्षा स्थान :—** आस्टा (भोपाल)

७ **दीक्षा गुरु :—** सरल स्वभावी मुनि श्री चेनाऋषिजी म०

८ **बत्तीस सूत्रों का अनुवाद —** संवत् १९७२ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] पुष्य नक्षत्र में [illegible] में हैदराबाद में प्रारम्भ किया गया [illegible] संवत् १९७५ में मार्गशीर्ष कृष्णा पञ्चमी को अर्थात् कुल तीन वर्ष [illegible] [illegible] दिनों में समाप्त हुआ।

९ **आचार्यपद —** संवत् १९८९ की ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशी को बुध [illegible] के दिन इन्दौर (मध्यभारत में [illegible] [illegible] [illegible], की [illegible] में [illegible] [illegible] [illegible] को "आचार्यपद" प्रदान किया गया था।

१०. **वृहत साधु-सम्मेलन —** संवत् १९९० में चैत्र शुक्ला [illegible] [illegible] के अवसर पर वृहत् साधु सम्मेलन हुआ था, उसमें [illegible]

होकर अनेक महत्वपूर्ण समस्याओ को हल करने मे आपने सफल सहयोग दिया।

११. विहार क्षेत्र :- दक्षिण-भारत, हैदराबाद, कर्णाटक, बेंगलौर, मैसूर, महाराष्ट्र, खानदेश, मध्यप्रदेश, बरार, गुजरात, कच्छ, काठियावाड मेवाड, मारवाड, गोडवाड, देहली, पजाब, शिमला इत्यादि।

१२. संयमकालीन जीवन :- आप श्री बालब्रह्मचारी थे। सभी सम्प्रदायो के साधुगण और श्रावकवृन्द की आपके प्रति सहानुभूति और भक्ति थी। आप शान्त, दान्त, तपस्वी, मनस्वी, सुकवि और साहित्यकार थे। अपने युग मे एक आदर्श-साधु के रूप मे आपश्री की ख्याति थी।

१३. साहित्य सेवा :- आपश्री के द्वारा सम्पादित, सकलित, अनूदित और रचित ग्रन्थो की कुल सख्या १०२ है। इनकी कुल प्रतियाँ १'७६, ३२५ प्रकाशित हुई। इन ग्रन्थो की मूल (प्रेस) कापी के पृष्ठों की सख्या लगभग पचास हजार थी।

१४. शिष्य समुदाय :- आपके द्वारा दीक्षित १४ कुल शिष्य थे।

१५. संयमकाल :- पूज्यश्रीजी कुल ४८ वर्ष ६ माह १२ दिन तक सयम पर्याय का प्रसन्नता पूर्वक पालन करते रहे।

१६. पुण्यतिथि - सवत् १९९३ के दूसरे भाद्रपद की कृष्णा चतुर्दशी की अर्थात् १४ सितम्बर १९३६ की उदय रात्रि को ११॥ बजे धूलिया (पश्चिम खानदेश) मे समाधिपूर्वक शान्ति के साथ पूज्यश्री ने महाप्रयाण किया था, उस समय आपकी आयु साठ वर्ष नौ दिन की थी।

□

अनुक्रम

(कथा के शीर्षकों का जो क्रमांक है वही इसका पृष्ठांक भी है। कथा क्रमांक १२० पृष्ठ १२१ पर है। अतः १ पृष्ठ बढ़ाकर क्रम देखें।)

कल्याण कथा-कोष



[प्रथम भाग]



श्री कल्याणऋषिजी

१ : अचौर्य

क्या बडे चोर छोटे चोरों को फांसी पर लटकाते हैं ?

हाँ, इगलिश मे इस आशय की यह कहावत प्रसिद्ध है--Great thieves hang little thieves (ग्रेट थीव्ज हेग लिटिल थीव्ज)

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये--

किसी शहर में एक सेठ के घर कोई ब्राह्मणी रसोई बनाने जाया करती थी। वह हमेशा भीगे हुए (गूंदे हुए) आटे का एक लोया अपने कपड़ो में छिपाकर ले जाती और घर पर उसकी रोटियां बनाकर खा लिया करती थी। ऐसा करते हुए उसे कई दिन बीत गये।

एक दिन लोया छिपा रही थी कि सहसा ब्राह्मणी पर सेठ की नजर पड़ गई। सेठ ने इस चोरी का रहस्य प्रकट करने के लिए एक उपाय सोचा। उसके अनुसार रसोईघर मे जाकर सेठ जोर से चिल्ला उठा--"माँ जी! माँ जी! आपके कपड़ो मे बिच्छू।"

यह सुनकर ब्राह्मणी एकदम खड़ी हो गई, वह अपने कपड़े झाड़ रही थी कि सहसा आटे का गोला जमीन पर गिर पडा। सबके सामने उसकी चोरी पकड़ी गई। पोल खुलने से वह बहुत लज्जित हुई। आटे का वह गोला उसे सचमुच बिच्छू की तरह ही काटने लगा। अपने कृत्य के लिये उसने सेठजी से बार-बार क्षमा माँगी किन्तु उसे क्षमा नही मिल सकी। उसे काम से अलग कर दिया गया। उसी दिन किसी दूसरी ब्राह्मणी को बुलाकर उसे रसोई बनाने का काम सौंप दिया गया।

चोरी के ऐसे दुष्परिणाम देख-सुनकर सभी को अचौर्य व्रत अगीकार करना चाहिए, चोरो को रंगे हाथो पकड़ना चाहिए।

चौरे गते वा किमु सावधानम् ?

(चोर के चले जाने पर क्या सावधानी ?)



२ : अचौर्य

चोरी अकीर्तिकर है–अनार्याचरण है–सदा साधुओ के द्वारा निन्दनीय है ? लिखा है–अदत्तादाणं अकित्तिकरण अणज्जं साहुगरहणिज्जं।

कोई दृष्टान्त ? सुनिये—

मण्डूक नामक दुर्दम्य चोर की तलाश में फटे-पुराने वस्त्र पहने राजा को किसी पुराने मन्दिर में बैठे देखकर आधी रात के समय किसी ने सहसा कहा—"कौन हो तुम ?" राजा ने उत्तर दिया–"मैं एक गरीब परदेशी हूँ" । इस पर आगन्तुक ने कहा—"तो चलो मेरे साथ, मैं तुम्हारी गरीबी मिटा देता हूँ ।"

राजा आगन्तुक के साथ चल पड़ा । वह मंडूक ही था । दोनो ने मिलकर चोरी की । माल उठाकर वे एक पुराने बगीचे में गये । जहाँ मण्डूक चोर अपनी बहन के साथ रहा करता था । मण्डूक ने आगन्तुक को अपना अतिथि बताते हुए बहन से कहा कि इनके पैर धो डालो । बहन राजा को कुए के पास ले गई; परन्तु उसके रंग-रूप-स्पर्श से प्रभावित होकर बोली–"मेरे भाई ने छिपे शब्दो में आपको कुए मे धकेलने की आज्ञा दी है, किन्तु लक्षणों से आप कोई महापुरुष जान पड़ते है; इसलिए मैं आपको बचाना चाहती हूँ, आप चुपचाप यहाँ से भाग जाइये । राजा तेजी से भागकर महल में जा पहुँचा । इधर बहन थोड़ी देर बाद जोर से चिल्लाई–"भाग गया ! पकड़ो !" मण्डूक ने पीछा किया; किन्तु राजा नजर ही न आया ।

दूसरे दिन मण्डूक एक जुलाहा बनकर वस्त्र बुन रहा था । राजा ने चेहरे से उसे पहिचान कर राजमहल में सादर बुलाया, कहा कि यदि आपको कोई आपत्ति न हो तो आपकी बहन से मैं विवाह कर सकता हूँ । मण्डूक ने स्वीकृति दे दी । विवाहित होकर राजा ने अपनी नई रानी की सहायता से चोरी का सारा माल महल में मंगवा लिया, फिर मण्डूक को दण्ड देकर माल मालिकों के पास पहुँचवा दिया । चोरी का ऐसा ही कुफल होता है ।



३ : अचौर्य

क्या लोभ मनुष्य को अन्धा बना देता है ।

हाँ, मूर्ख पक्षी दाना देखता है, फन्दा नही–

The foolish bird sees the grain but not the snare. (दि फुलिश बर्ड शीज दि ग्रेन बट नॉट दि स्नेयर)

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक बालक चोरी के अपराध मे रगे हाथों पकडा गया । वह जेल मे डाल दिया गया । उसकी माँ उसे देखने आई, परन्तु पुत्र ने माता से मिलने की अनिच्छा प्रकट की । इससे जेलर को आश्चर्य हुआ । माता ने बहुत गिडगिडा कर प्रार्थना की कि एक बार किसी तरह मुझे अपने पुत्र का मुंह दिखा दीजिए । जेलर ने अपने आदमियों से पकड़वाकर जबरदस्ती माता के सामने उसे उपस्थित किया । बालक माँ के सामने पीठ करके खड़ा हो गया ।

जेलर ने इस विचित्र व्यवहार का कारण पूछा–तो उसने बताया कि प्रारम्भ मे एक दिन मैं एक कूंजडे की टोकरी से चार आम चुरा कर घर लाया तो माँ ने शाबाशी दी । धीरे धीरे मैं चोरी की कला सीख गया और बड़ी चोरियाँ करने लगा । यदि माँ ने प्रारम्भ में चुराये गये चार आमो को मसलकर फेंक दिया होता और उनके लिए चार चपतें मेरे गालो पर कसकर लगा दी होती तो मेरी आज यह दुर्दशा न होती, जो हुई है । यह मेरी माँ नही दुश्मन है, इसी के प्रोत्साहन से मैं पक्का चोर बनकर अपमानित हुआ हूँ; इसीलिए मैं इसका मुंह देखना नही चाहता ।

जेलर ने सोचा कि कैदी को सुधारना ही जेल का उद्देश्य है, यह कैदी सुधर चुका है, क्योंकि इसे अपने दुष्कृत्य का पश्चात्ताप हो रहा है । उसने राजा से सिफारिश करके उसे जेल से मुक्त करवा दिया ।

"मियाँ चोरे मूठे । अल्ला चोर ऊँटे ।"

४ : अचौर्य

क्या संसार मे चोरी की भरमार है ?

हाँ, एक गुजराती कवि के शब्दो मे–

चोर चोर चोर ए तो चारे वाजू चोर ।
कोई धन चोर कोई मन चोर कोई कोईना कपडा चोर ॥

चोरों से भरे इस संसार में जो अचौर्य व्रन अंगीकार करके प्रामाणिक जीवन व्यतीत करते है, वे सुखी रहते है ।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक जैन साधु का चातुर्मास मन्दसौर मे था–उस समय की घटना है । एक भाई दर्शन के लिए उनके पास गया । उसके पास एक शीशी थी । उसे वह लौटते समय वही (धर्मस्थानक में) भूल गया ।

जैन साधु को यह जानने की इच्छा हुई कि देखें इस शीशी मे क्या है; परन्तु उसी समय उन्हें साधुदीक्षा के समय ली हुई अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण हो आया–

"सव्वाओ अदिन्नादाणाओ वेरमणं ॥"

(सब प्रकार के अदत्तादान से विरत होता हूँ) अदत्त (जो नही दिया गया है, उस) के आदान (ग्रहण) से व्रत भग होता है, फलस्वरुप साधुने उसे नहीं छुआ । दूसरे दिन वह आदमी आया । उसकी शीशी ज्यों की त्यों उसी स्थान पर रखी मिली । उसने कहा कि इस शीशी मे तेजाब भरा था । यदि कोई इसे छू लेता तो उसकी उँगलियाँ जल जाती । अच्छा हुआ, जो आप लोगों मे से किसीने उसे नही छुआ ।

धर्म एवं हतो हन्ति
धर्मो रक्षति रक्षितः ।

(यदि धर्म का त्याग किया जाय तो वह मार डालता है और उसकी रक्षा की जाय तो वह भी रक्षा करता है)



५ : अचौर्य

क्या की हुई चोरी किसी तरह खुल जाती है ?

हाँ—क्योंकि दुनिया भर से चोरी की बात भले ही छिपा ली जाय, मन से नही छिपाई जा सकती । मन सभी शारीरिक चेष्टाओं का प्रेरक होता है, इसलिए किसी-न-किसी तरह बात खुल ही जाती है, कहावत भी है—

"मन छानी चोरी नही होती ।।"

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

एक गाँव की बात है । एक सेठ का घर ऐसे पड़ौसियो के बीच था, जो दाढ़ी रखते थे । एक बार उनके घर मे चोरी हुई, उन्हें पड़ौसियो पर ही शका थी । पुलिस मे शिकायत करके सेठ ने पाँच-सात व्यक्तियों को पकड़वा दिया । चोरी उनमे से किसी एक ने की थी, सब ने नही । बादशाह चाहते थे कि किसी तरह असली चोर का पता लगाकर उसी को सजा दी जाय । चोर पकडने का कार्य उसने वजीर को सौंपा ।

वजीर ने सबको एक कतार मे खडा कर दिया, फिर कहा कि मै एक जादू जानता हूँ, उससे असली चोर का तत्काल पता चल जाता है । आप लोगो मे से भी चोर एक ही आदमी है । मुझे पता लग गया है कि वह कौन है, क्योंकि मेरे जादू के बल पर उसकी दाढी मे तिनका पैदा हो गया है ।

वजीर ने यह बात इतने आत्मविश्वास के साथ कही कि असली चोर काँप गया और उसने तिनका निकाल फेकने के लिए दाढी पर हाथ फिराया, परन्तु इसी बात से वह पकड़ मे आ गया । वैसे जादू के बल पर ही दाढी मे तिनके पैदा नही हुआ करते । वजीर ने चोर को पकडने के लिए एक चाल चली थी, वह सफल रही और उसी दिन से यह कहावत चल पड़ी—

"चोर की दाढी मे तिनका ।।"



६ : अचौर्य

क्या चोरी ही संकटों का प्रमुख कारण है ?

हाँ, जो चोरी नहीं करता–अदत्त को ग्रहण नहीं करता, वह विपत्तियों का त्याग कर देता है अर्थात् संकटों से अपने आपको बचा लेता है–

परिहरति विपत्ति
यो न गृह्णात्यदत्तम् ।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

मेवाड़ के एक महाराणा के पाँव के अँगूठे से सोने की एक अँगूठी रात को पहरेदार ने चुरा ली। महाराणा अर्धनिद्रित अवस्था मे थे। वे समझ गये कि अँगूठी चुराई जा रही है; फिर भी चोरी की वृत्ति पैदा होने का कारण जानने के लिये वे उस समय चुप रहे।

दूसरे दिन इसी प्रयोजन से भेजे गये गुप्तचरों ने सूचित किया कि उसकी पत्नी के प्रसूति खर्च के लिये उसे धन की आवश्यकता थी।

कुछ दिनों बाद धन की व्यवस्था करके पहरेदार अँगूठी लौटाने आया। रात को स्पर्श पाकर राणा ने बनावटी गुस्से से कहा–"क्या अँगूठी चुराने आया है ?"

चोर ने कहा–"चुराई हुई अँगूठी लौटाने आया हूँ, आकस्मिक आवश्यकता पड़ जाने से मजबूर होकर मुझे यह चोरी करनी पड़ी थी।"

राणा–"मैं जानता हूँ; परन्तु चोरी आखिर चोरी है–दण्डनीय अपराध है, कल से तुम्हारा वेतन दुगना कर दिया जायगा–यही तुम्हारे लिए दण्ड है।" पहरेदार ने धन चुराया तो अपनी उदारता से राणा ने पहरेदार का मन चुरा लिया।

कदम- कदमपर हैं खड़े, जग में धन के चोर।
लेकिन बिरले ही यहाँ, मिलते मन के चोर।।



७ : अचौर्य

क्या चोरी से अपयश होता है ?

हाँ, चोरी से गुण गौण हो जाते है–विद्या विडम्बित होती है, वदनामी सिर पर सवार हो जाती है–

गुणा गौणत्वमायान्ति, याति विद्या विडम्बनाम्।
चौर्येणाकीर्त्तयः पुंसाम्, शिरस्याददधते पदम् ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

मोरवी शहर की वात है। एक दयालु सेठ की दूकान पर एक भिखारी आटा मांगने आया। उसने कहा कि दो घंटे वाद घर पर आना, यह दूकान है। ठीक दो घण्टे वाद सेठजी घर पर पहुँचे। वह भिखारी भी आ पहुँचा। उसने मौका देखकर एक तपेली चुरा ली। सेठ ने यह देख लिया था। उसने आटा दान करते हुए भिखारी से कहा–"भाई! आटे के साथ घी भी लेते जाओ; अन्यथा वाटियाँ चुपड़ोगे कैसे ?"

भिखारी ने कहा–"किसमे लूँ ?"

सेठ ने चुराई हुई तपेली भिखारी की झोली से निकाल कर उसे घी से भर दिया।

भिखारी ने अत्यन्त लज्जित होकर भविष्य में कभी चोरी न करने की प्रतिज्ञा करली।

एकस्यैक क्षण दुःख मार्यमाणस्य जायते ?"।
सुपुत्र पौत्रस्य पुन—र्यावज्जीव हृते धने ॥

(मारे जाने वाले अकेले जीव को क्षणभर के लिए दुःख होता है; परन्तु जिसका धन चुरा लिया जाता है, उसको, उसके पुत्रों को और पौत्रों को जीवन भर के लिए दुःख होता है।)

८ : अचौर्य

क्या चोर दण्डनीय होता है ?

हाँ; पेट भरने के लिए जितना कुछ जरूरी है उतने पर ही प्राणी का अधिकार है, उससे अधिक पर जो अपना अधिकार समझता है, वह चोर दण्ड का पात्र है--

यावद् भ्रियेत जठरं,
तावत्स्वत्वं हि देहिनाम् ।
अधिकं योऽभिमन्येत,
स स्तेनो दण्डमर्हति ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये--

पंडित बनारसीदास जी के घर पर रात को नौ चोर घुसे। काली मिर्च का ढेर देखकर सबने अपनी गठरियाँ बाँधकर परस्पर एक दूसरे की गठरी उठवा दी, परन्तु नौवाँ एक चोर अपनी गठरी के पास खड़ा रहा, उसे कौन उठवाता? शेष अन्य आठ चोरों के मस्तक पर गठरियाँ लदी थीं, सो वे तो सहायता कर नहीं सकते थे, ऐसी स्थिति में पण्डितजी ने यह काम किया। चोर चल पड़े, किन्तु मार्ग में उन्हें विचार आया कि आखिर नौवें भाई की गठरी उठवाने वाला था कौन? उसका पता लगाने के लिए वे फिर से घर आये, पंडितजी ने कहा कि नौवें चोर की दशा देखकर मुझे दया आ गई थी, इसलिए उसकी गठरी मैंने उठवा दी थी। एक चोर के प्रति इतनी सहानुभूति देखकर सबका दिल बदल गया, उन्होंने माल तो लौटाया ही, भविष्य में चोरी न करने की प्रतिज्ञा भी ले ली।

अदत्तं नाददीत स्वम्
परकीयं क्वचित्सुधीः ।

(न दिये हुए पराये धन को बुद्धिमान कभी न ले।)



९ : अचौर्य

क्या असन्तोष से दुखी प्राणी ही लोभ से कलुषित होकर चोरी करता है ?

हाँ; उत्तराध्ययन सूत्र मे लिखा है—

अतुट्ठिदोसेण दुही परस्स
लोभाविले आययई अदत्तं ।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

एक महिला की बचपन से ही चोरी करने की आदत पड़ गई थी। जहाँ कही भी वह जाती, कुछ-न-कुछ उठा ही लाती। उसका पुत्र माँ की इस आदत से बहुत परेशान था। एक बार विवाह के अवसर पर निमत्रण पाकर पुत्र अपनी माँ के साथ ननिहाल गया। मार्ग मे उसने माँ को अच्छी तरह समझा दिया कि वह अपने को संयमित रखे—ऐसा न हो कि घर की इज्जत सबके सामने धूल में मिल जाय। माँ ने कहा कि वाह मै कोई पागल थोड़े ही हूँ, जो घर की इज्जत का भी खयाल नही रखूंगी। दोनो उत्साहपूर्वक विवाहोत्सव में शामिल हुए। उत्सव समाप्त होने के बाद जब बहन-बेटियों को बिदाई दी जा रही थी, तभी मौका पाकर माँ ने दो-चार ब्लाउज पीस उठा लिये। बेटे की उस पर नजर पड गई, तत्काल उसने टोका— "माँ ! यह चोरी क्यो कर रही हो ?" माँ बोली—"मै चोरी कहाँ कर रही हूँ ? अपनी आदत को थोड़ी-सी खुराक दे रही हूँ ॥"

विशन्ति नरकं घोर, दुःखज्वालाकरालितम् ।
अमुत्र नियतं मूढाः, प्राणिनश्चौर्यचर्विताः ॥

(चोरी से चर्वित (कुचले) प्राणी मूढ़ होते है। वे निश्चित रुप से दुःख रुपी ज्वाला से भयकर—ऐसे घोर नरक मे प्रवेश करते हैं।)

१० : अचौर्य

क्या चोरी अपयशकारक अनार्य कर्म है ?

हाँ, यह सदा भले आदमियों के द्वारा निन्दनीय है–

"अदत्तादाणं अकित्तिकरणं अणज्जं सया साहुगरहणिज्ज ?"

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

दादाजी कोंडदेव शाहजी के राज्य प्रवन्धक थे । शिवाजी के जीवन में अच्छे, संस्कारों का श्रेय उन्हीं को दिया जाता है। जिसका जीवन स्वयं सुसंस्कृत हो, वही दूसरों के जीवन को सुसंस्कारसम्पन्न बनाने में सफल हो सकता है। आपको सुनकर आश्चर्य होगा कि वे जो अँगरखा पहनते थे, उसकी एक वाँह आधी रहती थी, जो उनके सुसंस्कृत जीवन का प्रमाण थी । कैसे ?

वात असल में यों हुई कि भ्रमण करते हुए कोंडदेव ने भूल से एक वार शाहजी के उद्यान में से एक फूल तोड लिया, वाद में उन्हे विचार आया कि यह कार्य तो चोरी का है। फिर पछताते हुए उन्होंने यह निर्णय किया कि जिस हाथ से फूल तोड़ा गया है, उसे कटवा दिया जाय, वे हाथ कटवाने की तैयारी कर ही रहे थे कि जीजावाई ने यह खवर पाते ही वहाँ पहुचकर बड़ी मुश्किल से समझा-बुझाकर हाथ के वदले अँगरखे की आधी वाँह कटाने को उन्हें सहमत कर लिया। तव से जीवन भर कोंडदेव ने वैसा ही अँगरखा पहिना ।

वनेऽपि सिंहा-मृगमांसभक्षिणो बुभुक्षिता नैव तृण चरन्ति ।

एवं कुलीना व्यसनाभिभूता न नीचकर्माणि समाचरन्ति ॥

(पशुओं का मांस खाने वाले सिंह जगल में भूखे रहने पर भी घास नही खाते, इसी प्रकार कुलीन (उच्चवंशीय) व्यक्ति संकटों से घिर कर भी कभी नीच कर्म (चोरी आदि) नहीं करते ।)

११ : अतिवर्जन

क्या किसी भी चीज की अति बुरी होती है ?

हाँ, इसीलिए अति को सब जगह छोड़ने के लिए कहा जाता है—

अति सर्वत्र वर्जयेत् ।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

एक राजा संगीत का अत्यन्त प्रेमी था। उसने सभी कर्मचारियों को आदेश दे दिया कि यदि किसी को मुझसे बात करनी हो तो वह संगीत में ही करे।

एक दिन वे किसी बगीचे में घूमने गये कि इधर उनके महल में आग लग गई। चाकर तानपूरा लेकर भागा-भागा बगीचे में पहुँचा। वहाँ तानपूरे के तारों को मिलाने के बाद आलाप, तान और पलटों का प्रयोग करते हुए आधे घण्टे में इतना कह पाया—

"राजाजी! तोरे महल में आग लगी ..." तब तक इधर महल जलकर राख हो गया। राजाजी अपने चाकरों को आग बुझाने का आदेश ही नहीं दे पाये। महल खोकर उन्हें अकल आई। उन्होंने प्रत्येक समाचार संगीत में सुनाने और संगीत में ही बातचीत करने का आदेश वापिस ले लिया। खजाने के धन से उन्हें रहने के लिए दूसरा महल बनवाना पड़ा। संगीत में रुचि होना बुरा नहीं है; परन्तु उसमें अत्यासक्ति बुरी है।

अति का भला न बरसना,
अति की भली न धूप।
अति का भला न बोलना,
अति की भली न चूप ॥



१२ : अधिकार

अधिकार का पद पाकर जो उपकार नही करता, क्या वह धिक्कार का पात्र है?

हाँ,

अधिकारपदं प्राप्य, नोपकारं करोति यः।
अकारस्य ततो लोप. ककारो द्वित्वमाप्नुयात् ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

फ्रान्स की राज्यक्रान्ति के समय एक घुडसवार सेनापति सैनिको की एक टुकड़ी के साथ मोर्चा सभालने के लिए चला जा रहा था। मार्ग में एक पैदल सैनिक ने दूसरे से कहा कि हम लोग पैदल चल रहे है और सेनापति आराम से घोड़े पर बैठा है। यह खुसर-पुसर किसी तरह सेनापति के कान मे पड गई। वह तुरन्त उस सैनिक के पास जाकर बोला कि भाई! मै घोड़े पर बैठे–बैठे थक गया हूँ, थोडी देर तुम्ही बैठो, किन्तु सभी साथी सैनिक तुम्हारे भरोसे रहेगे, उन्हे ठीक मार्ग-दर्शन करते रहना होगा। पैदल सैनिक घोड़े पर सवार हो गया, थोडी ही देर बाद शत्रु पक्ष से एक गोली आई और घुड़सवार उससे घायल होकर नीचे गिर पड़ा। सेनापति ने उसे समझाया कि पद आने पर आराम भी मिलता है और जिम्मेदारी भी बढ़ जाती है, पद काटो का ताज होता है आदि; और फिर तत्काल घोड़े पर सवार होकर सैनिकों को ठीक दिशा मे ले गया।

उन्नतं पदमवाप्य योलघु–हेलयैव स पतेदिति ब्रुवन्।
शैलशेखरगतः पृषद्गण–श्चारु मारुतधुतः पतत्यधः ॥

(नीच व्यक्ति ऊँचा पद पाकर शीघ्र ही गिर जाता है–ऐसा कहता हुआ पहाड़ की चोटी पर रहा हुआ जल विन्दुओं का समूह हवा के झोंके से नीचे गिर रहा है।)

१३ : अधिकार

क्या अधिकार उपकार के लिए होता है ?

हाँ; अधिकार का पद पाकर जो उपकार नहीं करता, उसके 'अधिकार' में से 'अ' का लोप होकर 'क' को द्वित्व हो जाता है अर्थात् ऐसा व्यक्ति धिक्कार का पात्र बन जाता है–

अधिकारपदं प्राप्य
नोपकारं करोति यः ।
अकारस्य ततो लोपः
ककारो द्वित्वमाप्नुयात् ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक बादशाह अपने अधिकार के अभिमान में चूर था। वह एक महात्मा के दर्शन करने गया। दर्शन और प्रणाम के बाद उसने प्रार्थना की कि मेरे लिए कोई सेवाकार्य हो तो बताइए। महात्मा जी ने भी मुस्कराते हुए कहा–"आप बहुत अच्छे समय पर आये, आस-पास ये मक्खियाँ बहुत देर से भिनभिना रही है, जरा आप इन्हें हटा दीजिए।"

बादशाह ने कहा–"यह तो मेरे बस की बात नही है।"

महात्मा–"मक्खियों पर भी जिसका वश नही है–अधिकार नही है, उसका वश मनुष्यो पर कैसे हो सकता है ? उसका अधिकार देश पर कैसे हो सकता है? और जिसके पास अधिकार नही है, उससे कोई वस्तु कैसे माँगी जाय ?"

बादशाह को अपनी तुच्छता का भान हो गया।

वह विनयपूर्वक उन्हे प्रणाम करके चला गया।

माण विणयविणासणो

(अभिमान विनय का नाशक है।)

१४ : अनशन

क्या सारे रोग पेट की गडबड़ से पैदा होते हैं?

हाँ; भोजन का व्यवस्थित पाचन न होने पर ही रोगों का जन्म होता है–

अजीर्णप्रभवा रोगाः ।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

कहते हैं, एक बार अश्विनीकुमारों ने महान् वैद्य वाग्भट से पूछा–

अभूमिजमनाकाशम्,
पथ्यं रसविवर्जितम् ।
सम्मतं सर्वशास्त्राणाम्,
वद वैद्य ! किमौषधम् ?

(हे वैद्य ! किसी ऐसी दवा का नाम बताओ, जो न जमीन पर पैदा होती हो और न आकाश में, किन्तु जो पथ्य हो, स्वादरहित हो और सभी शास्त्र जिसका समर्थन करते हों)

वाग्भट ने इस पर थोड़ी देर विचार किया। प्रारम्भ में प्रश्न एक पहेली जैसा विचित्र लग रहा था। परन्तु धीरे-धीरे वह सुलझता गया। उन्हें समझ में आ गया कि अनशन, उपवास या लंघन ही ऐसी औषधि हो सकती है जिसमें अभीष्ट समस्त गुण हों, बोले–

अभूमिजमनाकाशम्
पथ्यं रसविवर्जितम् ।
पूर्वाचार्यसमाख्यातम्,
लंघनं परमौषधम् ।

(लंघन ही वह श्रेष्ठ औषध है, जो न भूमि पर उत्पन्न होती है, न आकाश में; साथ ही जो पथ्य है–स्वादहीन है और पूर्वाचार्यों द्वारा समर्थित भी।)

*

१५ : अनासक्ति

हृदय में जब तक मूढ़ता हो, तभी तक विषयो से सुख मिलता है क्या ?

हाँ, तत्त्वज्ञों के विवेकी मन मे कहाँ विषय, कहां सुख और कहां परिग्रह ?

दधति तावदमी विषया: सुखम् स्फुरति यावदियं हृदि मूढता ।
मनसि तत्त्वविदां तु विवेचके क्व विषयाः क्व सुखं क्व परिग्रहः ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

वेष बदल कर घूमते हुए सचिव ने जब यह सुना कि बाप बेटे की तारीफ करता ही है; इसमे कौन सी बड़ी बात हुई ? ऐसा कोई सुनार कह रहा था तो उन्होंने दूसरे दिन राजसभा मे बुलाकर उस सुनार से कहा—"लो तेल से भरा यह सोने का कटोरा, इसे हाथ मे लेकर पूरे नगर मे चक्कर लगा आओ, एक बूंद भी गिरी तो तुम्हारा सिर नीचे गिरा दिया जायगा ।"

मार्ग में स्थान-स्थान पर संगीत और नृत्य के कार्यक्रम आयोजित किये गये थे . फिर भी सुनार एक बूंद भी छलकाये विना पूरा तेल का कटोरा लेकर राजमहल मे लौट आया । सचिव ने वही कटोरा उसे पुरस्कार में देते हुए कहा कि जिस प्रकार मृत्यु के भय से तुम्हारा ध्यान तेल पर केन्द्रित रहा, उसी प्रकार भरत चक्रवर्ती ससार मे रह कर भी संसार के सुखो से अनासक्त रहते हैं; इसीलिए वीतराग प्रभु ऋषभदेव उनकी प्रशसा करते है । यह पुत्र की प्रशंसा नही; बल्कि किसी अनासक्त राजा की प्रशसा है ।

ब्रह्मेन्द्ररुद्रमृग्य भाग्य विषयेषु वैराग्यम् ।

(ब्रह्मा, इन्द्र और शकर भी जिसे ढूंढ़ते रहते है, वह विषयों के प्रति अनासक्ति बहुत बड़े भाग्य से मिलती है ।)

१६ : अनासक्ति

क्या अनासक्त व्यक्ति अपने शरीर पर भी ममता नही रखते ?

हाँ, दशवैकालिक सूत्र कहता है–

अवि अप्पणोवि देहम्मि नायरन्ति ममाइयं ।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये––

राजा जनक को बड़े-बड़े ऋषि- महर्षि भी उस समय 'विदेह' कहा करते थे । मंत्री को उनके इस विशेषण का रहस्य समझ मे नहीं आया था । उसने पूछा–"महाराज ! देह में रहते भी आप विदेह (बिना शरीर वाले) कैसे ?"

राजा ने कहा–'कल आप भोजन मेरे साथ करेंगे, आपके प्रश्न का उत्तर आपको उसी समय मिल जायगा ।"

दूसरे दिन सारे नगर में ढिढोरा पिटवा दिया कि मन्त्री का ऐसा अपराध पकड़ने में आया है कि जिसके दण्डस्वरुप कल भोजन के एक घण्टे बाद फाँसी दे दी जायगी । इधर राजा ने भोजन में व्यजन बिना मसाले का और मिठाई बिना गुड़ की फीकी-फीकी बनवाई । यथा-समय भोजन कराने के बाद मन्त्री से जनक ने पूछा–"भोजन कैसा लगा ?" मन्त्री ने कहा–"अच्छा ही होगा; लेकिन मुझे तो एक घण्टे बाद मरना है; इसलिए मेरी जीभ स्वाद लिए बिना ही भोजन को पेट मे धकेलती रही ।" राजा ने कहा–"आपको फासी नही लगेगी, आपके प्रश्न का उत्तर देने के लिए यह घोषणा कराई गई थी । मैं भी निरन्तर मरण का स्मरण करता रहता हूँ, इसलिए देह के भोगों में कोई स्वाद नही आता । यही कारण है कि देह में रहते भी लोग मुझे विदेह कहते है ।"

ममत्त छिंदए ताए, महानागोव्व कंचुयं ।

(जिस प्रकार अजगर कंचुक का त्याग करता है, उसी प्रकार साधक ममता का त्याग करे ।)

✱

१७ : अनासक्ति

क्या ममता ही दु:ख का कारण है?

हाँ. जिस वस्तु मे ममता होती है, उसी मे मुझे दु:ख होता है और जिस वस्तु की मै उपेक्षा करता हूँ, स्वभाव से सन्तुष्ट होकर उसी मे मै प्रसन्न रहता हूँ—ऐसा एक कवि ने कहा है—

यस्मिन् वस्तुनि ममता,
मम तापस्तत्र तत्रैव ।
यत्रैवाऽहमुदासे,
तत्र मुदा से स्वभावसन्तुष्ट. ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

महात्मा रब्बी किसी काम से कुछ दिनों के लिए अन्यत्र गये हुए थे । इधर उनके दो पुत्र किसी दुर्घटना से मर गये थे । बच्चों की माता बिरवरिया भी महात्मा की तरह तत्त्वज्ञ थी; फिर भी पुत्रों आकस्मिक निधन से वह शोकाकुल हो गई । कुछ समय बाद उसने अपने आपको समझा लिया कि जन्म मृत्यु का प्रवाह कोई रोक नही सकता, सयोग के साथ वियोग लगा ही हुआ है । उसने दोनों पुत्रों के शव एक कमरे मे रख दिये । कुछ समय बाद जब पति आया तो मुस्कुराहट के साथ उसका स्वागत किया । मानो कुछ हुआ ही न हो, फिर पूछा—"अपने घर किसी की धरोहर है— क्या मै उसे लौटा दूं ?" महात्मा रब्बी ने कहा— "तत्काल लौटा दो ।" फिर वह उस कमरे मे दोनों बच्चों के शव उठा लाई । महात्मा उन्हें देखकर चकित हो गये । बिरवरिया बोली— "खुदा ने दिये और उसी ने ले लिये, वे अपने कहाँ थे ?" इस प्रकार अनासक्ति ने शोक मिटा दिया ।

आफाक में हँस-हँसकर जीना ही तो मुश्किल है ।
आसान है रो–रोकर हस्ती को फना करना ॥



१८ : अनासक्ति

क्या प्रेम एक गहरी मानसिक बीमारी है ?

हाँ– Love is a grave mental disease.

(लव इज ए ग्रेव मेन्टल डिसीज)

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

यद्यपि ज्ञानी याज्ञवल्क्य के लिए सभी शिष्य समान थे। फिर भी विशेष योग्यता के कारण जनक का उनके हृदय मे कुछ ऊँचा स्थान बन गया था। यही कारण था कि और किसी शिष्य के लेट हो जाने पर अध्यापन प्रारम्भ कर दिया जाता था; परन्तु जनक के लेट होने पर प्रतीक्षा की जाती थी। इस पक्षपात को देखकर अन्य शिष्यो के हृदय मे गुरुजी के प्रति जो सन्मान था, वह कम होने लगा। गुरुजी यह बात भाँप गये। एक दिन उन्होंने उपदेश देते हुए बीच ही मे यह दु:खद न्यूज सुनाई कि मिथिला जल रही है।

सुनते ही जनक के अतिरिक्त सभी शिष्य अपना-अपना घर सभालने के लिए मिथिला शहर की ओर भाग खड़े हुए, किन्तु वहाँ आग न देखकर लौट आये। कारण पूछने पर ऋषि याज्ञवल्क्य ने बताया कि मैंने तुम सब की परीक्षा करने के ही लिए ऐसी खबर सुनाई थी भागने से सिद्ध हो गया कि तुम सबका अनुराग घर मे है, परमात्मा में नही। वैभव में है, उपदेश में नही। विषयो मे है, वैराग्य मे नही जनक अविचलित भाव से उपदेश सुन रहा था। इसके हृदय मे अनासक्ति भाव लहरा रहा था। इसीलिए मैं इसकी उपस्थिती का ध्यान रखता हूँ।

मिहिलाए डज्झमाणीए,
न मे डज्झइ किंचणं।

(जलती हुई मिथिला मे मेरा कुछ भी नही जल रहा है।)

१६ : अनित्यता

क्या जीवन क्षणभंगुर है ?

हाँ, यह सच है कि स्त्रियाँ सुन्दर होनी है और सम्पत्तियाँ भी रमणीय होती है। परन्तु यह जीवन मदोन्मत्त स्त्री के कटाक्ष के समान चचल होता है–

सत्यं मनोरमा रामाः
सत्य रम्या विभूतयः।
किन्तु मत्ताङ्गनापाङ्ग–
भङ्गिलोल हि जीविमम्॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

महाराज सिहरथ वन क्रीडार्थ जा रहे थे कि मार्ग मे पत्र-पुष्प-फल से समृद्ध एक आम का पेड उन्हे दिखाई दिया। उन्होंने घोड़े पर बैठे ही बैठे एक मजरी तोड ली और आगे बढ गए। पीछे उनके साथ कुछ अगरक्षकों का दल आ रहा था। उनमें से भी प्रत्येक ने एक-एक मजरी तोड ली। उनसे पीछे कुछ सैनिक आ रहे थे। उन्होने फल और पत्ते तोड लिए। इस प्रकार बने हुए ठूँठ को जब लौटते समय महाराज ने देखा तो वे सौन्दर्य की अनित्यता पर विचार करने लगे–सौन्दर्य अनित्य है–ससार अनित्य है–जीवन भी अनित्य है, ऐसी अवस्था मे नित्य परमात्मा का स्मरण ही क्यों न किया जाय।

सर्वे क्षयान्ता निचयाः
पतनान्ता समुच्छ्रया.।
सयोग विप्रयोगान्ताः
मरणान्त हि जीवितम्॥

(सभी सचयो का क्षय होता है–सभी उन्नतियों का पतन, सभी सयोगो का वियोग और सभी जीविनो का मरण होता है।)

२० : अनित्यता

क्या व्यक्ति भूल जाता है कि वह एक दिन मरेगा ?

हाँ, नाना प्रकार से पराये धन का अपहरण करता हुआ-पुत्र, सम्पत्ति आदि को बढ़ाता हुआ और शत्रुओं के मस्तक पर पाँव रखता हुआ व्यक्ति यह भूल जाता है कि एक दिन मै मर जाऊँगा-

हरिष्यमाणो बहुधा परस्वम्
करिष्यमाणः सुतसम्पदादि ।
धरिष्यमाणोऽरिशिरःसु पादम्
न स्व मरिष्यन्तमवैति कोऽपि ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये-

एक राजा ने लाखों रुपयों की लागत से एक सुन्दर महल बनवाया। उद्घाटन किसी ज्ञानी पुरुष के हाथ मे कराने का निश्चय हुआ। इसकी जोरदार तैयारियाँ की गई। जो भी महल देखता, उसकी सुन्दरता पर मुग्ध हो जाता। शहरके अच्छे-अच्छे प्रतिष्ठित लोगो को उद्घाटन समारोह मे आमन्त्रित किया गया। ज्ञानी पुरुष के कर-कमलो से उद्घाटन विधि सम्पन्न होने के बाद सब आमन्त्रित सज्जनों के लिये स्वल्पाहार का कार्यक्रम रखा गया। जब सब लोग स्वल्पाहार ग्रहण कर रहे थे, तभी राजा ने ज्ञानी पुरुष से पूछा-"आपको इस महल मे कोई कमी नजर आती हो तो बताइये।"

ज्ञानी ने कहा-"इसमे केवल दो कमियाँ रह गई है, एक तो यह कि इसे बनाने वाला एक दिन इसे छोड जायगा, और दूसरी यह कि एक दिन यह गिर जायगा"।

इससे राजा का घमण्ड दूर हो गया।

महल बन्यो सारो घणो, पण तेमां बे खोट।
करनारो मरशे कदी, पडशे महल्ल सचोट ॥



२१ : अनित्यता

क्या जीवन कमलिनी के पत्ते पर रहे हुए तरल जल के समान चंचल है ?

हाँ; कहा है–

नलिनीदलगतसलिलं तरलम् ।
तद्वज्जीवितमतिशयचपलम् ।।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

-मुञ्ज को सिंहासन सौंपकर मरणासन्न बड़ा भाई अपने पुत्र भोज को उसकी गोद मे धर कर मर गया। बालक भोज का वध करने के लिए कुछ सशस्त्र सैनिकों के साथ उसे जंगल में भेज दिया गया, जिससे मुञ्ज के बाद सिंहासन पर मुञ्ज के पुत्र ही बैठ सके; किन्तु दयालु सैनिकों ने भोज को नंगा कर उसे एक गुफा के पास छोड़ दिया। वस्त्र साथ मे इस सबूत के रूप में रख लिये कि भोज की जंगल मे हत्या कर दी गई है। भोज ने भी धारा नगरी की ओर विदा होने वाले सैनिको को अपने खून से एक पत्ते पर एक श्लोक लिखकर मुञ्ज के पास पहुँचाने को दे दिया, जिसे पढ़कर मुञ्ज अपने विश्वासघात के लिए खूब पछताने लगा–रोने लगा। फिर सैनिकों ने भोज को सामने लाकर खड़ा कर दिया। मुञ्ज उसे सिंहासन पर बिठाकर साधु बन गया। वह श्लोक इस प्रकार है–

मान्धाता स महीपतिः कृतयुगालंकारभूतो गतः,
सेतुर्येन महोदधौ विरचितः क्वासौ दशास्यान्तकः ?
अन्ये चापि युधिष्ठिरप्रभृतयो याता दिवं भूपते,
नैकेनापि समं गता वसुमती मुञ्ज ! त्वया यास्यति ।।

(सत्ययुग की शोभा बढ़ाने वाला राजा मान्धाता चला गया, जिसने समुद्र पर पुल बनाया था, वह रावण-वधकर्त्ता राम कहाँ है ? और भी युधिष्ठिर आदि राजा स्वर्गवासी बन गये, एक के भी साथ पृथ्वी नही गई। हे राजा मुञ्ज ! वह (पृथ्वी) सिर्फ तेरे साथ जायगी।)

२२ : अनित्यता

क्या मदमाती स्त्री के कटाक्ष के समान जीवन भी क्षणिक है? चंचल है ?

हाँ, यद्यपि स्त्रियाँ मनोहर होती हैं और विभूतियाँ (सम्पत्तियाँ) भी रमणीय होती है; फिर भी जीवन क्षणभंगुर होता है (अतः कंचन कामिनी का सुख भी क्षणिक होता है।)

सत्यं मनोरमा रामा, सत्यं रम्या विभूतयः ।
किन्तु मत्ताङ्गनापाङ्ग-भङ्गिलोल हि जीवितम् ।।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

कविता कामिनी के लिए केश पाश की तरह शोभावर्द्धक था चौरकवि । कहा है—

"यस्याश्चौरश्चिकुरनिकुरः ।।"

वही चौरकवि राजा भोज के महल मे चोरी करने के लिए घुसा वहाँ द्रव्य ढूँढ़ते हुए उसे पूरी रात बीतने पर भी सफलता नहीं मिली अन्त मे थककर राजा भोज की शय्या के नीचे छिपकर बैठा गया प्रात. राजा भोज ने अपनी समृद्धि के विषय मे विचार करते हुए एक श्लोक के तीन चरणों की रचना की; परन्तु चौथा चरण नही बन पा रहा था, उसकी पूर्ति चौर कवि ने कर दी, पूर्ति सहित श्लोक यह है—

चेतोहरा युवतयः सुहृदोऽनुकूलाः
सद्वान्धवा. प्रणयगर्भगिरश्च भृत्याः ।
वल्गन्ति दन्तिनिवहास्तरलास्तुरङ्गाः
"सम्मीलने नयनयोर्न हि किञ्चिदस्ति ।।"

(मनोहर स्त्रियाँ, अनुकूल मित्र, अच्छे भाई, विनयभरी वाणी बोलने वाले भृत्य, हाथियों के झुण्ड और चंचल घोड़े सुशोभित हो रहे हैं, परन्तु आँखे बन्द होने (मर जाने) पर कुछ भी नही है।)

राजा ने प्रसन्न होकर उसे पारितोषिक दिया । ❋

२३ : अनुकरण

क्या सुन्दर पोशाक से किसी का सम्मान मूर्खो एव स्त्रियो के द्वारा ही होता है ?

हाँ; सर वाल्टर रैले का ऐसा ही कथन है– No man is esteemed for his gay garments but by fools and women (नो मैन इज एस्टीम्ड फोर हिज गे गारमेट्स बट बाइ फूल्स एण्ड विमेन ।)

कोई दृष्टान्त ? सुनिये–

एक वैद्य जी के साथ उनका बैग उठाने के लिए एक नौकर रहा करता था । वे इलाज के लिए किसी गाँव मे जा रहे थे कि रास्ते मे एक नदी के किनारे कोई पटेल अपने बीमार ऊँट के साथ बैठा हुआ था । उसने वैद्य जी से ऊँट का इलाज करने की प्रार्थना की । वैद्य जी ने फीस के पच्चीस रुपये ठहराये, जो उन्हे दे दिये गये । इलाज करते हुए उन्होने पूछा कि यह चरने कहाँ गया था ? उत्तर मिला कि खरबूजे के खेत में । वैद्य जी ने पटेल से ऊँट का मुँह खोलकर उसे दोनों हाथों से खींचकर थोड़ी देर खुला ही रहने देने के लिए कहा । फिर गले पर एक मुक्का मारा तो उसमे अटका खरबूजा फूटकर बाहर निकल पड़ा । फिर वे आगे बढे । किन्तु नौकर उन्हे छोड़कर चला गया । वह स्वयं भी वैद्य बनकर इलाज करना चाहता था । सुन्दर पोशाक पहिनकर वह किसी गाँव में एक बीमार बुढ़िया का इलाज करने लगा । बुढ़िया के विषय मे "कहाँ चरने गई थी ?" ऐसा पूछने पर "खरबुजे के खेत मे" यही उत्तर मिलना चाहिए, ऐसा घर वालो को समझा दिया । फीस के पच्चीस रुपये रख लिये । घर वालों ने पूछने पर वैसा ही उत्तर दिया । फिर मुँह पकडवा कर जो मुक्का गले पर मारा कि बुढिया चल बसी ।

वैद्यराज ! नमस्तुभ्य यमराजसहोदर !
यमस्तु हरति प्राणांस्त्व तु प्राणान् धनानि च ।।

(हे यम के सगे भाई वैद्य ! तुझे नमस्कार हो; यम प्राणों का हरण करता है; किन्तु तुम प्राण भी हरते हो और धन भी ।)

२४ : अनुभव

क्या अनुभवी की पहुँच बहुत दूर तक होती है ?

हाँ; कहते है–

जहाँ न पहुँचे रवि
वहाँ पहुँचे कवि !
जहाँ न पहुँचे कवि
वहाँ पहुँचे अनुभवी !

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

किसी यात्री के हाथ पर रेल के डिब्बे की खिडकी का काँच गिरा। चोट तो उसे साधारण ही आई; परन्तु रेलवे कम्पनी से एक बड़ी राशि वसूल करने की नीयत से उसने कोर्ट मे दावा पेश कर दिया। उसने हाथ पर पट्टा लगवा लिया । उसका कहना था कि चोट इतनी तेज आई है कि हाथ उपर को नही उठ रहा है। उस समय कम्पनी की ओर से श्री फीरोजशाह् मेहता ने वकालत कर रहे थे। मजिस्ट्रेट के सामने जिरह करते हुए वकील श्री मेहता ने पूछा–"भाई ! हाथ में चोट लगने से पहले तुम्हारा हाथ किस तरह ऊपर को उठता था?"

यात्री ने अपना हाथ ऊपर को उठाकर कह दिया–"पहले तो इस तरह् आसानी मे उठ जाया करता था साहब !"

बस, इसी क्रिया से साबित हो गया कि उसका हाथ उठ सकता है, किन्तु जान-बूझकर वह ऊपर नही उठा रहा है, फलस्वरुप वह केस हार गया ।

विरुद्धनानायुक्ति प्राबल्य दौर्बल्यावधारणाय प्रवर्तमानो विचारः परीक्षा ।

(अपने मत के विरुद्ध विविध युक्तियो की दुर्बलता का निर्णय करने के लिए जो विचार की प्रवृत्ति होती है, वही परीक्षा है ।)



२५ : अनुभव

क्या अनुभव एक दर्पण है ?

दलपत कवि ने अनुभव को आरसी (दर्पण) के समान बताया है–

मशाल धरीने सर्व आगल उजेस करे
तदबीर करीने अंधारूँ घोर टाले छे ।
कोण जाणे कवी रीते तेमाँ ते पूरे छे तेल
बुझाई न जाय तेम मशाल ते बाले छे ।
कोई समे अनुभव-आरसी देखाड़े वली
कोई समे नवरावाँ नीरने उकाले छे ।
कहे दलपतराय एवो एक छे हजाम
ते सदैव सौने घणा स्नेह थी सँभाले छे ।।

कोई दृष्टान्त ? सुनिये–

विद्याध्ययन समाप्त होने पर राजकुमार को गुरुजी के साथ राजमहल मे बुलवाया गया। वहा सबके सामने गुरुजी को सम्मानित करने से पहले एक बार राजा ने पूछा–"गुरुदेव ! राजकुमार की शिक्षा मे कोई कमी तो नही रह गई ?"

गुरुदेव ने कहा–"केवल एक कमी रह गई है ।" ऐसा कहकर अपनी छड़ी के दो प्रहार निर्दोष बालक पर कर दिये और फिर कहा–"अब कोई कमी नही रही ।"

छड़ी के प्रहारों का कारण पूछने पर गुरुजी ने कहा–"कल इस राजकुमार के हाथ मे अपराधियो को दण्ड देने का अधिकार भी आयेगा ही; अतः इसे यह अनुभव होना चाहिए कि छड़ी के प्रहार खाने मे कितनी वेदना होती है, जिससे किसी अपराधी को आवश्यक से अधिक दण्ड न दिया जा सके ।"

अदण्ड्यान् दण्डयन् राजा, दण्ड्याश्चैवाप्यदण्डयन् ।
अयशो महदाप्नोति, नरक चैव गच्छति ।।

(जो राजा अदण्डनीय को दण्डित करता है और दण्डनीय को दण्डित नही करता, उसे महान् अपयश मिलता है और वह नरक मे जाता है ।)

२६ : अनुशासन

क्या वन्धन बुरा है ?

हाँ, परन्तु अनुशासन का वन्धन बुरा नही है। गुरुजनों की आज्ञा का विना विचारे पालन करने का सन्देश दिया गया है–

बड़ों की वात है अविचारणीया।
मुकुटमणितुल्य शिरसा धारणीया ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

नील गगन में उड़ती हुई पतग ने अपने से अधिक ऊँचाई पर उड़ते हुए गरुड को देखकर सोचा कि यदि इस मनुष्य ने मुझे धागे से वाँधकर मेरी उन्नति पर अंकुश न लगाया होता तो निश्चय ही मैं गरुड़ से उड़ान में बाजी मार ले जाती।

थोड़ी ही देर में दूसरी पतंग से लड़कर वह कट गई। वह प्रसन्न होकर गरुड़ को ढूँढ़ने के लिए ऊपर देख रही थी कि सहसा वायु का ऐसा झोंका आया कि वह नीचे धूल में आ गिरी। फिर वह अपनी पुरानी अवस्था से नई अवस्था की तुलना करके पछताने लगी, सोचने लगी कि इस अवस्था से तो वन्धन की वह अवस्था अच्छी थी, जिसमे खुली हवा में विचरण का आनन्द मिलता था। हर तरह का वन्धन त्याज्य नही होता। स्वतन्त्रता भी एक वन्धन का ही नाम है, 'स्व' का अर्थ 'अपना' है और 'तन्त्र' का अर्थ 'वन्धन'। ऐसे वन्धन को स्वतन्त्रता कहते है। जिसमें विकास का अवसर मिलता हो–सुरक्षा की व्यवस्था हो, विनय, अनुशासन, आज्ञापालन, कर्त्तव्यपरायणता, नैतिकता, सुशीलता, सामाजिकता आदि के वन्धन आवश्यक हैं। इस वन्धनों को गुलामी समझना भूल है–

"विणओ जिणसासण मूलं ॥"

(विनय ही जैन शासन का मूल है।)

२७ : अनेकान्त

क्या अनेकान्त के विना हमारा व्यवहार नही चल सकता ?

हाँ; त्रिभुवन के एक मात्र गुरु अनेकान्तवाद को नमस्कार करते हुए किसी दार्शनिक ने कहा है कि उसके विना ससार का व्यवहार विल्कुल नही चल सकता–

जेण विणा लोगस्स वि,
ववहारो सव्वहा ण णिव्वडइ ।
तस्स भुवणेक्कगुरुणो,
णमो अणेगंतवायस्स ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

स्वामी रामतीर्थ ने किसी कालेज के श्यामपट्ट पर एक रेखा खीच कर छात्रो को आदेश दिया कि वे उसे छोटी करें। एक छात्र जव उसे मिटाने लगा, तव उन्होने कहा कि रेखा को मिटाये विना उसे छोटी करना है।

एक अन्य छात्र ने चाक उठाया और उस रेखा के पास एक उससे भी लम्बी रेखा खीच दी। इससे पहले खीची गई रेखा छोटी हो गई। स्वामी जी ने उसकी पीठ थपथपाते हुए कहा– जीवन की भी यही पद्धति है। दूसरो को मिटाकर आगे नही बढ़ना चाहिए, जिसे आगे वढना हो, उसे अधिक गणो का उपार्जन करने का प्रयास करना चाहिए।

उन्नति के उपाय के अतिरिक्त अनेकान्त को समझने के लिए भी यह रेखा वाला दृष्टान्त उपयोगी है। जो रेखा वड़ी है, वही अपने से लम्बी रेखा की तुलना मे छोटी है, इसलिए एकान्तवाणी न बोले।

न याऽसियावाय वियागरेज्जा।

(स्याद्वादरहित अर्थात् एकान्ताग्रही वाणी न बोलें।)

२८ : अनेकान्त

क्या एक वस्तु मे परस्पर अविरुद्ध अनेक धर्मों की स्वीकृति ही स्याद्वाद है ?

हां, ऐसे अनेकान्त दृष्टिकोण को ही स्याद्वाद कहा जाता है–

एकस्मिन्वस्तुन्यविरुद्धनानाधर्मस्वीकारो हि स्याद्वादः ।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये––

दो सन्यासी थे । एक द्वैतवादी था, जो अनेक तत्त्व मानता थ और दूसरा अद्वैतवादी, जो जगत के मूल मे एक ही तत्त्व स्वीका करता था । एक भक्त का इन दोनों से सम्बन्ध था । दोनों साधुओ प्रति उसकी समान श्रद्धा थी । एक दिन अद्वैतवादी साधु ने भक्त को एक मन्त्र सिखाया–"सोऽहम्" (वह अर्थात् परमात्मा मैं ही हूँ) भक्त इस मन्त्र का जाप कर रहा था कि द्वैतवादी मुनी ने कहा कि मन्त्र तुम्हारा ठीक है। किन्तु इसके प्रारम्भ मे एक 'दा' अक्षर बढ़ा दिया जाय तो यह और भी अधिक शुद्ध हो जायगा। भक्त 'दासोऽहम्' का जप करने लगा। अद्वैतवादी ने प्रारम्भ मे एक अक्षर 'स' और बढ़वा दिया। अब वह "सदा सोऽहम्" का जाप करने लगा। द्वैतवादी ने एक अक्षर 'दा' और बढ़वा दिया, अब मन्त्र "दासदासोऽहम्" (मै दास का भी दास हूँ) हो गया। भक्त द्वैत-अद्वैत के द्वन्द्व मे अपरिचित था किन्तु हनुमान जी परिचित थे, वे कहते है–

देहदृष्ट्या तु दासोऽहम् जीवदृष्ट्या त्वदंशकः ।
आत्मदृष्ट्या त्वमेवाऽहम्, इति मे निश्चिता मतिः ॥

(हे राम ! देहदृष्टि से दास, जीव दृष्टि से आपका अंश और आत्मदृष्टि मे मैं आपमें अभिन्न हूँ– यह मेरी निश्चित मान्यता है।)



२६ : अनेकान्त

क्या दृष्टिभेद से प्रभाव वदल जाता है ?

हाँ; कहते है–"जैसी-दृष्टि वैसी सृष्ट"

कोई दृष्टान्त ? सुनिये–

वर्षो वाद मिले दो मित्रों मे हुई वातचीत इस प्रकार रही–आनन्द लीजिए उसका। कहिये ! कुशल तो है ?

कैसी कुशल ? विवाहित हो गया था मैं।

यह तो अच्छा ही हुआ न ?

क्या अच्छा हुआ ? पत्नी वड़ी कर्कशा निकल गई।

यह बुरा जरुर हुआ।

क्या वुरा हुआ ? उसके साथ वहुत-सा धन भी आया।

तव तो अच्छा ही हुआ।

अरे क्या खाक अच्छा हुआ ? पत्नी कजूस निकल गई।

यह तो वुरी वात है।

कैसी वुरी वात ? मैंने उसके धन से मकान वनवा लिया।

घर का मकान हो गया–अच्छा ही रहा।

अरे क्या अच्छा रहा ? वह तो जलकर राख हो गया।

यह वुरा हुआ।

अरे क्या खाक वुरा हुआ ? मैंने मकान का वीमा करवा लिया था।

तव तो पूरे पैसे मिल गये होंगे–यह अच्छा रहा।

अरे क्या अच्छा रहा ? मकान में पत्नी सो रही थी, सो वह भी उसके साथ जल गई।

इसीलिए तो कहा है–

जेण विणा लोगस्स वि ववहारो सव्वहा ण णिव्वडइ।

तस्स भुवणेक्कगुरुणो णमो अणेगंतवायस्स॥

(जिसके विना लोक का व्यवहार भी विल्कुल चल नही सकता, ससार के एक मात्र गुरु उस अनेकान्त सिद्धान्त को नमस्कार हो।)

३० : अनेकान्त

क्या अवसर के अनुसार बोलना चाहिये ?

हाँ; गुणों के समुदाय से रहित वाणी भी यदि अवसर के अनुकूल हो तो उससे बोलने वालों की शोभा बढ़ जाती है—

अवसरपठिता वाणी
गुणगणरहिताऽपि शोभते पुंसाम् ।।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

मुल्ला नसीरुद्दीन ने पत्नी से कहा—"थोड़ा-सा पनीर ले आओ वह भूख बढ़ाता है।"

पत्नी ने कहा—"पनीर घर में नहीं है।"

मुल्ला—"यह तो अच्छी बात है, पनीर दाँतों की जड़ो को कम जोर बनाता है।"

पत्नी—"आपने पनीर के विषय मे दो अलग-अलग बातें कही हैं एक से पनीर अच्छा मालूम होता है और दूसरी से बुरा । दोनों में कौनसी बात मानने योग्य है ? कौनसी बात सच्ची है ?"

मुल्ला जी हँसते हुए बोले—"बाते दोनों सच्ची है; परन्तु मानना तो अपनी परिस्थिति पर निर्भर है। यदि घर में पनीर हो तो पहली बात मान लो और न हो तो दूसरी बात मान लेनी चाहिए।"

व्यवहार में अनेकान्त कितना उपयोगी है ? इससे जाना जा सकता है।

उत्पन्न दधिभावेन, नष्टं दुग्धतया पयः ।
गोरसत्वात् स्थिरं जानन्, स्याद्वादद्विड् जनोऽपि कः ।।

(जो दूध रूप मे नष्ट होकर दही रूप में उत्पन्न हुआ, वही गोरस रूप में स्थिर है—ऐसा जानकर कौन मनुष्य स्याद्वाद से द्वेष कर सकता है ? कोई नहीं।)

३१ : अनेकान्त

क्या वस्तु को देखने की दृष्टि सवकी अलग-अलग होती है।

हाँ; इसलिये कहा जाता है–"जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि।"

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

किमी जगह एक नर्तकी का मोहक नृत्य हो रहा था। उसे विभिन्न दृष्टिकोणों से अलग-अलग व्यक्ति देख रहे थे।

नाच देखकर आने वालों मे से किसी युवक से पूछा गया तो उत्तर मिला–"वाह ? क्या नाच है ? कमर की लचक और आँखों के वाण अव तक मेरी स्मृति पर छाये हैं। उसके मधुर कण्ठ से जो संगीत निकल रहा था, वह सवके मन को मोहित कर रहा था।"

उसी को देखकर आये एक वच्चे ने कहा–"एक औरत रगीन पोशाक पहिन कर वेशर्मी से उछल-कूद कर रही थी। कभी वह घूंघट कर लेती और कभी हटा लेती। यदि घूंघट करना अच्छा है तो फिर हटाती क्यो है ? और यदि हटाना अच्छा है तो फिर मुँह ढकती क्यो है ? यदि उसे उछलना-कूदना पसन्द है तो वगीचे मे या मैदान मे सहेलियो के बीच ऐसा करना चाहिये, आदमियों के बीच मे नही। एक आदमी वहाँ सुरताल और दूसरा मृदंग वजा रहा है।"

एक साधु से पूछा गया तो वह बोला–

परिपूरन पाप के कारण ही भगवन्तकथा न रुचे जिनको।
एक नारी वुलाय नचावत है नचवावत है निशि को दिन को।
मिरदग कहे धिक है धिक है सुरताल कहे किनको-किनको।
तव हाथ उठाइके नारि कहे धिक् है धिक् है इनको-इनको॥



३२ : अनेकान्त

क्या व्यवहार और निश्चय दोनों आवश्यक है ?

हाँ, यदि जिनमत (जैनधर्म) की शरण मे आये है तो आप व्यवहार और निश्चय दोनों को मत छोड़िये। क्योकि व्यवहार के विना 'तीर्थ' (संगठन) क्षीण हो जायगा और निश्चय के विना 'तत्त्व'।

जइ जिणमत पवज्जह,
ता मा ववहारनिच्छए मुयह।
एगेण विणा झिज्झइ,
तित्थ अण्णेण उण तच्च ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

श्रीराम ने हनुमानजी से प्रश्न किया कि आप कौन हैं ? अपना संक्षिप्त परिचय दीजिये।

हनुमानजी समझ गये कि इस प्रश्न के द्वारा श्रीराम मेरे तत्त्व ज्ञान की परीक्षा लेना चाहते है। निश्चय दृष्टि से तो सारी आत्माएं समान है। परन्तु व्यवहार दृष्टि मे भेद हैं। भगवान और भक्त का सम्बन्ध भेदसूचक है। अशी और अश का सम्बन्ध भी किञ्चित् भेदसूचक है। परन्तु अद्वैतवादी निश्चय दृष्टि से सब कुछ अभिन्न है, बोले—

देहदृष्ट्या तु दासोऽहम्,
जीवदृष्ट्या त्वदशक।
आत्मदृष्ट्या त्वमेवाहम्,
इति मे निश्चिता मति. ॥

(देह की दृष्टि मे मै भक्त हूँ, जीवदृष्टि से मे आपका अश हूँ किन्तु आत्मदृष्टि से आप मे और मुझ मे कोई अन्तर ही नही है।)

अनेकान्त ही सच्चा उत्तर दिलवा सकता है।

क्या विश्वास अन्धा होता है ?

हाँ; यदि वह बिना विचार के किया जाय। "अपने पिता का कूआ है' ऐसा कहकर उसका खारा जल भी पीने वाले (और दूसरो के कूए का मीठा जल भी न छूने वाले) लोग ऐसी ही अविचारशीलता के स्वामी होते—कापुरुष (नीच मनुष्य) होते हैं।

तातस्य कूपोऽयमिति ब्रुवाणा: क्षारं जलं कापुरुषा: पिबन्ति।

कोई दृष्टान्त ? सुनिये—

नदी मे खड़े होकर कुछ लोग सूर्य को जल चढा रहे थे। वह जल प्रत्यक्ष उस नदी मे ही गिर रहा था। परन्तु उनका विश्वास था कि सूर्य के निकट पहुँच रहा है। एक सन्त यह सब देख रहा था। उसने उन्हे समझाना चाहा। इसके लिये उसने एक युक्ति का सहारा लिया। उसके अनुसार उसी नदी से अपने कमण्डल मे जल भर-भर कर वह किनारे पर फेकने लगा। लोगों ने जब ऐसा करने का कारण पूछा तो सन्त ने उत्तर दिया—"भाई! मै जिस प्रदेश से आया हूँ, वहाँ के खेत जल की कमी से सूख रहे है। अपने कमण्डल से मैं उसी दिशा में जल फेक रहा हूँ, जिससे सूखे खेत फिर हरे-भरे हो जायें।"

लोगो ने हँसकर कहा—"आपके कमंडल का जल तो यहीं नदी तट पर गिरकर फिर से नदी मे आ रहा है, वह आपके प्रदेश के खेतो तक कैसे पहुँचेगा ?"

सन्त ने कहा—"यदि आपका चढ़ाया जल यहा से करोड़ों मील दूर सूर्य तक पहुँच सकता है तो कुछ सैकड़ों मील मेरे प्रदेश तक वह क्यो नही पहुँचेगा ?"

सन्त की इस बात से प्रतिबोध पाकर उन्होने अपनी अन्ध-विश्वास-पूर्ण वह क्रिया सदा के लिए छोड दी।

साधू ऐसा चाहिये, जैसा सूप सुभास।
सार-सार को गहि रहे, थोथा देय उडाय॥

३४ : अन्धविश्वास

क्या धूर्त्तता भी बुद्धिमत्ता से पैदा होती है ?

हाँ; बुद्धिमत्ता का जो बन्दर (चंचल पुत्र) है, उसी को धूर्त्तता कहते है–Cunning is the ape of wisdom. (कनिंग इज दी एप आफ विजडम)

कोई दृष्टान्त ? सुनिये–

कहते है, श्राद्ध में ब्राह्मणों को खिलाया भोजन मृत पूर्वजनो के पेट मे पहुँच जाता है; परन्तु यह एक भ्रान्त धारणा है–ऐसा एक मन्त्री ने सावित कर दिया था। हुआ यह कि राजा जिस दिन श्राद्ध किया करते थे, उससे एक दिन पहले मन्त्री ने उन्हे कुछ कह दिया। राजा ने उसे अपने मन मे रख लिया। दूसरे दिन खीर-पूरी की रसोई तैयार हुई। वहुत-से ब्राह्मणों को भोजन के लिये निमन्त्रित किया गया था। वे आकर पंक्तिवद्ध वैठ गये।

राजा साहव ने सवसे कहा–"आप लोग प्रति वर्ष श्राद्ध के दिन जो माल-टाल खाते है, वह मेरे स्वर्गीय पिताश्री के पेट में पहुँच जाता है; परन्तु कल रात को सपने मे आकर उन्होने मुझसे कहा कि अफीम खाने की मुझे लत थी, सो उसके विना सारा शरीर टूटता रहता है। आज आप लोगों से निवेदन है कि पहले आप सव लोग अफीम की एक-एक डली खालें, फिर भोजन परोसा जायगा।"

ब्राह्मण समझ गये कि यह सव मन्त्रीजी की करामात है। उन्होंने राजा से क्षमा याचना की और स्वीकार किया कि हम अपने स्वार्थ के लिए झूठ वोलते थे। उस दिन तो राजा साहव ने सवको भोजन करा दिया, परन्तु भविष्य के लिए श्राद्ध वन्द कर दिया।

वेंजामिन फ्रेंकलिन ने लिखा है कि धूर्त्तता वहीं पाई जाती है जहाँ योग्यता का अभाव (अन्धविश्वास) हो–Cunning proceeds from want of capacity. (कनिंग प्रोसीड्स फ्रोम वान्ट आफ केपेसिटी)।

३५ : अन्धविश्वास

यदि विश्वास अन्धा न हो तो क्या वह अपनाने योग्य होगा ?

हाँ; ऐसा विश्वास, जो विचारपूर्वक हो, ईश्वर की तरह वन्दनीय होता है। श्रद्धा और विश्वास के बिना सिद्ध अपने भीतर रहने वाले ईश्वर को नहीं देख सकते। सन्त तुलसीदास ने उन्हे पार्वती और शंकर मानकर वन्दन किया है—

भवानी शङ्करौ वन्दे,
श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति,
सिद्धा स्वान्तस्थमीश्वरम् ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

सूरत में महात्मा गान्धी का प्रवचन पूरा होने के बाद एक बोहरा युवक पचास रुपये भेंट करते हुए बोला कि कल आपका स्मरण करने मे मेरा बुखार मिट गया था, आप सचमुच कोई चमत्कारी महापुरुष हैं।

भेंट लौटाते हुए महात्माजी बोले—"भाई! मुझे याद करने से यदि आपका बुखार नहीं उतरता तो आप मुझे भेंट के बदले गालियाँ भी दे सकते थे। किसी व्यक्ति का स्मरण किसी की बीमारी मिटायगा, ऐसा मानना केवल अन्धविश्वास है। मुझे ऐसी भेंट नहीं चाहिए, जो अन्धविश्वास पर आधारित्त हो।"

सद्धा परमदुल्लहा।

[श्रद्धा अत्यन्त दुर्लभ है (अन्धविश्वास अत्यन्त सुलभ है)]



३६ : अपमान

आदरणीय व्यक्ति का अपमान से क्या दिल दुखता है ? हाँ, अपयश का दुःख सम्मानित पुरुष को मौत से अधिक दुखी बनाता है-

सम्भावितस्य चाकीर्त्ति-
मरणादतिरिच्यते ।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये-

एक जगह भोज का कार्यक्रम था । नाना प्रकार के व्यंजन और तरह-तरह की मिठाइयाँ बनी थी । समाज के लोग जीमने आये। भोजन से लोग तृप्त हो गये । तभी एक आदमी के हाथ मे पापड का टोकरा देकर उस भोज के संयोजक सेठ ने अपने हाथ मे प्रत्येक को एक-एक पापड परोसना शुरू किया । टोकरी मे एक खंडित पापड़ आ गया तो उसे भी सहज-भाव से एक आदमी को परोस दिया, किन्तु आदमी को वह पापड़ चुभ गया । सोचने लगा कि जाति-बिरादरी के बीच मुझे अपमानित करने के लिए ऐसा जान-बूझकर किया गया है। बदला लेने का उसने दृढ़ संकल्प कर लिया, परन्तु वहाँ मुँह से वह कुछ नही बोला । पगत उठी । अपमानित सेठ भी अपने घर पहुँचा। वह निर्धन था; फिर भी अपना आधा खेत बेचकर तथा कुछ रकमें गिरवी रखकर उसने एक विशाल भोज आयोजित किया । समाज के लोग जीमने बैठे । यथासमय पापड़ परोसना शुरू किया । खण्डित पापड परोसने वाले उस सेठ का नम्बर आने पर जानबूझकर पापड खण्डित करके परोसा तो हँसते हुए उसने उत्तर दिया- "अगर आप पापड़ का चूरा करके रखते तो और भी अच्छा रहता ।" यह सुनकर वह अपनी मूर्खता के लिए पछताने लगा कि व्यर्थ ही उसने इतना खर्च किया ।

समो निन्दाप्रशंसासु समो मानापमानयोः ।

(अपनी निन्दा और प्रशंसा मे तथा अपने मान-अपमान में समान भाव रखने वाला ही मुनि होता है ।)

३७ : अपमान

क्या नीच से तुलना की जाय तो बड़ों का अपमान होता है ? हाँ, स्वर्ण कहता है कि मुझे पीटने से, आग में गर्म करने से और बेचने से दु:ख नहीं होता, मुझे लोग गुंजा से तोलते हैं—यही मेरा मुख्य दु:ख है—

नवै ताडनात्तापनाद्वह्निमध्ये, नवै विक्रियात्क्लिश्यमानोऽहमस्मि।
सुवर्णस्य मे मुख्यदु:ख तकदेम्, यतो मां जना गुञ्जया तोलयन्ति ॥

कोई दृष्टान्त ? सुनिये—

किसी कवि ने सोने और रत्ती (चिरमी या गुंजा) के संवाद को सुनकर अपनी वाणी के द्वारा व्यक्त किया है—

सोना कहे सुनार से
उत्तम मेरी जात।
काला मुख की चीरमी
तुली हमारे साथ ॥

रत्ती ने कहा—मैं हूँ वन की लाडली,
लाल हमारो रंग।
काला मुँह इससे हुआ,
तुली नीच के संग ॥

सोना बोला—भोली चिरमी बावली
क्या है तेरी बात ?
जो तू गुण की खान तो,
जल ज्वाला में साथ ॥

इस पर रत्ती ने जो उत्तर दिया, उससे सोना मौन हो गया—

वन जाई वन में बड़ी
बिकी नगर में आय।
तू तो जले कलंक से
मेरी जले बलाय ॥

३८ : अपयश

क्या जन्म उसी का सफल है, जिसमे कुल की उन्नति हो–वंश की शोभा बढ़े ?

हाँ; इस परिवर्तनशील मंसार में सभी मरने वाले पुनर्जन्म लेते रहते हैं–

स जातो येन जातेन, याति वंशः समुन्नतिम् ।
परिवर्तिनि संसारे, मृतः को वा न जायते ।।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

एक तांगे वाले भाई को घोड़े के लिए दाने की जरूरत थी। उसने शाम के समय एक दूकानदार से जाकर चने मांगे । कहा कि बढ़िया चने देना; पैसे चाहे अधिक लगा लेना ।

सेठ ने बाजार भाव से कुछ अधिक मूल्य लेकर चने दे दिये। घर आकर दीपक के प्रकाश में उसने ज्यों ही चनो पर नजर दौडाई, त्यों ही उसे हजारों जन्तु दिखाई दिये। घोड़े को उसने घास खिला दी। चने को बोरी मे ही पड़ा रहने दिया। सुबह वह सेठजी की दूकान पर गया। दूकान पर सेठजी का लड़का बैठा था। उसने बताया कि पिताजी धर्मस्थानक में जैन मुनि का प्रवचन सुनने गये है। तांगेवाला बोरी उठाकर सीधे वहीं ले गया। उसने गुरुदेव मे निवेदन किया– "शाम को कल ही अमुक सेठ की दूकान पर जाकर घोड़े के लिए मैंने चने मांगे। मैंने कह दिया था कि चने अच्छे देना, भाव चाहे अधिक लगा देना। भाव तो निश्चय ही उसने अधिक लगाया, परन्तु माल कैसा दिया ? आप स्वयं देखिये।" ऐसा कहकर वही बोरी उलट दी। सेठ ने सबके सामने अपनी भूल के लिए क्षमा मांगी और तांगे वाले को उसके रुपये लौटा दिये–

"संभावितस्य चाकीर्त्तिर्मरणादतिरिच्यते ।"

(सज्जन को अपयश मृत्यु से भी भयंकर लगता है।)

३६ : अपराध

क्या अपराधी वही है, जो अप्रसन्न रहता हो ?

हाँ; राध का अर्थ प्रसन्नता है पापी प्रसन्न नही रह सकता। इसलिए वह अपराधी है। कहा है–

ववगयराहो जो खलु, चेया ,सो होइ अवराहो।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

हजरत उमर रात को अपने नगर में घूम रहे थे। एक कमरे से उन्हे हँसने की ध्वनी सुनाई दी तो किसी युक्ति से दीवाल पर चढकर रोशनदान से भीतर झाँकते ही वे क्रुद्ध हो गये, क्योंकि उन्होने देखा की पति-पत्नी शराव पी रहे है और खिल-खिलाकर पड़ौसियो की नींद हराम कर रहे है। वादशाह ने मकान का नम्बर नोट कर लिया और दूसरे दिन उन दोनों को दरवार में वुलाया। युवक समझ गया कि रात की वात से वादशाह नाराज हुए होगे। दरवार के बीच जव वादशाह ने उनसे पूछा कि खुदा की नजरों मे तुम दोनो कितने वड़े गुनहगार हो। तव युवक ने कहा–"हुजूर ! हम दोनों ने एक गुनाह किया था, परन्तु आपने तीन गुनाह किये है। पहला तो यह कि आपने किसी की (हमारी) गुप्त वात को प्रकट कर दिया। दूसरा मुख्य द्वार से घर में प्रवेश न करके रोशनदान से भीतर झाँका और तीसरा हमें सलाम नही किया। खुदा की स्पप्ट आज्ञा है कि किसी की गुप्त बात प्रकट न करो, किसी के घर जाना हो तो सदा मुख्य द्वार से ही प्रवेश करो और जिस घर जाओ, उसके मालिक को सलाम करो।"

यह सुनकर वादशाह ने युवक को माफ कर दिया, किन्तु प्रतिज्ञा करवा ली कि भविष्य में वह शराव नही पीयेगा।

निन्दक नियरे राखिये, आँगन कुटी छवाय।
विना पानी साबुन बिना, निर्मल करे सुभाय॥

४० : अपराध

क्या अपराधी ही दण्ड का पात्र बनता है ?

हाँ; कहावत है–

"करेगा सो भरेगा"

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

आम के सुन्दर वगीचे की ओर एक मुसाफिर की नजर पड़ी मन में आम तोड़कर उन्हे चूसने की प्रवल इच्छा उत्पन्न हो गई शरीर तो मन का गुलाम होता ही है। पाव दौडकर शरीर को आ के पेड़ तक ले गये। हाथों ने तोड़ना शुरु किया। आठ-दस आम तो कर चूस लिये गये। वगीचे के माली की नजर वचाकर मुसाफिर यह सव किया था। परन्तु आम चूसते समय माली ने उसे देख लिय वह डंडा लेकर दौडा और मुसाफिर की जमकर पिटाई की, जिः वह फिर कभी ऐसी चोरी करने का साहस न करे। पिटाई खा उसकी आँखों से आंसू गिरने लगे। इस प्रकार वास्तविक अपराधी दण्ड मिल गया–

देख्या सो दौड़्या नही,
दौड़्या सो दूजा।
दौड़्या सो तोड़्या नही,
तोड़्या सो दूजा॥
तोड़्या सो चाख्या नही,
चाख्या सो दूजा।
चाख्या सो खाया नही,
खाया सो दूजा॥
खाया सो पिटिया नही,
पिटिया सो दूजा।
पिटिया सो रोया नही,
रोया सो सोही॥

४१ : अपराध

क्या अनार्यों के मार्ग पर चलने वालों का कल्याण नही हो सकता ?

नही; कहा भी है–

अनार्यजुष्टेन पथा प्रवृत्तानां शिवं कुत. ?

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक राजा नगर में घूमकर प्रजा का हाल जानने का प्रयास कर रहा था। रात का समय था। उसने देखा कि चौकीदार खुद किसी दुकान से रुपयों की थैली लेकर वाहर निकल रहा था। राजा की प्रश्नसूचक मुद्रा के उत्तर मे उसने जमादार की ओर इशारा किया, जो एक वास की सीढ़ी थामकर किसी घर की दूसरी मजिल पर चोरों को चढ़ा रहा था। जमादार ने राजा को फौजदार के पास भेजा। भागता हुआ राजा थाने पर गया। देखा कि वहाँ प्रत्येक चोर से फौजदार आधे रुपए वसूल कर रहा था। फौजदार ने न्यायधीश के घर जाने का आग्रह किया। राजा वहाँ भी जा पहुँचा, देखा कि कुछ लखपति सेठो से हजारो रुपये की रिश्वत लेकर न्याय बेचा जा रहा था। पूछने पर न्याधीश ने वताया कि इन रिश्वतों का आधा हिस्सा मन्त्रीजी को देना पड़ेगा। हर रोज प्राप्त राशि का आधा भाग हमें उनके घर पहुँचाना पड़ता है।

दूसरे दिन जव भरी सभा मे न्यायधीश के सामने मन्त्री से पूछा गया कि आप रिश्वत क्यों लेते है तो बोले–"मुझसे पहले वाले मन्त्री भी ऐसा ही करते थे। यह तो साधारण वात है।

राजा ने मन्त्री को फासी की सजा देते हुए कहा–"मेरे पहले वाले राजा भी ऐसा ही करते रहे हैं। यह तो साधारण सी वात है।"

अवगयराहो जो खलु चेया सो होई अवराधो।

(जिस जीव की प्रसन्नता नष्ट हो जाती है, वही अपराधी है।)

४२ : अपरिग्रह

क्या सब प्रकार के परिग्रह के भोग का त्याग करना ही वैराग्य है ?

हाँ; ऐसा वैराग्य भला किसे सुख नही देता ? सभी को देता है-

सर्वपरिग्रहभोगत्यागः
कस्य सुख न करोति विरागः ?

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

सुनते हैं कर्ण के शरीर पर जन्म के समय से ही अभेद्य कवच और कुण्डल थें। कर्ण के पिता सूर्य थे और अर्जुन के पिता इन्द्र अजेय कर्ण को तभी जीता जा सकता था, जब उसके शरीर से कवच कुण्डल उतरवा लिये जाते। इसके लिए इन्द्र ने सोचा कि कर्ण दानवीर के रूप मे प्रसिद्ध है अतः उससे कवच-कुण्डल माँग लिये जायँ तो वह दे देगा। सूर्य को यह बात किसी तरह मालूम हो गई तो उसने कर्ण को सावधान कर दिया कि यदि कोई तुमसे कवच-कुण्डल दान के रूप में माँगने आये तो मत दे देना। इस पर कर्ण ने कहा- "पिताजी ! मैं आपकी सारी आज्ञाओं का पालन कर सकता हूं, किन्तु अपने दान धर्म से परङमुख नही हो सकता, क्योंकि दान ही परिग्रह के पाप का इलाज है।" सूर्य मौन हो गये। इन्द्र ने एक विप्र का रूप धारण कर दान मे कवच-कुण्डल माग लिये, कर्ण ने खुशी से दे दिये फलतः वह युद्ध में मारा गया। परन्तु दानवीर के रूप मे उसकी कीर्ति आज भी अमर है—जीवित है।

दातव्यं भोक्तव्य,
सति विभवे सञ्चयो न कर्तव्यं।

(धन हो पर उसका दान करना चाहिये—भोग करना चाहिये किन्तु संग्रह नहीं करना चाहिये।)

४३ : अपरिग्रह

क्या महापुरुष परिग्रह से बचते हैं ?

हाँ; वे समझते हैं कि अर्थ अनर्थों का मूल है—

अत्थो मूलमणत्थाणं ।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

एक फकीर था, उसकी चादर किसी ने चुरा ली। फकीर ने थाने में रिपोर्ट लिखवाई, चोर भी पकड़ लिया गया, थानेदार ने चोर के सामने फकीर से पूछा कि तुम्हारी कौन-कौनसी वस्तु चोरी मे चली गई है।

फकीर ने कहा— "मेरी चादर, रजाई और धोती चली गई। तौलिया, तकिया, आसन और छाता भी गया। मै तो पूरी तरह लुट गया।"

यह सुनकर चोर ने चादर फेंकते हुए कहा— "मैंने केवल चादर चुराई थी। बाकी वस्तुओं का मुझे नही पता।"

फकीर अपनी चादर उठाकर चलने लगा। थानेदार ने उसे रोक कर पूछा— "जब तुम्हारी केवल चादर ही गई थी तो तुमने ढेर सारी वस्तुएँ क्यों गिनाई ? झूठ क्यो बोले ?"

फकीर ने कहा— "इसी मे मेरी गिनाई हुई सब वस्तुएँ छिपी हुई है"। फिर ओढ़कर बताया कि यह मेरी चादर और रजाई है, पहिन कर बताया कि धोती है, शरीर पोंछकर बताया कि तौलिया है। तह करके बताया कि तकिया और आसन है तथा सिर पर रखकर बताया कि यही छाता है। उत्तर सुनकर सभी लोग चकित हो गये।

अर्थमनर्थं भावय नित्यम् ।
नास्ति ततः सुखलेशः सत्यम् ॥

(अर्थ को सदा अनर्थ समझो, सच बात तो यह है कि उसमें सुख का लेश भी नही है।)

४४ : अपरिग्रह

क्या मनुष्य परिग्रह से सुखी नही हो सकता ? हाँ, हमे यह कभी नही भूलना चाहिये कि हम जो कुछ है (सद्‌गुणी) उसी से सुखी है, जो कुछ रखते है (धनाढ्य), उससे नही–

We are to be made happy, let us never forget it, by what we are, not by what we have.

(वी आर टु बी मेड हैपी, लेट अस नेवर फोर्गेट इट, बाइ व्हाट वी आर, नोट बाइ व्हाट वी हैव)

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक राजा ने किसी विवेकी सज्जन को अपने रत्नों का संग्रह दिखाया। उसने सोचा कि इतने अधिक हीरे-पन्ने, माणिक और मोती देखकर सज्जन उसकी प्रशंसा करेगे, परन्तु सज्जन ने वह रत्नो का ढेर देखकर पूछा– "राजन ! आप को इन सबसे आय क्या होती है ?" राजा ने कहा– "इनकी सुरक्षा के लिए सैनिक रखे गये है; उनके वेतन का खर्च उठाना पड़ता है। आय का तो कोई सवाल ही नही है।"

इस पर सज्जन ने कहा–"मेरे पड़ौस में एक बुढ़िया रहती है। उसने दो पत्थर खरीद कर उनसे घट्टी (चक्की) बनाई है। उसकी आमदनी से वह अपना पेट भरती है और अपने बच्चे को पढ़ाई का सारा खर्च भी निकाल लेती है, परन्तु करोड़ों रुपयो से आपने जो पत्थर खरीदे है, उनसे आपको कोई आमदनी ही नही; तो क्या आपकी समझदारी उस बुढ़िया से कम नही है ?" राजा को बात लग गई। उसने सब रत्न बेचकर प्राप्त धन का उपयोग जनहितकारी निर्माण कार्यों मे कर लिया।

सर्वभावेषु मूर्छायास्त्यागः स्यादपरिग्रहः ।

(सब पदार्थों से आसक्ति हटा लेना अपरिग्रह है।)

४५ : अपरिग्रह

क्या सारे परिग्रह को छोड़कर सदा अकेले ही विचरण करना चाहिये ?

हाँ; कहा है–

एकाकी विचरेन्नित्यम् त्यक्त्वा सर्वपरिग्रहम् ।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक मधुमक्खी बैठी-बैठी अपने हाथ (अगली टाँगे) घिस रही थी। राजा भोज ने अपने सभी दरबारियों से उसकी इस चेष्टा का कारण पूछा। किसी ने कुछ बताया और किसी ने कुछ। अन्त मे भोज की नजर कालिदास की ओर गई। उसने एक श्लोक बनाकर राजा भोज के प्रश्न का उत्तर दिया–

देयं भो ह्यधने धन सुकृतिभि–
नों सञ्चितं सर्वदा ।
श्री कर्णस्य बलेश्च विक्रमपते–
रद्यापि कीर्तिः स्थिताः ।
आश्चर्यं मधु दानभोगरहितं
नष्टं चिरात्संचितम् ।
निर्वेदादिति पाणिपादयुगलं
घर्षन्त्यहो मक्षिकाः ॥

(अरे! सज्जनों को चाहिए कि वे निर्धनों में धन वितरित किया करे, क्योकि सचित धन सदा टिकता नही है। दानवीर श्री कर्ण, राजा बलि और विक्रमादित्य का यश आज भी टिका हुआ है। आश्चर्य की बात है कि चिरकाल से संचित मधु दान और भोग से रहित होने के कारण नष्ट हो गया—इससे उदार होकर ही ये मक्खियाँ अपने दोनों हाथ और दोनो पांव घिस रही हैं।)

यह सुनकर प्रसन्न भोज ने प्रचुर धन कवि कालिदास को पुरस्कार में दिया।



४६ : अपरिग्रह

क्या भविष्य की चिन्ता करना मूर्खता हैं ?

हाँ, इसी मूर्खता के कारण भविष्य के लिए लोग संग्रह करते है, परन्तु वे भूल जाते है कि पुत्र यदि सुपुत्र होगा तो स्वय कमा लेगा और यदि कुपुत्र होगा तो संचित भी उड़ा देगा—

पूत कपूत तो का धन सचय ?
पूत सपूत तो का धन संचय ?

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

शाह शुजा ने अपनी पुत्रीमें विरक्ति-भाव देखकर किसी ज्ञानी फकीर से उसे विवाहित कर दिया । दुल्हन ने कुटिया मे साफ-सफाई शुरू की तो उसे छीके में एक रोटी पड़ी मिली । उसने आश्चर्य से पूछा– "पतिदेव ! यह क्या है ?" उत्तर मिला–"यह रोटी कल प्रात. नाश्ते के लिए रखी गई है ।"

दुल्हन खूब हंसी, फिर बोली–"पिताजी ने तो आपको वैरागी समझकर आपसे मेरा विवाह किया था । परन्तु आपको भी कल की फिक्र है । जो फिक्र का फाका करे, वही फकीर होता है । जिसमें फिक्र हो वह फकीर कैसा ? मच्छी को पानी मे कौन भोजन देता है ? अजगर किसकी चाकरी करता है ? पक्षी किसका काम करता है ? घास वन कपड़ो की चिन्ता करती है ? जब ये जानवर और घास तक कल की चिन्ता नहीं करते तब मनुष्य ही क्यो करे ? जब ये सग्रह नहीं करते तब मनुष्य ही क्यों परिग्रही बने ?"

ऐसा कहकर दुल्हन ने रोटी कुत्ते को डाल दी ।

अरक्षित तिष्ठति दैवरक्षितम्
सुरक्षितं दैवहत विनश्यति ।।

(भाग्य अनुकूल होने पर असुरक्षित भी बच जाता है । और प्रतिकूल होने पर सुरक्षित भी नष्ट हो जाता है ।)

४७ : अपरिग्रह

क्या उपदेश के अनुरूप ही आचरण होना चाहिए ?

हाँ, परन्तु प्राय. ऐसा होता नही है, वन्ध और मोक्ष के विषय मे लम्बी-चौड़ी चर्चायें करते है परन्तु बन्ध का क्षय कर मोक्ष मार्ग की ओर न बढ़ने वाले ज्ञानी केवल वाणी से ही सन्तुष्ट रहते है–

भणता अकरिन्ता य,
वन्धमोक्खप्पइण्णिणो ।
वाया विरियमत्तेण,
समासासन्ति अप्पयं ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक सन्यासी प्रतिदिन गाँव मे भिक्षा के लिए जाता और खाने-पीने के वाद वची हुई ऐसी सामग्री, जो दूसरे दिन तक रखने पर खराव नहीं होती हो, वाँधकर एक खूँटी पर टाग देता था। उसकी झोपड़ी मे चूहे बहुत थे, टाँगने का उद्देश्य चूहों से सामग्री को बचाना ही था। फिर भी कभी-कभी कोई नालाक चूहा खूँटी तक उछलकर पहुँच ही जाता था।

एक दिन दर्शनार्थ आये हुए लोगो को वे अपरिग्रह का उपदेश दे रहे थे। लोभ से मनुष्य परिग्रही वनता है, लोभ पाप का बाप है आदि, परन्तु श्रोताओ ने देखा कि उपदेश करते हुए सन्यासी की नजर वार-वार खूँटी पर दौड जाती थी। एक श्रोता ने उठकर पोटली खूँटी से उतार कर खोली तो उसमे पाँच लड्डू बँधे हुए दीखे, पूछने पर उसने वताया कि ये कल के लिए रख छोड़े है। उपदेश से विपरीत आचरण देखकर सव ने संन्यासी को धिक्कारा।

कहते सो करते नही, मुँह के वड़े लवार।
काला मुंह हो जायगा, साई के दरवार ॥

४८ : अबला

क्या अबला प्रबला होती है ?

हाँ; सोच ले तो वह सब कुछ कर सकती है–

कहा न अबला करि सकै ?
कहा न जलधि समाय ?

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

भरी सभा में जब द्रौपदी की साड़ी खीची जा रही थी, तब दर्शकों को समझ मे नही आ रहा था–

सारी बीच नारी है कि
नारी बीच सारी है कि
सारी ही की नारी है कि
नारी ही की सारी है ?

उसकी दुर्दशा देखकर भी उसके पांचों पति निष्क्रिय होकर बैठे थे। दु:खिनी द्रौपदी के मुंह से निकला–

सुसरासूं जो सासू जणती
एक ही सुत।
तो साड़ी न खिचती
मूंछा खिचती सांवरा!

(सासू ने मेरे ससुर से एक भी पुत्र पैदा नहीं किया। सब दूसरों से पैदा किये–कोई धर्म से, कोई पवन से, कोई इन्द्र से. अन्यथा मेरी साड़ी न खिचकर आज उनकी मूंछे खिचती अर्थात् मूंछों पर ताव देकर वह मूंछ बचाने का प्रयत्न करता।)

श्रीकृष्ण ने भी उसने चुभती बात कह दी–

पहले केस खिचाय, पछै बढ़ायो चीरड़ो।
आधा देर लगाय, आखिर जानि अहीरड़ो॥

४९ : अभयदान

क्या अभयदान सब दानों मे श्रेष्ठ है ?

हाँ; कहा है–

दाणाणसेट्ठ अभयप्पयाणं ।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक दिन महात्मा बुद्ध जंगल में घूम रहे थे। वहाँ एक राजा अपनी म्यान से तलवार निकाल कर एक पेड़ से बँधे हिरण पर प्रहार करने ही वाला था कि महात्मा बुद्ध बीच में आकर खड़े हो गये। मृत्यु भय से थर-थर काँपते हुए हिरण को देखकर करुणा सागर महात्मा बुद्ध से उसका दु:ख देखा नही गया। उन्होंने राजा की ओर मुंह करके कहा–"हे राजन् ! तलवार का प्रहार करने से पहले इस हरिण के काँपते हुए शरीर को देखिए। फिर सोचिए कि यदी आपकी जगह यह होता और इसकी जगह आप बँधे होते तो आपको कैसा अनुभव होता ! अधिकाश प्राणियों को अपने शरीर पर मोह होता है; इसीलिए यह इतना डर रहा है। हाँ, मुझे अपने शरीर के प्रति मोह नही है. इसलिए यदि आप विना वध किये अपनी तलवार म्यान मे न डालना चाहे तो मेरे शरीर का वध कर सकते है। मुझे कोई दु:ख नही होगा; वल्कि इससे सुख ही होगा कि किसी को बचाने मे शरीर काम आया।" राजा ने तलवार म्यान में डालकर हरिण को मुक्त कर दिया। फिर महात्मा बुद्ध से अहिंसा का उपदेश सुनकर अपने नगर को लौट गया।

अहिंसा निउणा दिट्ठा
सव्वभूएसु संजमो ।

(अहिंसा को (प्रभु ने) कल्याणकारी समझा है। सभी प्राणियों के प्रति संयम का व्यवहार करना ही अहिंसा का स्वरूप है।)

५० : अभिमान

क्या अभिमानी को सम्मान नही मिलता ?

हाँ; उसका सर्वत्र अपमान होता है। इसीलिए एक कहावत प्रसिद्ध हो गई है–

"घमण्डी का सिर नीचा।"

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक विशालकाय वृक्ष ने किसी पौधे से कहा–"कितना क्षुद्र जीवन है तुम्हारा ? जीना हो तो मेरे समान उन्नत और विशाल बनो या फिर समाप्त हो जाओ।"

बात पूरी हुई ही थी कि सहसा आँधी आई, नन्हा पौधा झुक गया, हवा उसके ऊपर से निकल गई। परन्तु जो बडा वृक्ष अपनी अकड मे खडा था, वह चट्‌चट्‌ चडाक की तीव्र ध्वनी के साथ जमीन पर गिर पडा। आँधी के गुजरते ही पौधे ने जब अपना सिर उठाया तो घमण्डी विशाल वृक्ष को जमीन पर लेटे पाया। अभिमान के इस दुष्परिणाम को देख कर पौधा धीरे-धीरे अपना सिर हिलाने लगा मानो सभी देखने वालो को यह सलाह दे रहा हो कि अभिमान का सदा अपमान होता है। इसलिए अभिमान से सबको सदा दूर रहना चाहिए। इस विषय मे एक इंगलिश की सूक्ति याद आ रही है–

Often a hen, who has merely laid an egg, cackles as if she had laid an asteroid.

(ऑफन ए हेन, हू हेज मियर्ली लेड एन एग, कैकल्स एज इफ शी हेड लेड एन एस्टेरोइड)

(अक्सर एक मुर्गी, जिसने सिर्फ एक अण्डा दिया हो (पैदा किया हो), इस तरह कुड़कुड़ाती है, मानो उसने किसी नक्षत्र को (सूर्य आदि किसी आकाश के पिण्ड को) जन्म दिया हो।)

निश्चय ही ऐसा घमण्ड हमें हँसी का पात्र बना देता है।

५१ : अभिमान

क्या अभिमान ईश्वर का विरोधी है ?

हाँ; आदमी का अहकार ज्यो-ज्यों कम होता जाता है, त्यो-त्यो उसमे ईश्वरत्व बढता जाता है—

As a man goes down in self, he goes up in God.

(एज ए मैन गोज डाउन इन सेल्फ, ही गोज अप इन गॉड ।)

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

एक दिन एक व्यक्ति घूमता हुआ खेल के मैदान मे जा पहुँचा। उस समय वहाँ फुटबॉल का गेम हो रहा था। खिलाड़ियो की 'किक' मे फुटबॉल उछल-उछलकर इधर से उधर और उधर से इधर भाग-दौडकर रहा था। व्यक्ति उसकी इस दशा को देख ही रहा था कि फुटबॉल सहसा उससे आ टकराया।

व्यक्ति ने पूछा—"भैया फुटबॉल ! तू इतना हल्का-फुल्का है कि बार-बार आसमान की ओर उछाला जाता है, फिर क्या कारण है कि सम्मान न करके ये खिलाड़ी तुझे ठोकरे मार-मारकर अपमानित करते है ? ।"

फुटबॉल ने उत्तर दिया—"क्या बताऊँ भाई ! मेरे हृदय मे जो अभिमान की टाइट हवा भरी हुई है, वही मुझे ठोकरे खाने को सदा विवश करती है। जिस समय यह हवा निकल जायगी, उसी समय मै इस कष्ट से मुक्त हो सकूँगा। ससार मे अभिमानी की ऐसी ही दुर्दशा होती है।"

गुरु नानक ने इसीलिए कहा था—

'नानक' नन्हे व्है रहो,
जैसे नन्ही दूब।
और घास जल जायगी,
दूब खूब की खूब ॥

५२ : अभिमान

क्या ज्ञान के लिए विनय आवश्यक है ?

हाँ; किसी विचारक ने लिखा है—यदि तुम ज्ञान पाना चाहते हैं तो नम्र बनो और जब ज्ञान प्राप्त हो जाय तो और भी नम्र बन जाओ—

Be humble if you would attain to wisdom. Be humble still when wisdam you have mastered.

(बी अम्बल इफ यू वुड अटेन टु विज्डम। बी अम्बलर स्टिल व्हेन विज्डम यू हेव मास्टर्ड ।)

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

समुद्र ने एक दिन नदियों से पूछा—"आप बड़े-बड़े वृक्षों को उखाड़कर अपने साथ बहा लाती है, परन्तु बेत के पौधों को कभी नही लाती। इसका कारण क्या है ? "

इस पर नदियों ने उत्तर दिया—"देव ! हम उन्ही अकड़कर खड़े रहने वाले वृक्षों को उखाड़ती हैं, जो हमारे तट पर हमारे जल से पोषित होकर भी हमारा आदर नही करते। बेंत के पौधे ऐसे नहीं होते। वे हमारे प्रवाह के सामने झुककर हमारा सम्मान करते हैं। उनके विनय से प्रसन्न होकर हम उनकी रक्षा करती है।" जिनसे हमें पोषण प्राप्त होता हो, जो हमारे उपकारी हों, उनके प्रति नम्र रहना, विनीत रहना सबका आवश्यक कर्तव्य है—ऐसी शिक्षा बेंत के पौधे अपने व्यवहार मे दे रहे है।

किसी अंग्रेज विचारक का कथन है—

Humility is the key of the door of heaven.

(ह्यूमिलिटी इज दि की आफ दि डोर आफ हैवन।)

इसका आशय है—'नम्रता स्वर्ग के द्वार की कुञ्जी (चाबी) है।'

५३ : अभिमान

क्या दूसरों की प्रशंसा करने की अपेक्षा स्वयं गुणवान् बनना अच्छा है ?

हाँ; महर्षि मार्क्स ने कहा था– "दूसरों की प्रशंसा में समय नष्ट मत करो। केवल उनके गुणो को अपना लो।"

कोई दृष्टान्त ? सुनिये–

एक व्यापारी ने अपनी बरणियों के संवाद इस प्रकार सुने--

१. मै चीन से आई हूँ, जो सभी अन्य राष्ट्रो से अधिक जनसंख्या वाला देश है।

२. होगा, पर मै रूस से आई हूँ, जिसको अन्तरिक्ष यात्राओं का लोहा सारा विश्व मानता है।

३. मानता होगा, पर मै तो उस अमेरिका से आई हूँ, जिसके पास दुनियाँ की आधी सम्पत्ति मौजूद है।

४. होगी सम्पत्ति, परन्तु मै उस जापान से आई हूँ, जिसने ट्रांजिस्टर रेडियो का आविष्कार करके गाँव-गाँव में मनोरंजन के कार्यक्रम फैला दिये है।

५ फैलाये होंगे, परन्तु मै तो उस इग्लैड से आई हूँ जिसने आधी दुनिया पर शासन किया है।

६. किया होगा, मै तो उस भारत से आई हूँ, जिसमें बुद्ध और महावीर पैदा हुए है।

यह सुनकर व्यापारी ने कहा– "अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनने मे क्या रखा है? जरा अपने हृदय को तो देखो। उसमे खट्टे अचार के सिवाय क्या है ? चरित्र अपना अच्छा होना चाहिये, केवल पूर्वजो का नही।"

उवएसा दिज्जन्ति हत्थे नच्चाविऊण अन्नेसिं।
ज अप्पणा न कीरइ, किमेस विक्काणुओ धम्मो ?

(हाथ नचा-नचाकर दूसरो को उपदेश दिये जाते हैं, किन्तु यदि स्वय उनका पालन नही किया जाता तो क्या धर्म केवल बेचने की वस्तु है ?)

५४ : अभिमान

क्या मान से साथ प्रिय (ज्ञान) नहीं रहता ?

हाँ; यदि मान (घमण्ड) है तो प्रिय (अभीष्ट ज्ञान) कैसा ? यदि प्रिय है तो अभिमान कैसे किया जा सकता है ? दो हाथी एक खम्भे पर नहीं बाँधे जा सकते—

जई माणो कीस पिओ, अहव पिओ कीस कीरए माणो ?
माणिणि ! दोवि गयंदा, एक्के खभे न बज्झन्ति ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

छोटे भाइयों के दीक्षित होने के बाद बाहुबली ने दीक्षा ली थी। दीक्षा के बाद बाहुबली तीर्थंकर ऋषभदेव की आज्ञा लेकर घोर तपस्या करने के लिए जंगल में चले गये. किन्तु वर्षों की तपस्या के बाद भी उन्हें कैवल्य प्राप्त नही हुआ, क्योंकि उनके भीतर अभिमान भरा था। अपने से छोटे भाइयों को वन्दन करने मे उनके अभिमान को चोट पहुँचती थी, अतः उन्होंने सोचा कि केवलज्ञान प्राप्त करने के बाद ही मै प्रभु के समीप जाऊँ, जिससे मुझे किसी को वन्दन न करना पड़े। परन्तु मान और ज्ञान साथ नही रह सकते अतः उन्हें कैवल्य प्राप्ति नही हुई।

अन्त में ब्राह्मी और सुन्दरी नामक दोनों बहने उन्हे अभिमान रूपी हाथी से नीचे उतरने का उपदेश देती हैं। बाहुबली प्रतिबोध पाकर ज्यों ही अपने भाइयों को वन्दन करने के लिए कदम उठाते हैं, उन्हे कैवल्य प्राप्त होता है।

होही मोहुच्छेओ, तुह सेवाए धुवत्ति नन्दामि ।
ज पुण न वंदिअव्वो, तत्थं तुमं तेण झिज्झामि ॥

(हे प्रभो ! तुम्हारी सेवा करने से मोह निश्चय ही नष्ट होगा, अतः—इससे प्रसन्न होता हूँ, परन्तु तब तुम वन्दनीय नहीं रहोगे—इससे दुःख होता है—संताप होता है।)

५५ : अभिमान

अभिमानी की सेवा करना क्या भूल है ?

हा, अभिमानी मालिक कजूस और कठोर शब्दों का प्रयोग करने वाला होता है–इस प्रकार के मालिक को दोषी बताने वाला सेवक अपने आपको दोषी क्यों नही मानता कि वह सेव्य और असेव्य की पहचान किये बिना सेवा करने लगा ?

सेवक स्वामिन द्वेष्टि,
कृपण परुषाक्षरम् ।
आत्मन किं स न द्वेष्टि,
सेव्यासेव्यं न वेत्ति य· ।।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक नगर के बाहर बगीचे में दो ज्ञानी साधु आकर ठहरे। लोग उनके प्रवचन सुनने जाते और उनके दर्शनो से अपने को कृतकृत्य मानते। एक दिन प्रशंसा वहाँ के राजा के कानों तक पहुँच गई। अपने मन्त्री को साथ लेकर राजा भी दर्शनार्थ बगीचे मे पहुँचा। दूर मे राजा और मन्त्री को अपनी ओर आते देखकर ये दोनो महात्मा एक रोटी के लिए आपस मे झगडने लगे। राजा और मन्त्री झगडने के लिए प्रयुक्त तीखे शब्द सुनकर पलट गये। यह सोचकर कि जो लोग रोटी के लिए बुरी तरह लडते है, वे ज्ञानी नही हो सकते। उधर महात्माओं ने भी चैन की साँस ली कि आती हुई बला टल गई। धन और सत्ता के अभिमानियों का मुँह देखना भी नि.स्वार्थ व्यक्तियो के लिए अनुचित है।

मणिधर विष अणमाव
धारे पण नाणे मगन ।
बिच्छू पूँछ बणाव·
राखै सिर पर रजिया !

५६ : अभिमान

क्या वही व्यक्ति सब लोगों को प्रिय लगता है, जो अभिमान से रहित हो ?

हाँ; निरभिमानी व्यक्ति अपने कुटम्बियों एवं अन्य लोगों में सदा प्रिय (प्रेम पात्र) होता है—उसे ज्ञान, यश और अर्थ प्राप्त होता है और वह अपना कार्य सिद्ध करता है—

सयणस्स जणस्य पियो,
णरो अमाणी सदा हवदि लोए।
णाण जस च अत्थं,
लभदि सकज्ज च साहेदि ॥

कोई दृष्टान्त ? सुनिये—

अहमदाबाद मे तीस-पैंतीस वर्ष की अवस्था वाला एक ज्योषी रहता था। दस जनों को दस बातें कहता। उनमें से किसी एक की भविष्य-वाणी ठीक भी निकल जाती। नौ चुप रहते, किन्तु दसवाँ दस लोगो से कहता और वे दौड़े हुए अपना भविष्य जानने उसके पास चले आते। इस प्रकार तीन-चार वर्षों में वह विख्यात हो गया। लाखों रुपये कमाने के बाद अपने गुरु के दर्शन करने गया। गर्व से बोला—"आपकी कृपा से मेरे भवन के आसपास दिन-भर कारें खड़ी रहती है।" गुरु ने उसके अभिमान पर चोट करते हुए कहा—"रडियो के घरो के आसपास भी अनेक कारे खड़ी रहती है और धन भी तुझसे अधिक होता है।"

इससे उस ज्योतिषी की आँखे खुल गई। उसने अहमदाबाद छोड कर एक गाँव मे निवास कर लिया और वह सादा जीवन बिताने लगा। अभिमान नष्ट होने पर ऐसा ही होने लगता है।

माणविजएणं मद्दव जगयइ।

(अभिमान को जीत लेने पर मार्दव (कोमलता या नम्रता) उत्पन्न होती है।

✱

५७ : अभिमान

क्या दशा परिवर्तनशील होती है ?

हाँ; किसी को अपनी वर्तमान स्थिति पर अभिमान नही करना ाहिये। क्योंकि सारे दिन एक जैसे नही होते—

सबै दिवस एक से नहिं जात।

कोई दृष्टन्त ?

सुनिये—

फूल ने मन-ही-मन हँसते हुए एक अनगढ पत्थर की ओर देखकर हा—"अरे पत्थर! क्या तेरा जीवन भी कोई जोवन है ? न कोम-ता है, न सौंदर्य, क्या तू इस सुन्दर संसार का कलंक नहीं है ?"

शाम हुई फूल मुरझाया और जमीन पर गिरकर धूल में मिल या। किन्तु गिरने से पहले उसने छोटी-छोटी कलियो से मन की बात ह दी। कलियाँ भी पत्थर के प्रति घृणा के भाव रखने लगी।

दूसरे दिन एक मूर्तिकार की नजर उस पत्थर पर पड़ी। उसे उठा र वह घर ले गया। हथौड़ी-छैनी के प्रहारों से कुछ ही घण्टो मे उस त्थर की काया पलट दी। उस पत्थर को एक सुन्दर मूर्ति का आकार दिया। किसी सज्जन ने उसका मूल्य चुकाकर उसे अपने मंदिर में तिष्ठित किया। उधर कलियाँ विकसित होकर फूल बन गई। माली कूल बेचने गया। मूर्ति खरीदने वाले सज्जन ने फूल भी खरीदे और उन्हें मूर्ति के चरणों मे चढा दिया। फूलों ने ध्यान से देखा तो उन्हे हचानने मे कोई देर नही लगी कि यह वही अनगढ पत्थर है। पूछने पर मुस्कराते हुए पत्थर ने कहा—"हाँ-हाँ, मैं वही पत्थर हूँ। आपने मुझे पहचान लिया, अच्छा ही हुआ; अब भविष्य में कोई फूल किसी पत्थर की हँसी नही उड़ायेगा।"

यह कहावत ठीक ही बनी है—

"घमण्डी का सिर नीचा।"

५८ : अभिमान

क्या ज्ञानी को अभिमान नहीं होता ?

हाँ; जो विद्वान् और कुलीन होता है, वह कभी घमण्ड नही करता। इससे विपरीत गुणहीन मूढ़ लोग बकवाद करते रहते हैं। जल से पूरा भरा घड़ा ध्वनि नहीं करता, अधूरा ही करता है–

सम्पूर्णकुम्भो न करोति शब्दम्, अर्धो घटो घोषमुपैति नूनम्।
विद्वान कुलीनो न करोति गर्वम्, जलपन्ति मूढास्तु गणैर्विहीना॥

कोई दृष्टन्त ?

सुनिये–

एक योगी को किसी धनाढ्य व्यक्ति ने भोजन के लिए बुलाया। उसे थाली परोसकर वह अपनी विशाल सम्पत्ति का वर्णन करने लगा कि अपने पास इतनी जमीन है–इतने बँगले है–इतनी कारे है और इतने-इतने कारखाने है। फिर कहा कि आप जैसे भिखारियों के लिए एक अन्नसत्र भी जल्दी ही खोलने का संकल्प है। भवन-निर्माण के वाद ही यह हो सकेगा।

योगी ने उसके कमरे में रखे हूए ग्लोब (पृथ्वी के गोले) की ओर इशारा करकेकहा कि इसमे एशिया महाद्वीप में भारत कहाँ है? सेठ ने ढूंढ़कर उस पर उँगली रख ली। फिर पूछा कि इसमें वम्वई कहाँ है? और वम्वई में आपके बँगले और कारखाने कहाँ हैं? सेठ ने कहा कि पृथ्वी के नक्शें में बंगले और कारखाने नही वताये जाते। योगी ने हँसते हुए कहा कि पृथ्वी के गोले मे आपकी चल-अचल सम्पत्ति का जब कोई निशान तक नही तो उसके लिए घमण्ड किस वात का?

सेठ योगी के चरणों में गिर पड़ा। उसका गर्व गलकर नष्ट हो गया था, इसलिए वह विनीत वन गया।

माणो विणयनासणो।

(मान विनय का नाशक है।)

५९ : अभिमान

क्या एक अण्डा देने वाली मुर्गी इस तरह कुकड़ाती है, मानो उसने किसी नक्षत्र को जन्म दिया हो ?

हाँ,

Often, a hen who has merely laid one egg, cackles as if she had laid on asteroid.

(औफन, ए हेन हू हेज मीअरली लेड वन एग, केकल्स एज इफ शी हेड लेड एन एस्टेरोइड)

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

एक बार श्रीकृष्ण को अपनी नृत्यकला पर अभिमान हो गया। उसे मिटाने के लिए एक मयूर सामने आकर खडा हो गया, उसने कहा—

हुआ आपको गर्व मुरारी ।
बाजी हमसे आज तुम्हारी ॥

आप से आज मै नाच में मुकावला करूँगा। गोपियाँ हम दोनो का नाच देखेगी और जो भी निर्णय देगी, हमे मजूर होगा। श्रीकृष्ण ने इस चुनौती को स्वीकार कर लिया। सबसे पहले श्रीकृष्ण ने ही नृत्य प्रारम्भ किया। वे मस्त होकर नाचते रहे, फिर कला का सम्पूर्ण प्रदर्शन करके वैठ गये।

अव मयूर की बारी आई, अपने सुन्दर पंखो को फैलाकर मयूर ने ज्यो ही अपनी नैसर्गिक कला दिखाई, त्यों ही सब दर्शक मन्त्रमुग्ध हो गये। गोपियों ने मयूर के पक्ष में निर्णय दिया। मयूर ने अपने पख श्रीकृष्ण को भेट किये। राधा ने उनसे श्रीकृष्ण के लिए मुकुट वनाया। सोने का मुकुट छोडकर श्रीकृष्ण उसी दिन से "मोरमुकुट" धारण करने लगे। वे समझ गये कि कृत्रिम कला नैसर्गिक कला का मुकावला नही कर सकती। राधा ने उनसे कहा—

पोल खुली कितना है पानी। धेनु चरानी ही वस जानी ॥

६० : अभिमान

क्या कुलीनता का गर्व सब गर्वों से बढ़कर है ?

हाँ; कुलीनता का सम्बन्ध सद्‌गुणों से है, उच्च कुल में जन्म लेने से नही—

Of all vanities the vanity of high birth is the greatest True nobility is derived from virtue not from birth.

(ऑफ ऑल वैनिटीज दि वैनिटी ऑफ हाई बर्थ इज दि ग्रेटेस्ट. ट्रू नोबिलिटी इज डेराइव्ड फ्रोम वर्च्यु, नोट फ्रोम बर्थ.)

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

हकीम लुकमान विश्वविख्यात चिकित्सक था। उसकी सुयोग्य सफल चिकित्सा से प्रभावित होकर किसी बादशाह ने उसे मुंहमांगा पारितोषिक देने की तैयारी से कहा— "जो भी आप की इच्छा हो, माँग लीजिये।" हकीम लुकमान ने उत्तर दिया—"मै भिखारी से कुछ नही माँगना चाहता, जो अधिक चाहता है, वही निर्धन है— भिखारी है, भले ही वह उच्च कुल में पैदा हुआ हो। इससे विपरीत जो कुछ नही चाहता—अपनी स्थिती से सन्तुष्ट है। वही बादशाह है। भले ही उसका जन्म साधारण कुल मे हुआ हो। तुम लोभवश दूसरे देशों पर चढाई करते हो—निर्दोष व्यक्तियों के रक्त से जमीन को लाल करते हो— हजारों पत्नियों को विधवापन देकर उनका दाम्पत्यसुख नष्ट करते हो। फिर भी संतोष के अभाव से कंगाल बने रहते हो। तुम मुझे दयापात्र समझते हो। परन्तु वास्तव में तुम्हीं दयनीय हो—जरा ध्यान से सोचोगे तो बात समझ में आ जायगी।"

बादशाह को बात समझ में आ गई, उसका अभिमान हवा हो गया; जो विनय का नाशक है—

माणो विणयनासणो।

(अभिमान विनय को नष्ट कर देता है।)

क्या हस थोड़े होते हैं ?

हां, परन्तु जो थोड़े होते हैं, उन्हे यह समझ कर कभी ... ही चाहिये कि वे हस है। गुणों से ही व्यक्ति का सन्मान होता है। गुणियों मे स्त्री-पुरुष या छोटे-बड़े का विचार नहीं किया जाता—

गुणा पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्ग न च वय. ।

कोई दृष्टान्त ? सुनिये—

एक धर्मानुयायी, जिसके साधुओ की सख्या थोड़ी थी, दूसरे धर्मानुयायी से, जिसके साधुओं की सख्या अधिक थी, कहने लगा—"हंस तो दुनिया मे थोड़े ही होते हैं।"

इस पर दूसरे ने पहले मे कहा—"हंसो का दर्शन न तो मैंने किया है, न आपने और न आपके वाप ने ही। इसलिए उनकी चर्चा छोड़कर हम उनकी सख्या का विचार करें, जिनके दर्शन हमें प्राय. होते रहते हैं। कहिये, इस गाँव मे कसाई कितने है और व्यापारी कितने ? चोर कितने हैं और नौकर कितने ?"

इस उत्तर से वह निरुत्तर हो गया। उसके घमण्ड को दूर करने के लिए ऐसा उत्तर जरूरी था। परन्तु यदि वास्तव मे दुनिया की जांच की जाय, तो इसमे सज्जन कम मिलेंगे, जैसा कि कहा गया है—

दृश्यन्ते भुवि भूरि निम्बतरव. कुत्रापि ते चन्दना.
पाषाणै परिपूरिता वसुमती वज्रो मणिदुर्लभः ।
श्रूयन्ते करटारवाश्च सततं चैत्रे कुहुकूजितम्
तन्मन्ये खलसकुल जगदिद द्वित्राः क्षितौ सज्जनाः ॥

(पृथ्वी पर वहुत से नीम के झाड दिखाई देते हैं, चन्दन कहीं-कहीं—सारी पृथ्वी पत्थरो से भरी हुई है वज्ररत्न दुर्लभ है— कौए की आवाजे लगातार सुनाई पडती हैं, 'कुहू' (कोयल की) ध्वनि केवल चैत्र मे। इससे मैं मानता हूँ सारा संसार दुष्टों से भरा है। पृथ्वी पर सज्जन दो-तीन ही हैं।)

६२ : अभिमान

क्या उच्चकुल में जन्म लेने का अभिमान सब अभिमानों से बढ़कर है?

हाँ;

Of all vanities the vanity of high birth is the greatest

(ऑफ ऑल वैनिटीज, दि वैनिटी ऑफ हाइ बर्थ इज द ग्रेटेस्ट।)

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक राजकुमार अपनी ससुराल को चला। उसके पास धनुर्विद्या का बल था और अपनी कुलीनता का अभिमान भी। इसलिए उसने सैनिक या अंगरक्षक अपने साथ नही लिये। उधर से पत्नी को साथ लेकर लौटते समय भी उसने किसी अगरक्षक को साथ नहीं रखा। वह अपने तूणीर में कुल एक सौ बीस वाण रखकर रथारूढ़ हो चल पड़ा, मार्ग में एक भील का सामना हो गया। वह लुटेरा था। उसने बाण वरसाने शुरू कर दिये, राजकुमार ने भी अपने धनुष को सँभाला और भील के बाणों को बीच मे ही काट-काट कर फेंकने का कौशल प्रकट किया। एक सौ उन्नीस बाण समाप्त होने पर पत्नी ने विनयपूर्वक कहा कि अब यह अन्तिम बाण मेरा संकेत पाकर ही मारियेगा, अन्यथा हम दोनों खतरे में पड़ जायँगे। फिर रथ से बाहर झांक कर उसने भील पर एक कटाक्षवाण मारा। वह मन्त्र-मुग्ध-सा उसके सौन्दर्य का पान करने लगा। उसी समय पत्नी ने संकेत दिया। राजकुमार का बाण छूटते ही उधर भील के प्राण छूट गये। दोनों सकुशल अपने राज्य में आ गये। उस दिन से कुमार ने अभिमान करना छोड़ दिया।

"ज्ञान मान जहँ एकहु नाहीं ॥"

६३ : अभिमान

क्या अभिमानी मुंह की खाता है ?

हाँ, कहावत है–"घमण्डी का सिर नीचा।"

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक पटेल ने नौवाँ विवाह किया। उसकी नई पत्नी छाछ विलो रही थी। पीछे से उसका घाघरा हिलता जाता था। पटेल उसे देखकर खुश हो रहा था। उसे इस बात पर गर्व था कि वह नौवीं औरत को पैसे के बल पर ब्याह लाया है, बोल-बोलकर गाने लगा–

मेरी नौवी नाचे !
मेरी नौवी नाचे !

यह सुनकर कुछ समय तक औरत चुप रही–सहती रही, किन्तु जब बार-बार वही वाक्य कानों में पड़ने लगा, तब खीझकर खरी बात सुना दी कि मैं तो तुम जैसे उन्नीस को तलाक दे चुकी हूँ। तुम नौवी शादी में ही घमण्ड करने लगे ? यदि तुम आज ही मर जाओ तो मैं फिर बीसवाँ पति बना लूंगी। तुम्हारे पास विशाल सम्पत्ति है तो क्या हुआ ? मेरे पास पुष्ट शरीर है–सौन्दर्य है, श्रमशीलता है और यही मेरा वह धन है, जिसके बल पर कोई भी मुझे अपना सकेगा और मुझसे विवाह करने में अपने को सौभाग्यशाली मानेगा–

हम कहेंगे तुम सुनोगे,
तुम्हें आयेगी रीस।
तुम मरोगे हम करेंगे,
अबके पूरे बीस ॥

: ६४ अभिमान

क्या मूर्ख ही अभिमानी होते हैं ?

हाँ, कहा है–

वालजणो पगब्भई ।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक राजकुमार बहुत ही अभिमानी था। राजा ने उसे समझाने की अनेक बार असफल कोशिशे की, अन्त मे महात्मा बुद्ध से प्रार्थना की कि वे उसे समझाये।

महात्मा बुद्ध ने एक ही युक्ति से काम लिया। राजकुमार को अपने सामने बुलाकर कहा कि वह देखो, सामने नीम का एक पौधा खड़ा है, उसकी दो-चार पत्तियाँ तोड लाओ। राजकुमार ले आया। फिर उन्हे चबाने का आदेश दिया, इससे राजकुमार का मुँह कडवा हो गया। पत्तियाँ थूक देने पर भी कडवाहट नही गई, उससे क्षुब्ध राजकुमार ने उस पौधे को जड़ से उखाड़ फेंका। कारण पूछने पर उसने बताया–"जो पौधा अभी से इतना कडवा है, वह वृक्ष बनकर तो जहर ही हो जायगा। ऐसे पौधे को पनपने देने मे क्या बुद्धीमानी है? कौनसी दूरदर्शिता है ?"

महात्माजी ने कहा–"यही बात अपने अभिमानी राजकुमार के बारे मे प्रजा सोच ले तो ?"

राजकुमार को अपने अभिमान का भान हो गया और उसी दिन मे वह विनीत बन गया।

अभिमानी के हृदय में,
ज्ञान न करता धाम।
फटी जेब मे क्या कभी,
रहा सकते है दाम ॥



६५ : अभिमान

क्या अभिमान और विनय में जीवन-मृत्यु के समान महान् अन्तर है ?

हाँ; एक दोहे में यह अन्तर स्पष्ट किया गया है-

मैना जो 'मैं ना' कहे,
दूध भात नित खाय।
बकरी जो "मैं मैं" कहे,
उल्टो खाल खिचाय ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

भरत चक्रवर्ती अपना नाम लिखने के लिए वृषभाचल पर गये, जिससे वह अमर हो जाय; परन्तु वहाँ पूर्ववर्ती चक्रवर्तियों के खुदे हुए नामों को देखकर अत्यन्त विस्मित हुए। इससे उनका अभिमान तो गल ही गया; परन्तु उनके सामने अपना नाम लिखने का स्थान ढूंढ़ने की समस्या खड़ी हो गई। पूरे पर्वत पर तिल भर भी स्थान खाली न था, जहाँ वे अपना नाम खुदवाते। अन्त में किसी एक चक्रवर्ती का नाम मिटाकर उसके स्थान पर अपना नाम खुदवा दिया।

वहाँ के पुजारी ने कहा—"आज आपने नाम मिटाकर नाम लिखवाने की नई परम्परा डाली है। कल नया चक्रवर्ती आपके नाम के साथ भी यही कर सकता है।"

भरत चक्रवर्ती को इस आक्षेप का कोई उत्तर नहीं सूझा। उनके मान ने उन्हे लज्जित बना दिया।

लुप्यते मानतः पुंसाम्
विवेकामललोचनम्।

(अभिमान से पुरुषों की विवेकरूपी निर्मल आँख बन्द हो जाती है।)



६६ : अभ्यास

क्या अभ्यास से चंचल दुर्निग्रह मन भी वश मे हो जाता है?

हाँ; गीता में कहा है—यद्यपि निश्चय ही मन कठिनाई से वश मे होने योग्य है चंचल है ; किन्तु हे महान् भुजा वाले अर्जुन! अभ्यास और वैराग्य से यह वश में हो जाता है—

असंशयं महाबाहो !
मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय !
वैराग्येण च गृह्यते ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

एक किसान हल पर पाँव रखकर मिट्टी के ढेलों पर गहरी निद्रा में सो रहा था । राजा को आश्चर्य हुआ कि ऐसी ऊबड़-खाबड़ जमीन पर किसी को नींद कैसे आ सकती है । मन्त्री ने राजा से बहुत कहा कि अभ्यास से ऐसा हो सकता है । परन्तु राजा का इससे समाधान नही हुआ, फिर किसान को जगाकर मन्त्री अपने साथ महल में ले गया । उससे कह दिया कि तुम्हे छह मास तक यहीं रहना पड़ेगा खेती का हर्जाना खजाने से दे दिया जायगा । किसान ने प्रस्ताव मान लिया । मखमलों के कोमल गद्दी-तकियों पर उसे सुलाया गया । छह महीने बाद एक दिन मन्त्री ने उसकी शय्या पर केश तथा कुछ कपास के बीज डलवा दिये । उसे नीद नही आई । कारण पूछने पर उसने राजा के सामने कहा कि सेज पर केश घास की तरह और कपास के बीज कंकर की तरह चुभते रहे; नीद कैसे आती ? यह सुनकर राजा को अभ्यास का महत्व समझ में आ गया । अभ्यास से बुद्धू भी बुद्धिमान हो जाते हैं—

करत-करत अभ्यास के जडमति होत सुजान ।
रसरी आवत-जात ते, सिल पर परत निशान ॥

६७ : अभ्यास

क्या अभ्यास ही सफलता की कुञ्जी है ?

हाँ; कहा है—

> करत-करत अभ्यास के,
> जड़मति होत सुजान।
> रसरी आवत जात तें,
> सिल पर परत निशान ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

एक निर्धन आदमी अपने पालतू कुत्ते को जवार के टिक्कड खिलाता; फिर भी उसके कुत्ते में अपूर्व शक्ति थी। एक साहब ने भी कुत्ते को दूध-बिस्कुट खिलाकर पाला पाला था। एक बार दोनों कुत्तों की रेस हुई। उसमें साहब का कुत्ता बहुत पीछे रह गया। साहब ने पूछा कि तुम कुत्ते को क्या खिलाते हो ? उसने बिना चुपड़ी जवार की रोटी बताई। साहब ने भी दूसरे दिन से वैसी ही रोटी खिलाना शुरू कर दिया। परन्तु इससे उनका कुत्ता दुबला हो गया। इस पर चकित होकर साहब ने उस गरीब से पूछा कि तुम्हारे कुत्ते जैसी खुराक देने पर मेरा कुत्ता दुबला क्यों हो गया ?

आदमी ने उत्तर दिया कि शारीरिक पुष्टि का सम्बन्ध खुराक से नहीं व्यायाम से है, मैं कुत्तों के बीच खड़ा करके अपने कुत्ते को रोज खूब दौडाता हूँ। इसलिए सादी खुराक से भी वह पुष्ट है। आप भी उसे दौड़ाइये, फिर आपका कुत्ता भी मेरे कुत्ते जैसा बन जायेगा।

व्यायामपुष्टगात्रस्य, तेजो विद्यायशो बलम्।

(जिस व्यक्ति का शरीर व्यायाम से पुष्ट है, उसी में तेजस्विता, विद्वत्ता, यशस्विता और शक्तिमत्ता का निवास और विकास होता है।)

६८ : अवसर

क्या कुशल व्यक्ति अवसर का उपयोग करता है ?

हाँ; फिर भले ही वह अवसर कितना भी छोटा क्यों न हो। किसी कवि की यह प्रेरणा उसके मन में रहती है–

बिज्जुके झबूके मोती पोइलें तो पोइलें।

कोई दृष्टन्त ?

सुनिये–

किसी मन्त्रवादी ने अपनी पत्नी से कहा कि आज रात को ठीक बारह बजे मैं एक मन्त्र का जाप करूँगा। जाप पूरा होते ही हाथ में जल लेकर यदि तुम "ॐ स्वाहा" बोलती हुई उस जल के छींटे ज्वारी के ढेर पर लगा दोगी तो वे सबके सब मोती बन जायेंगे।

यह बात पड़ौस में रहने वाली एक बुढ़िया के कान में पड गई। उसने ज्वारी का ढेर बनाया। फिर अवसर की प्रतीक्षा में पानी भरा लोटा पास मे रखकर बैठ गई। नींद आने पर वह पानी से उँगलियां गीली करके आँखों पर लगा दिया करती। ठीक ग्यारह बजे के लग-भग मन्त्रवादी के मुंह से निकले मन्त्र की आवाज सुनाई पड़ने लगी। बुढिया और भी सावधान हो गई। उधर ठीक बारह बजे जाप पूर्ण होते ही मन्त्रवादी ने पत्नी के आदेश दिया कि वह ढेरी पर जल छिडके। पत्नी ने जल हाथ मे लेकर गुस्से में कहा "लो थांने गोऊँ" जल छिड़क दिया। मोती नहीं बने। बुढ़िया का ढेरी मोती मे बदल गई; क्योंकि उसने "ॐ स्वाहा" कहते हुए जल छिड़का था। दूसरे दिन उस बुढ़िया ने दक्षिणा में मुट्ठी भर मोती उसे दे दिये।

नरभव (मनुष्य योनि) की प्राप्ति होने पर भी जो धर्माचरण नहीं करते, वे मन्त्रवादी की पत्नी के समान मूर्ख है –

पी तो सुधा सुभाव की, जी ! तो कहूँ सुनाय।
तू रीतो क्यूं जात है, नरभव बीतो जाय॥

६९ : अवसर

क्या अज्ञानियों के बीच ज्ञानी, कौओं के बीच कोयल के समान ता है ?

हां; यदि मौन रहे तो उसे कोई पहचान नही सकता। इसीलिए सी कवि ने कहा है—हे कोयल ! तू चुप मत रह, पंचम स्वर में छ गा, अन्यथा कौओं के झुण्ड से आच्छादित आम के वृक्ष पर तुझे ौन जान सकेगा ?

रे रे कोकिल ! मा भज मौनम्
किञ्चदुदञ्चय तञ्चमरागम्
नोचेत्त्वामिह को जानीते ?
काक कदम्बकपिहितरसाले ?

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

एक धर्मात्मा पंडितजी किसी गाँव मे महीने भर तक प्रवचन करते रहे। जब वे विदा होने लगे तब गाँव की सीमा तक लोग पहुँचाने गये। वहाँ एक चरवाहा बकरियाँ चरा रहा था। उसने देखा कि लोग आँसू बहाते हुए पंडितजी के चरणों में झुक रहे हैं। उसे समझ में नही आया कि पंडितजी का इन लोगों ने कौन-सा अपराध कर डाला है कि इस तरह उनसे माफी माँगी जा रही है। इतनी अधिक संख्या में होकर भी ये डर क्यों रहे हैं ? चाहे तो सब मिलकर इसकी खासी पिटाई कर सकते हैं। मैं अकेला भी इसका दिमाग दुरुस्त कर सकता हूं। ऐसा सोचकर लोगों के विदा होने पर वह लाठी उठाये हुए पंडितजी के पास पहुँचा। अवसर को जानकार पंडितजी ने तिनका मुँह मे रखकर कहा—"मैं तो तुम्हारी गाय हूँ !" चरवाहे ने कहा—"आ गये न सीधी राह पर ?" पंडितजी बोले तुम—"मेरे गुरु हो, क्योंकि अज्ञानी हो।" मूर्ख खुश हुआ, वह 'अज्ञानी' शब्द का अर्थ क्या जाने ?

"समझदार का मैं गुरु, अज्ञानी का दास !"

७० : अविद्या

क्या वाणी से ही पुरुष की पहिचान होती है ?

हाँ; पुरुष विद्वान है या मूर्ख– यह उसकी वाणी से ही मालू होता है। शुद्ध वाणी ही एकमात्र ऐसा गुण है, जो पुरुष की शोभा बढ़ाता है–

वाण्येका समलङ्करोति पुरुषम् या संस्कृता धार्यते ॥

कोई दृष्टान्त ? सुनिये–

चार प्यासे व्यक्ति पानी पीने के लिए एक कुए के निकट गये। वहाँ एक चतुर स्त्री पानी भरने आई थी। उसने पूछा–तुम कौन हो? एक ने कहा– "हम मुसाफिर हैं।" स्त्री बोली– "मुसाफिर दुनियां में दो ही हैं।" दूसरे ने कहा– "हम गरीव है।" स्त्री ने कहा– "गरीब दुनियां में दो ही हैं।" तीसरे ने कहा– "हम दुष्ट है।" स्त्री बोली– "दुष्ट दुनियाँ में दो ही है।" चौथे ने कहा– हम मूर्ख है।" स्त्री ने कहा– "मूर्ख भी दुनिया में दो ही है।" फिर जल पिलाकर उन्हें विदा किया। किसी दूसरी औरत ने उस स्त्री के पिता से शिकायत कर दी कि आपकी वेटी चार पुरुषों के साथ वात कर रही थी। पिता ने राजा से शिकायत की। राजा ने स्त्री को दरवार में बुलाकर कहा– "पर-पुरुपो के साथ तुम क्या बात कर रही थी?" स्त्री ने उत्तर दिया– "मैंने तो चार प्यासे आदमियो को पानी पिलाकर अपने धर्म का पालन किया है। परिचय पूछने पर उन्होंने क्रमशः मुसाफिर, गरीव, दुष्ट और मूर्ख वताया। तव मैंने कहा कि मुसाफिर दो हैं–सूर्य और चन्द्र। गरीव दो है–गाय और वेटी। दुष्ट भी दो है –काम और क्रोध। मूर्ख भी दो हैं–विना सोचे शिकायत करने वाला और शिकायत सुनकर विना सोचे गुस्सा करने वाला।" राजा ने प्रसन्न होकर स्त्री को छोड़ दिया।

विना विचारे जो करे, सो पाछे पछिताय।
काम विगारे आपुनो, जग मे होत हँसाय ।

७१ : अविद्या

क्या सुविद्या माता के समान होती है ?

हाँ, दूसरा गुण विद्या मे यह है कि वह देने से बढ़ती है—

मातेव का या सुखदा ? सुविद्या ।
किमेधते दानवशात् ? सुविद्या ॥

कोई दृष्टान्त ? सुनिये—

एक सेठ की पत्नी दूसरी कक्षा तक पढ़ी थी। वह एक दिन सेठजी की खाता वही देख रही थी। उसमें जगह-जगह लिखा हुआ था—दस रुपये-चन्दा, पाँच रुपये चन्दा आदि। सेठानी ने वह बात गाँठ मे बाँध ली। सेठ के प्रति उसकी दृष्टि बदल गई। व्यवहार मे भी रूखापन आ गया। एक दिन सेठ ने सेठानी से पान माँगा। वह बोली—"उस चन्दा के पास जाकर माँगिये, जिसे हमेशा नकद रुपये देते है।"

सेठजी कुछ समझ नही पाये। पूछा—"क्या बात है ? जरा साफ-साफ कहो।"

सेठानी—"हाँ, बड़े भोले बनकर पूछ रहे हो न ? जैसे कुछ जानते ही नही ! खाता वही देखकर मैने सब जान लिया है। तुम्हारी सारी काली करतूते उजागर हो गई है। मै जीवित हूँ। फिर भी उस चन्दा नामक राँड के पास जाकर कभी पाँच रुपये तो कभी दस रुपये दे आते हो। क्या तुम्हे जरा भी शर्म नही आती ?

सेठ ने अपना माथा ठोकते हुए कह—"इसमे दोष तुम्हारी अधूरी पढाई का है, तुम्हारा नही।"

शुनः पुच्छमिव व्यर्थ, जीवन विद्यया विना ।
न गुह्यगोपने शक्त न च दशनिवारणे ॥

(विद्या के बिना जीवन कुत्ते की उस पूंछ की तरह व्यर्थ है, जो न तो गुप्त अंग की रक्षा करने में समर्थ है और न दंश (डास-मच्छर के आक्रमण) का निवारण करने मे ही सक्षम है।)

७२ : अविद्या

क्या विद्या के बिना जीवन सूना लगता है ?

हाँ; कहते है ?

अविद्या जीवन शून्यम् ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

एक छोटा-सा गाँव था। उसमें एक जाट रहता था। जाट ने अपने जीवन में कभी शहर देखा नही था। परन्तु शहर जाकर आने वालो से वह सदा शहर की प्रशसा सुना करता था कि वह देखने योग्य है। एक दिन अपने काम-काज से फुरसत निकालकर वह अपने गाँव के पास वाले शहर को देखने के लिए चल दिया। शहर मे पहुँचने के बाद इधर-उधर के आकर्षक सुन्दर दृश्य देखता हुआ वह पेटियो की एक दूकान के पास से गुजरा। उसने एक नजर दूकान मे जमी हुई रग-विरगी पेटियो पर डाली। दूकानदार तो सदा नजरो पर ही नजरे जमाये रहते हैं। उसे पेटियो का ग्राहक समझकर दूकानदार ने आदर के साथ बुलाया और उसे अनेक तरह को छोटी-बडी पेटियाँ दिखाईं। जाट देखता रहा और अन्त मे दूकान से नीचे उतरने लगा दूकानदार ने पूछा कि क्या पेटी नही लोगे ? जाट ने कहा कि मै पेटिया देखने आया था, लेने नही। फिर "क्यो ?" इस प्रश्न के उत्तर मे जाट बोला—"जब अपने सारे कपड़े-लत्ते उतारकर इस पेटी मे रख दूंगा तो पहनूंगा क्या तेरा सिर ?"

अज्ञता नाम कस्येह
नोपहासाय जायते ?

(अज्ञान इस संसार मे भला किसे हँसी का पात्र नही बनाता ?)

✱

७३: अविवेक

क्या अन्धानुकरण भयंकर होता है ?

हाँ, इसीलिए कहा जाता है कि अनुकरण सोच-समझकर ही किया जाना चाहिये, अन्यथा खतरे में पड़ने की सम्भावना रहती है– कहावत है–

"नकल में भी अकल चाहिये ।"

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक बनिये का बेटा ससुराल गया। गर्मी का मौसम था। उसने कहा– "मै ठण्डे पानी से नहाऊँगा और चादर ओढकर बाहर ही खुले मैदान मे सोऊँगा।" ससुराल वाले समझदार थे। उन्होंने नहाने के लिए ठण्डे पानी की व्यवस्था कर दी। भोजन मे भी दही-बड़े, श्रीखण्ड आदि ठण्डे स्वादिष्ट पकवान बनवाये। दोपहर को नाश्ते मे आईस्क्रीम, दही की लस्सी आदि दिये गये। कमरे मे चौबीस घण्टे बिजली का पंखा चलता रहा। शाम को भोजन के बाद मैदान मे पानी छिडकवाकर पलग बिछाया गया। उस पर गादी-तकिया और एक चादर दी गयी। उसे आराम से नीद आई। उसके साथ एक नाई भी आया था। उसने स्वागत-सत्कार के तौर-तरीके देखे। फिर कुछ महीनो के बाद सर्दी के मौसम मे वह अपनी ससुराल गया। वहाँ उसने भी खाने-पीने के लिए दही-बड़े, श्रीखण्ड, आईस्क्रीम, दही की लस्सी आदि की माँग की और ससुराल वालो के द्वारा बार-बार समझाये जाने पर भी खुले मे जमीन पर ठण्डा जल छिडकवा कर बिछवाये गये पलग पर केवल चादर के सहारे सो गया और दूसरे दिन भयकर बीमारी का शिकार बन गया।

अनुकरण अच्छा है, पर परिस्थिती पर विचार करके ही अनुकरण करना चाहिये, अन्यथा नाई जैसी दुर्दशा हो सकती है।

"देखादेखी साधे जोग। छीजे काया बाधे रोग।"

✻

७४ : अविवेक

जो थोड़े के लिए बहुत-सी हानि उठाता है, क्या वह विचारमूढ़ (मूर्ख) है ?

हाँ;

स्वल्पस्य हेतोर्बहु हातुमिच्छन् विचारमूढः प्रतिभासि मे त्व।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

मेवाड़ के किसी महाराणा के पास एक चारण पहुँचा। उसने अपनी हथेलियों को खुजाने की आदत पाल रखी थी। कविता सुनाने के साथ उसकी इस आदत का भी प्रदर्शन हो जाता था। महाराणा ने उससे कहा कि यदि तुम चौबीस घण्टो तक बिल्कुल हथली न खुजाओ तो मैं तुम्हें पाँच सौ गाँव भेंट कर दूं।

रास्ते का आम
फायदे का काम
जागिरी में गाम
घर बैठे दाम
और मुफ्त में नाम

भला कौन नही चाहता ? चारण ने बात मंजूर कर ली। कुछ घण्टे बीतने पर उससे रहा न गया तो उसने वीररस का काव्य सुनाने का बहाना करके हथेली की खाज मिटाना शुरू कर दिया। राणा की नजर से चारण की यह चालाकी छिपी नही रह सकी। उन्होंने उसे टोका तो चारण ने कहा कि खुजाये बिना तो मुझसे रहा नही जा रहा है। आप हर खुजली पर एक गाँव कम दे दे। चौबीस घण्टे तक उसकी खुजलाहटे गिनी गई तो वे पाँच सौ से अधिक हो गई। चारण को एक भी गाँव नही मिल सका।

विषय-भोग भी खाज की तरह त्याज्य हैं।

काम-भोग प्यारा लगे, फल किम्पाक समान।
मीठी खाज खुजावतां, पीछे दुख की खान॥

७५ : अविवेक

क्या नारियाँ पूज्य होती हैं ?

हाँ; यदि उनमें विवेक हो तो वे पूज्य हैं ही। माता को देव के समान समझने का उपदेश दिया गया है–"मातृदेवो भव।" जहाँ नारियाँ पूजी जाती है, वहाँ देवता खेलते हैं–

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते
रमन्ते तत्र देवता.।"

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक सेठ के पुत्र का विवाह हुआ। नई बहू ने घर पर अपना प्रभाव जमाना शुरू कर दिया। पति यदि कभी अपनी माँ की सेवा करता तो भी वह ईर्ष्या करती और पति को भला-बुरा कहने लगती–

माता की सेवा करे
दारा पीसे दन्त।
मेरा घरवाला नही
निज माता का कन्त॥

पत्नी की यह बात उसे बहुत खटकती; परन्तु वह तो अपने कर्त्तव्य का पालन ही करता रहा। "वह मेरा नही, अपनी माता का पति है!" ऐसी कठोर कर्णकटु बात सुनकर उसका दिल तिलमिला जाता। एक दिन वह पत्नी की सेवा कर रहा था कि माता ने भी बदला लेने के लिए वैसी ही कर्णकटु बात कह दी कि पत्नी की सेवा करने वाला यह आदमी मेरा नही, अपनी पत्नी का ही बेटा है–

परण्याने न्यारो हुयो
मात-पिता से बेटो।
म्हारो घर जायो नहीं
निज नारी को बेटो॥

यह सब अविवेक का ही कुफल था।

७६ : अविवेक

क्या विना सोचे नकल करने वाले दुःखी होते है ?

हाँ; इसलिए यह कहावत प्रसिद्ध हुई है–

"नकल में भी अकल चाहिए।"

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक सेठजी अपना नया मकान वनवा रहे थे। सेठजी भी वहीं प्लाट पर कुर्सी लगाकर बैठे थे; जिससे कारीगर और नौकर-चाकर वरावर काम करते रहें। कोई काम-चोरी न करे। गर्मी के दिन थे। सेठानी ने सोचा कि भोजन किये सेठजी को एक घण्टा हो गया है: अवश्य उन्हें प्यास लगी होगी। उसने एक लोटा-गिलास उठाया और स्वयं उन्हें पानी पिलाने जा पहुँची। लोटे से गिलास में जल उँड़ेलकर उसने सेठजी को गिलास थमाया। उन्होंने तृप्त होकर जल पिया। परन्तु अन्तिम घूंट मूंह मे ही रख ली। जव सेठानी लौटने लगी, तव 'फुर्रर' करके मुंह से जल सेठानी की साड़ी पर छिड़क दिया। सेठानी ने मुस्कराहट के साथ सेठजी पर तिरछी नजर डाली और घर मे प्रवेश किया।

यह दृश्य कारीगर देख रहा था। पत्नी को प्रसन्न करने का मानों उसे एक नुस्खा मिल गया। काम पूरा होते ही वह अपने घर गया। उसने पत्नी से गिलास मे ठण्डा पानी माँगा। वह ले आई। पानी पीकर अन्तिम घूंट उसने मुंह मे रख ली और पत्नी के मुड़ते ही उसकी पीठ पर छिड़क दी। इससे कारीगरनी को गुस्सा आ गया। वह चौके से वेलन उठा लाई और उससे कारीगर की खूब पिटाई की। मित्रों ने उसके मुंह से यह घटना सुनकर कहा कि नकल मे भी अकल की जरूरत होती है क्योंकि–

विना विचारे जो करे, सो पाछे पछताय।

७७ : अविवेक

क्या अनुकरण से संकट आते हैं ?

हाँ, यदि अनुकरण विचारपूर्वक न किया जाय तो उससे लाभ के बदले हानि हो जाती है–

देखादेखी साधे जोग ।
छीजे काया वाधे रोग ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक गाँव का व्यापारी शहर मे माल खरीदने आया । उसने एक खच्चर पर वताशे और दूसरे पर रुई लादी । लौटते समय रास्ते मे एक नदी पडती थी । वैसे पानी उसमे गहरा नही था–घुटनों-घुटनो के परिमाण मे था । नदी पार करते समय वताशे वाले खच्चर ने सोचा–कि शरीर मे गर्मी लग रही है और भार भी अधिक लदा है; सो यदि मै पानी मे वैठ जाऊँ तो गर्मी भी शान्त हो सकती है और भार भी कम हो सकता है । उसने वैसा ही किया । शक्कर के वताशे थे, गल-गल कर वाहर निकल गये । भार हल्का हो गया । उधर दूसरे खच्चर ने भी उसका अनुकरण किया । अन्धा अनुकरण करने वाले किस प्रकार सकटो को निमन्त्रण दे वैठते है–इसका उदाहरण उसने प्रस्तुत कर दिया । ज्योंही वह पानी मे वैठा, त्योही रुई मे पानी प्रविष्ट हो जाने से उसकी पीठ पर भार वढ गया । अव वह समझ गया कि व्यक्ति को सदा सोच-समझकर ही किसी का अनुकरण करना चाहिए । विना सोचे अनुकरण करना अपने अविवेक का परिचायक है ।

अविवेक. परमापदा पदम् ।

(अविवेक अर्थात् विवेक का अभाव बड़ी-वड़ी विपत्तियों का कारण वन जाता है ।)

७८ : अविवेक

क्या भारी ज्ञान से हल्का विवेक श्रेष्ठ है ?

हाँ; कहा है–

An ounce of discretion is worth more than a pound of knowledge.

(एन औंस ऑफ डिस्क्रेशन इज वर्थ मोर दैन ए पाउण्ड ऑफ नौलेज ।)

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

मथुरा से दो चौबे एक नाव में सवार होकर गोकुल की ओर रवाना हुए । दोनों भाँग के नशे में थे । नाव में बैठते ही दोनों उसे खूब जोरों से खेने लगे और समझते रहे कि हम गोकुल के निकट पहुँच रहे हैं, परन्तु सुबह होने पर भी वे गोकुल नहीं पहुँच पाये। रात-भर परिश्रम करते रहे, किन्तु वह सब व्यर्थ चला गया । नाव उतरने पर बड़े आश्चर्य से वे अपने आस-पास के वातावरण को देख रहे थे । इतने मे एक तीसरे आदमी ने उन्हें कहा–"अरे भाइयो ! यह मथुरा ही है । आगे बढ़ने के लिए नौका की रस्सी, जो इस घाट से बँधी है–तुमने खोली ही नहीं । यही कारण है कि तुम्हारा सारा परिश्रम व्यर्थ रहा ।"

यह सुनकर दोनों चौबे बहुत लज्जित हुए । श्रम करना अच्छा है परन्तु यदि वह विवेकपूर्वक न हो तो व्यर्थ हो जाता है । विवेक ही मार्गदर्शक है । शेक्सपीयर ने लिखा है–अपने ही विवेक को अपना गुरु बनाओ । जैसा कहो, वैसा करो और जैसा करो, वैसा कहो ।

Let your own discretion be your tutor. Suit the action to the word, the word to the action.

(लैट युवर औन डिस्क्रेशन बी युवर ट्यूटर । सूट दि एक्शन टु दि वर्ड, दि वर्ड टु दि एक्शन ।)

७९ : अविवेक

क्या विवेक से ही गुणों में सुन्दरता आती है ?

हाँ; विवेक से गुणों की वैसी ही शोभा होती है, जैसी रत्न जड़े हुए सोने (के आभूषण) की–

विवेकिनमनुप्राप्ता,
गुणा यान्ति मनोज्ञताम् ।
सुतरां रत्नमाभाति,
चामीकरनियोजितम् ॥

कोई दृष्टान्त ? सुनिये–

मोतियाबिन्द के चार रोगी एक अस्पताल में गये । वहाँ चिकित्सक की मेज पर लगे हुए काँच पर हाथ पड़ते ही एक ने कहा– "यह काँच है– ऐसा मेरे काका कहते थे।" दूसरा बोला– "यह काँच तो हरा है– ऐसा मेरे मामा कहते थे।"

तीसरे ने मुंह खोला– "यह काँच नीले रंग का है– ऐसा रंग विशेषज्ञ मेरे बड़े भाई का कथन है।" चौथे ने कहा– "काँच काला है– ऐसा पदार्थ विज्ञान परीक्षा प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण मेरे पुत्र की मान्यता होने से यही विश्वसनीय है।" यह सब सुनकर चिकित्सक महोदय बोले कि तुम दूसरों के कथन से अपनी बात सच्ची बता रहे हो, परन्तु यह मूढ़ता है–भोलापन है । यदि आपको सूझता होता तो सबका निर्णय समान होता कि काँच रंगहीन है।

पुराणमित्येव न साधु सर्वम्
न साधु सर्वं नवमित्यवद्यम् ।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते
मूढः परप्रत्ययनेय बुद्धि. ॥

(पुराना होने से ही सब अच्छा नही हो जाता और न सब नया होने से निर्दोष होता है। सज्जन परीक्षा करके मानते हैं। भोले दूसरो के भरोसे पर अपनी बुद्धी को दौड़ाते रहते है।) 

८० : अविवेक

जो जिसका गुण नही जानता, वह उसकी निन्दा करता है क्या?

हाँ; परन्तु यह कोई आश्चर्य की बात नही है। भील हाथी के मस्तक से प्राप्त मोती को छोड़कर गुन्जा को ग्रहण करता ही है।

न वेत्ति यो यस्य गुणप्रकर्षम्
स तं सदा निन्दति नात्र चित्रम्।
यथा किराती करिकुम्भलब्धाम्
मुक्तां परित्यज्य बिभर्ति गुन्जाम् ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

उदयपूर में राजपुत्र का जन्मोत्सव मनाया जा रहा था। महाराणा ने इस प्रसंग पर आयोजित भोज मे भीलों को भी निमन्त्रित किया। उन्हे एक पंक्ति में बिठाकर बाजो मे हलुआ परोसा गया। उन्होंने पहले कभी हलुआ देखा नही था। वे कुछ देर एक दूसरे को देखते रहे, फिर सब के सब बिना खाये ही उठ गये। मन्त्री के पूछने पर वे बोले–"हम तो इतनी दूर से यह सोचकर आये थे कि हमें मक्का की रोटी और छाछ मिलेगी, परन्तु आपने तो हमें यह गीला-गीला कच्चा आटा परोस दिया।" मन्त्री ने बहुत कुछ समझाने की चेष्टा की, परन्तु सब व्यर्थ गई। उनका अन्त तक यही आग्रह रहा कि हम गोबर नही खायेंगे। आखिर मन्त्री ने उन सबके लिए उनकी रुचि के भोजन (मक्का की रोटियाँ और छाछ) की तत्काल व्यवस्था कर दी।

गुणिनि गुणज्ञो रमते, नागुणशीलस्य गुणिनि परितोषः।
अलिरेति वनात्कमलम्, न दर्दुरस्तन्निवासोऽपि ॥

(गुणज्ञ ही गुणवान से प्रसन्न होता है। निर्गुण गुणी से सन्तुष्ट नही हो सकता। भौंरा वन से कमल पर आता है, किन्तु मेंढक निकट रहकर भी कमल की सुगन्ध का लाभ नही उठाता।)

८१ : अविवेक

क्या विवेक से ही दुःख दूर हो सकते हैं ?

हाँ, जिस प्रकार रात के अंधेरे को सूर्य ही नष्ट कर सकता है, वैसे विवेक ही पुरुषों के व्यसन (दुःख) को दूर करने में समर्थ है—

विवेक एव व्यसनम्
पुसां क्षपयितुं क्षमः ।
अपहर्त्तुं समर्थोऽसौ
रविरेव निशातमः ।।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

रात को सड़क पर लगी सरकारी बल्ब की रोशनी में एक बुढ़िया सुई ढूंढ रही थी। उस समय की परेशानी मिटाने की दृष्टि से किसी ने उससे पूछा—"माँजी ! आपकी सुई कहाँ गिरी थी ?" बुढ़िया बोली—"घर मे !"

सुनने वाले ने फिर पूछा—"घर में ? यदि घर मे गिरी है तो सड़क पर ढूंढने से कैसे मिलेगी ?"

इस पर बुढिया का उत्तर था—बेटा ! घर मे प्रकाश नहीं था, इसलिए जहाँ प्रकाश देखा, वही उसे ढूंढने चली आई।"

युवक बुढ़िया के अविवेक पर जरूर हँसा होगा। परन्तु जगत मे नब्बे प्रतिशत व्यक्ति ऐसे ही अविवेकी है, जो भीतर खोये सुख को बाहर ढूंढने मे अपना पूरा जीवन बिता देते हैं। इस प्रकार उनका अपना जीवन भी उस बुढ़िया की तरह हास्यास्पद होता है—सकटग्रस्त होता है।

अविवेकः परमापदां पदम् ।

(अविवेक ही बड़ी-बड़ी आपत्तियो का कारण होता है।)

८२ : अविवेक

क्या अविवेकियों का पतन होता है ?

हाँ; जो विवेक से भ्रष्ट हो जाते हैं, उनका हर तरह प[तन] होता है–

विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

मठ में रहने वाला एक बाबा खूब मालदार था। भलू नाम[क] पत्नी और वैकुण्ठ नामक चेले के साथ वह आनंदपूर्वक रहता था। किसी कारण से एक बार पत्नी के साथ बाबा का झगडा हो गया। क्रोध आग की तरह उतावला होता है। उस दिन बाबा ने क्रु[द्ध] होकर भलू के गाल पर तमाचा जड दिया। भलू रात को उठ[कर] मठ से चली गई। प्रातः बाबा को बहुत पछतावा हुआ; परन्तु अ[ब] क्या हो सकता था ?

वैकुण्ठ ने भलू को पुन. प्राप्त करने के लिए एक मेले का आयोज[न] करने का सुझाव दिया। मेले मे लगभग पच्चीस हजार रुपये खर्च [हो] गये। उनका विश्वास था कि मेले में वह अवश्य आयेगी। बाबा औ[र] वैकुण्ठ उसे मेले में ढूंढ़ने लगे। भलू एक दूसरे बाबा के साथ ख[ड़ी] उन्हें दिखाई दी। भलू को देखकर बाबा नाचने लगे। किन्तु ज्यों [ही] उसका हाथ पकड़ा, त्यों ही दूसरा बाबा क्रुद्ध होकर झगड़ने लगा। उसका कहना था कि यह मेरी पत्नी है। मैंने हाल ही में इससे विव[ाह] किया है। इसका कहना था कि पत्नी मेरी है। दोनों में हाथापाई [हो] गई, किन्तु वे भूल गये कि दोनों को झगड़ते छोड़कर भलू वहाँ [से] भाग चुकी थी।

सहसा विदधीत न क्रिया–
मविवेकः परमापदां पदम् ॥

(सहसा कोई कार्य नहीं करना चाहिये; क्योंकि अविवेक ही म[हा] संकटों का कारण है।)

८३ : अविवेक

क्या अन्धानुकरण से दु.ख होता है ?

हाँ, अन्धानुकरण का प्रेरक वह अविवेक होता है, जो नष्टों का प्रमुख कारण है–

अविवेक. परमापदां पदम् ।

कोई दृष्टन्त ?

सुनिये–

खम्भात नगर की बात है। वहाँ एक कुम्हार अपनी औरत के साथ रहा था। नि सन्तान होने के दु ख को भुलाने के लिए उन दोनों ने अपने नवजात गर्दभी-पुत्र को ही अपना पुत्र मान लिया था। उसे प्यार से वे "चन्द्रकान्त" कहकर पुकारते थे। पुत्र के ही समान वे उसे खिलाते, पिलाते, नहलाते और सुलाते थे।

एक बार चन्द्रकान्त बीमार हुआ और चल बसा। कुम्हार और कुम्हारिन मारे दु.ख के रोने लगे। शोक में कुम्हार ने मस्तक और मूँछे मूँडवा ली। गर्मी के दिन थे। वहाँ के मन्त्री को ठंडे जल के लिये कुछ घड़े बनवाने थे। आदेश देने के लिए कुम्हार को उन्होंने अपने पास राजमहल में बुलवाया। कुम्हार गया। बाल मुंडाये हुए शोकमग्न कुम्हार को देखकर मन्त्री ने पूछा तो सिसकियां भरते हुए कुम्हार ने कहा कि चन्द्रकान्तजी का देहावसान हो गया है। मन्त्री ने सोचा कि यह कोई खास आदमी होगा। नगर में शोक मनाया जा रहा है और मै न मनाऊँ तो राजा क्या कहेंगे। उसने भी बाल साफ करवा लिये। नगरसेठ ने यह हालत देखी तो वह भी खास-खास आदमियों के साथ शोक मुद्रा बनाकर राज्य के अन्य अधिकारियों से मिलकर नदी तट पर पहुँचा। स्नान करने के बाद उसने मन्त्री से और मन्त्री ने कुम्हार से पूछा कि चन्द्रकान्तजी कौन है, तब. रहस्य खुला और सब लोग हँसने लगे। मन्त्री बहुत लज्जित हुआ।

बिना विचारे जो करे, सो पाछे पछिताय ॥



८४ : अविवेक

क्या प्रत्येक कार्य विचारपूर्वक होना चाहिए ?

हाँ; जो विना विचारे कार्य करता है, वह वाद मे पछताता है-

बिना विचारे जो करे,
सो पाछे पछिताय ।
काम विगारे आपुनो,
जग में होत हँसाय ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये-

एक गाँव की यह घटना है । मन्दिर में एक वार ठाकुरजी के लिए किसी सेठ ने हलुए का भोग वनवाया । घर मे चम्मच न होने से उसने भोग के वरतन में ववूल का एक दतौन रख दिया ।

उस दिन वहाँ दूसरे गाँव का एक मुखिया भी आया था । उसने भोग के वरतन में दतौन देखा तो मन-ही-मन पछताने लगा कि हम लोगों ने तो कभी दतौन रक्खा ही नहीं । ठाकुरजी विना दाँत साफ किये भोग ग्रहण नही करते होंगे । एक साधारण आदमी भी जब दतौन से दाँत रगड़ने के बाद ही नाश्ता लेता है, तव भगवान की क्या वात ? उसने भोग के समय दो दतौन रखे । किसी ने तीन रखे । किसी ने चार । एक गाँव से दूसरे गाँव में यह वात फैलती गई और अन्त में एक आदमी ने दतौन की पूरी वूड़ी (वंडल) ही रख दी । एक पंडित को शंका हुई । उसने तलाश की तो बड़ी मुश्किल मे रहस्य खुला और तव कही यह परम्परा वन्द हुई ।

सहसा विदधीत न क्रिया-
मविवेक: परमापदां पदम् ।

(कोई कार्य एकदम नही करना चाहिए; क्योंकि अविवेक ही वड़ी-वड़ी आपत्तियों का कारण है ।)

८५ : अविवेक

क्या विना आगे-पीछे का विचार किये कार्य प्रारम्भ नही करना चाहिए ?

हाँ विना सोचे एकदम कार्यारम्भ करना अविवेक है, जो बड़े-बड़े संकटो का कारण है। गुणलुब्ध सम्पत्तियां विचारपूर्वक कार्य करने वालो का स्वयं ही वरण करती है—

सहसा विदधीत न क्रिया-
मविवेक. परमापदां पदम् ।
वृणुते ही विमृश्यकारिण
गुणलुब्धा. स्वयमेव सम्पदः ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

वॉकानेर के नदी तट पर सूरत मे आये बड़े मौलवी साहब नमाज पढ रहे थे। हजारो आदमी उनके साथ नमाज अदा कर रहे थे। उसी समय सहसा मौलवी साहब की कमर पर खाज चली। खुजाने के लिये उन्होने ज्यो ही हाथ उठाया, त्यों ही उनकी कोहनी पास खड़े आदमी को लग गई। उसने समझा कि यह भी नमाज की ही कोई क्रिया होगी। इसलिए उसने भी पास वाले आदमी को कोहनी से हल्का-सा धक्का दे दिया। इस प्रकार धक्को की परम्परा प्रारम्भ हो गई। अन्त मे खड़े आदमी को इतनी जोर का धक्का लगा कि वह छपाक से नदी मे जा गिरा। सवका ध्यान उसकी ओर गया। किसी तरह गीले कपड़ों से किनारे पर चढ कर उसने पास वाले आदमी से धक्के का कारण पूछा तो उसने कहा कि यह तो पीछे मे चला आ रहा है। वड़ी मुश्किल से पता चला कि मौलवी साहव की कमर में खाज चली थी। सव अपनी मूर्खता पर शरमाये।

विना विचारे जो करे, सो पाछे, पछिताय।
काम विगारे आपुनो, जग मे होत हँसाय ॥

८६ : अशुचिता

क्या सौन्दर्य के भीतर असौन्दर्य रहता है ?

हाँ; अपने शरीर को ही देखिये, रुधिर, वात, पित्त, कफ, मज्ज मेद, माँस और हड्डियों का संग्रह है वह ! बाहर सुन्दर चमड़े से ढका है । अतः कौए उसे नहीं खा रहे हैं, अन्यथा कभी के खा जाते।

रुधिरत्रिधातुमज्जा-
मेदो मांसास्थिसंहतिर्देहः ।
स वहिस्त्वचा पिनद्ध-
स्तस्मान्नो भक्ष्यते काकैः ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

कोई कामुक ठाकुर किसी सुन्दरी विधवा अकेली बहन के पास रात को जा पहुँचा । आने का आशय समझकर विधवा ने कहा "सरकार ! मैं अभी छूने योग्य नहीं हूँ । तीन दिन बाद आइयेगा। ठाकुर ने उसे रजस्वला समझा और वहाँ से वह चलता बना।

तीन दिन बाद ठाकुर ने वहाँ जाकर देखा कि विधवा दुबली पतली होकर खाट पर पड़ी है । पूछने पर उसने बताया कि मेरी जवानी और सुन्दरता उस नाँद में है । स्वयं जाकर देख लीजिये नांद मे टट्टियों और उल्टियों को भरकर रखा गया था । इसके लिए जमाल गोटे का सेवन किया गया था । नांद की भयंकर बदबू ठाकुर के लिए असह्य होने से वह वहाँ से भाग गया और फिर कभी न लौटा । यों रजस्वला होने के बहाने शील-रक्षा का सफल उपाय किया गया था ।

नौ-नौ मोर्या वहे सुगली मान्याँ ममे अनेक ।
मल ने ढाँक कहे शणगारों बिल्कुल नहीं विवेक ॥

८७ : असत्य

क्या असत्य वचन मनुष्य को अपवित्र बनाता है ?

हाँ, जो मनुष्य झूठ बोलता है, वह अपवित्र है। झूठ बोलने से मन भीतर ही भीतर गन्दा हो जाता है।

अमेध्यो वै पुरुषो यदनृत वदति
तेन पूतिरन्तरतः।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

एक सैनिक था। अवकाश प्राप्त करने के लिए उसने एक प्रार्थना पत्र लिखा। उसमे यह प्रकट किया कि उसकी बीमार पत्नी का इलाज करने के लिए उसे कुछ दिनों का अवकाश लेना अनिवार्य हो गया है। अधिकारी ने प्रार्थना पत्र पर यह रिमार्क लिख दिया कि पत्र डालकर पहले जानकारी ली जायगी कि घर पर पत्नी वास्तव में बीमार है या नही। उसके बाद ही छुट्टी मजूर की जायगी। एक सप्ताह बाद फिर से प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किया जाय।

सातवें दिन दुबारा प्रार्थना पत्र प्रस्तुत करने पर यह लिखकर उसे लौटा दिया कि जाँच करने पर पता लगा है कि आपकी पत्नी पूर्ण स्वस्थ है, अत छुट्टी स्वीकृत करने का प्रश्न ही उपस्थित नही होता।

पार्थनापत्र पर लिखीत रिमार्क पढ़कर सैनिक खूब हँसा। कारण पूछने पर उसने बताया कि मेरा तो अब तक विवाह भी नही हुआ है। झुठ बोलने मे हमारा अधिकारी हम से बढकर निकला।

मुसा भासा निरत्थिया।
(झूठी वाणी बड़ी निरर्थक होती है।)

✻

८८ : असत्य

क्या वहाना असत्य से भी बुरा होता है ?

हाँ; वह झूठ से अधिक बुरा और अधिक भयंकर होता है, क्योंकि वह एक सुरक्षित झूठ है–

An excuse is worse and more terrible than a lie, for an excuse is a lie guarded

(एन एक्स्क्यूज इज वर्ज एण्ड मोर टेरीवल देन ए लाइ; फोर एन एक्स्क्यूज इज ए लाइ गार्डेड)

कोई दृष्टन्त ?

सुनिये–

एक कामचोर पुत्र वहुत कहा-सुनी के वाद नौकरी के लिए नगर मे गया। नौकरी उसे साधारण मिली: परन्तु अपने पत्र में डींग हाँकते हुए सवको खुश करने के लिए एक दोहा वना कर लिखा–

डेढ़ हाथ के आसन ऊपर,
नितका बैठू तात।
हजारांरो लेखो कोनी
लाखां ऊपर हात॥

लेकिन अपनी पत्नी को उसने असली वात लिख दी, पुत्रवधू के पेट में वात कहाँ तक टिकती ? उसने रहस्य खोलते हुए सास-ससुर से कह दिया कि मेरे पतिदेव तो तेली के यहाँ नौकरी कर रहे हैं। वे डेढ़ हाथ ऊँची घानी पर वैठते हैं, जहाँ हजारों की क्या गिनती, लाखों सरसों या तिलों पर उनका हाथ रहता है।

रहस्य सुनकर सभी दुखी हुए–

अलियवयणं भयकरं दुहकरं अयसकर।

(झूठी वात भयंकर होती है, दुःख देती है और यश को नष्ट करती है।)

८६ : अस्पृश्यता

क्या पहले सब मनुष्य एक ही वर्ण के थे ?

हाँ; गुण और कर्म के अनुसार बाद मे चार वर्णो की व्यवस्था की गई–

एक वर्णमिदं सर्व,
पूर्वमासीद् युधिष्ठर !
गुण-कर्म-विभागेन,
चातुर्वर्ण्यव्यवस्थितिः ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

किसी ब्राह्मण के रसोईघर में एक बार कोई सिक्ख सज्जन जा घुसे। इससे अत्यन्त क्रुद्ध होकर ब्राह्मण ने कहा कि तुमने मेरा सारा भोजन अपवित्र कर दिया, अब नया बनाना पड़ेगा।

सिक्ख सज्जन ने पूछा–"क्या आपने कभी चोरी की है ? जुआ खेला है ? व्यभिचार किया है ?"

ब्राह्मण–"अनेक बार।"

सिक्ख–"तो ऐसे कार्यो के बाद भी आप पवित्र बने रहे और अन्य जाति के आदमी के सम्पर्क में आते ही आपका रसोईघर और आप दोनों अपवित्र हो गये ?"

ब्राह्मण को यह बात कुछ समझ में नही आई। वह तो अपने को केवल इसी आधार पर पवित्र मानता रहा कि उसने किसी अन्य जाति के आदमी का छूआ भोजन कभी किया नही था। गीता के इस श्लोक पर वह मनन क्या करता ?

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥

(विद्या और विनय से युक्त ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ता और चाण्डाल–इन सबको पण्डित समान दृष्टि से देखते हैं, (सब में आत्मा है, कोई अस्पृश्य नही है।)



९० : अहंकार

क्या अहंकारी ज्ञानी नहीं हो सकता ?

हाँ; कहा ह–

अभिमानी के हृदय में
ज्ञान न करता धाम ।
फटी जेब में क्या कभी
रह सकते हैं दाम ?

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

स्वामी विवेकानन्द के साथ उनके शिष्य भोजन करने बैठे। [illegible] शिष्य का यह नियम था कि यदि किसी ने भोजन के समय कोई प्रश्न किया तो जब तक वह उसका उत्तर नही दे देता, भोजन ग्रहण [illegible] करता था। शिष्यों में से किसी ने प्रश्न किया– "नरक में कौन [illegible] जाता है ?" इसके उत्तर में उस शिष्य ने "द्वारं किमेकं नरकस्य ? नारी।" (नरक का एकमात्र द्वार क्या है ? नारी), "प्रसक्ता [illegible] भोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ।" (जो काम-भोग में आसक्त हैं, वे अ[illegible] वित्र नरक में जाते है) आदि अनेक सूक्तियाँ सुनाई; परन्तु प्रश्न [illegible] ठीक उत्तर प्राप्त नहीं हुआ। अन्त मे स्वामीजी ने पूछा– [illegible] करता है यह प्रश्न ? प्रश्नकर्त्ता ने कहा– "मैं" ? इस पर स्वामीजी [illegible] कहा– "यह 'मैं' ही सबको नरक में ले जाती है।"

पीत्वा कर्दमपानीयाम्
भेको बडबडायते ।
दिव्यं चाम्ररसं पीत्वा
गर्वं नो याति कोकिलः ॥

[कीचड़ का पानी पीकर मेढक बड़बड़ाता है– [illegible] दिव्य आम का रस पीकर भी कोयल गर्व नहीं करती! (तुच्छ [illegible] [illegible] वस्तु पाकर घमंड करते हैं।)]

९१ : अहंकार

क्या अहंकार उन्नति मे बाधक है ?

हां; मोक्षमार्ग में अहंकार लोहे के मुद्‌गर की तरह दुरतिक्रम (बाधक) है–

मोक्षमार्गे त्वहङ्कारः
परिघो दुरतिक्रमः ।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक तपस्वी ने नारदजी से कहा–कि आप ब्रह्मा से पूछते आइये कि मेरी मुक्ति कब होगी ? नारदजी ने पूछा तो ब्रह्मा ने मुक्त होनेवालों की सूची उनके हाथ में दे दी। सूची मे उस तपस्वी का नाम नहीं था। इससे चकित होकर नारदजी ने जब कारण पूछा तो उत्तर मिला कि वह तपस्या जरूर करता है, पर घमण्ड भी करता है।

घमण्ड तपस्या को खा जाता है, इसलिए उसकी मुक्ति सम्भव नही लगती। नारदजी ने उस तपस्वी के समीप जाकर सारी बात कह सुनाई। तपस्वी ने यह तथ्य स्वीकार कर लिया कि सचमुच मै अहंकारी हूं, किन्तु नारदजी ने देखा कि ब्रह्मलोक से एक विमान आया और उस तपस्वी को बैकुण्ठ की ओर ले गया।

नारदजी को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने फिर ब्रह्माजी से जाकर पूछा कि आपने तपस्वी के विषय में झूठ क्यो बोला। ब्रह्माजी ने कहा कि अहकार का ज्ञान अहकार को नष्ट कर देता है। यही कारण है कि उस तपस्वी को बैकुण्ठ मिल गया। यदि आपने उसे उसके अहकार का भान न कराया होता तो उसकी मुक्ति नही होती।

अकड़ने से नाहक ही टूटेगा सर।
अगर दर है नीचा तो झुककर गुजर ॥

९२ : अहंकार

क्या अहंकार और ममता मोह का वह मन्त्र है, जो जगत् को अन्धा वना देता है?

हाँ; कहा है–

अहं ममेति मन्त्रोऽयम्,
मोहस्य जगदान्ध्यकृत् ।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

श्रीकृष्ण ने बाँसुरी वजाकर प्राणियों को मन्त्र-मुग्ध वना दिया था। उसी से कालिया नाग को नाथने में भी उन्हे सफलता प्राप्त हुई थी। यही कारण था कि वे राधा से भी अधिक प्यार अपनी बाँसुरी से करते थ । जव राधाजी बाँसुरी छिपा देती तो वेचैन हो जाते थे ।

एक दिन राधा ने बाँसुरी से पूछा–"श्रीकृष्ण तुझसे इतना अधिक प्रेम क्यों करते हैं ?

इस पर बाँसुरी ने कहा–"मैं भीतर से पोली हूँ, अहंकारशून्य हूँ, इसलिए मुझे कृष्ण चाहें वैसे वजाकर सबको मुग्ध करते हैं। जिसके हृदय में अहंकार नही होता, उसके मुंह से भगवान् की सी वाणी प्रकट होती है–ऐसी वाणी, जो सबको आकर्षित कर सके–प्रभावित कर सके ।"

यह सुनकर श्री राधिकाजी भी अपने को अहंकार-शून्य बनाने का प्रयास करने लगी ।)

The infinitely little have a pride infinitely great.

(दि इन्फिनिटली लिटिल हेव ए प्राइड इन्फिनिटली ग्रेट ।)

(जो प्राणी अनन्त क्षुद्र होता है, उसे अनन्त विराट अहंकार होता है ।)

◆

९३ : अहंकार

क्या ज्ञान और अभिमान विरोधी है ?

हां, ज्ञानमार्ग मे अभिमान एक दुर्लंघ्य अर्गला के समान है–

ज्ञानमार्गे त्वहङ्कारः
परिघो दुरतिक्रमः ।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

सन्त विनोबा को महात्मा गाँधी की एक चिट्ठी किसी ने लाकर दी। विनोबाजी चिट्ठी पढ़कर फाड़ फेंकी।

आश्रमवासी छात्रों के द्वारा कारण पूछे जाने पर उन्होंने उत्तर दिया कि चिट्ठी मे झूठी बात लिखी थी। इसलिए मैंने उसे फाड़ फेंकना ही उचित समझा।

इससे छात्रों का कुतूहल और बढ़ गया कि महात्माजी भला झूठी बात क्यो लिखेंगे ? छात्रो के कुतूहल को शान्त करते हुए विनोबा ने स्पष्ट किया कि चिट्ठी में मेरी प्रशसा की गई थी, मुझे सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति बताया गया था, जबकि मुझसे भी महान् अनेक व्यक्ति दुनिया में मौजूद हैं। इसलिए यह बात झूठी है। मान लो, उनकी बात सच्ची भी हो तो भी वह चिट्ठी मुझमे अहकार पैदा कर सकती है। जो उन्नति मे बाधक है, इसलिये उस चिट्ठी को फाड़ने में ही भलाई है–ऐसा मैंने समझा।

लुप्यते मानतः पुंसाम्
विवेकामललोचनम् ।

(अहकार से पुरुषो की विवेकरूपी निर्मल आँखें बन्द हो जाती हैं।

९४ : अहिंसा

क्या अहिंसा के समान कोई धर्म नही है ?

हाँ; सुमेरु से ऊँचा कोई पर्वत नही है और आकाश से विशाल दूसरी कोई वस्तु नही है। उसी प्रकार अहिंसा के समान महान् कोई दूसरा धर्म नहीं है–ऐसा समझिये–

तुंग न मंदराओ,
आगासाओ विसालयं नत्थि ।
जह तह जयम्मि जाणसु
धम्ममहिंसासमं नत्थि ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

दक्षिण अफ्रीका में महात्मा गांधी की हत्या का कुछ लोग षड्यन्त्र कर रहे थे, जर्मन इंजीनियर मिस्टर केलन बैक को इसका आभास हो गया था, जो महात्मा गांधी के सम्पर्क मे आकर उनके मित्र बन गए थे । महात्माजी की रक्षा के लिए वे अपनी जेब मे पिस्तौल रखने लगे ।

महात्माजी को पिस्तौल का पता चल गया तो उन्होंने समझाया– “आप मेरी रक्षा नही कर सकते, जो जन्म लेता है, उसके लिए मृत्यु अनिवार्य है; दूसरी बात यह है कि आत्मा अमर है, उसे कोई मार ही नही सकता, इसलिए उसे बचाने की आवश्यकता नहीं; तीसरी बात यह है कि अहिंसा की रक्षा हिंसा के द्वारा करना असंगत है। अहिंसा की रक्षा के लिये हमे अहिंसक साधनों पर ही निर्भर रहना चाहिये” इस उत्तर से प्रभावित होकर बैक ने पिस्तौल फेंक दिया ।

अत्थि सत्थं परेण परं
नत्थि असत्थं परेण परं ।

(शस्त्र तो एक से एक बढ़कर पाये जाते हैं । परन्तु अशस्त्र (अहिंसा के साधन) एक से एक बढ़कर नहीं हैं ।)

९५ : अहिंसा

क्या अहिंसा से हिंसा पर विजय पाई जा सकती है ?

हाँ; अहिंसा की शक्ति प्रबलतम है। हिंसा के साधन (शस्त्रास्त्र) तो एक से एक बढ़कर होते हैं, परन्तु अशस्त्र (अहिंसा) में तरतमता नहीं होती–

अत्थि सत्थं परेण परं
नत्थि असत्थं परेण परं।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

महाराज प्रसेनजित और उनकी सारी प्रजा में डाकू अंगुलिमाल का आतंक फैला हुआ था। करुणासागर बुद्ध ने उस हिंसक को अपनी अहिंसा की शक्ति से जीतने का निश्चय किया। मन्थर गति से वे अंगुलिमाल की अटवी में पहुँचे। दूर से महात्मा को अपनी ओर आते देखकर डाकू ने कड़ककर कहा–"अरे बटोही ! तू किधर चला आ रहा है ? क्या तुझे मालूम नहीं कि मैं मुसाफिरों की उँगलियों की माला-पहनता हूँ ? क्या तुझे भी अपनी उँगलियाँ कटवानी है ? ठहर !"

बुद्ध ने कहा– "भाई ! मैं तो विश्वप्रेम की भावना में ठहरा ही हुआ हूँ; परन्तु मैं चाहता हूँ कि मेरी तरह तुम भी ठहर जाओ। जगत् को रुलाने के लिए नहीं, उसके आँसू पोंछने की कोशिश करो। जिससे तुम्हारा जीवन निर्भय सुखी बने।"

अंगुलिमाल इससे प्रभावित होकर महात्मा बुद्ध का शिष्य बन गया। बाद में दर्शनार्थ आये महाराज प्रसेनजित ने भी अंगुलिमाल को वन्दन किया। अहिंसा धर्म ने उसे पूज्य बना दिया।

देवावि तं नमंसति, जस्स धम्मे सया मणो।

(जिसका मन सदा धर्म में लगा रहता है, उसे देव भी नमस्कार करते हैं।)



९६ : अहिंसा

क्या दयालु वही है, जो पशुओं के प्रति भी दयालु हो ?

हाँ; बाइबिल में लिखा है–

A merciful man is merciful to his beast.

(ए मर्सीफुल मैन इज मर्सीफुल टु हिज बीस्ट।)

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

सुप्रसिद्ध नाटककार जॉर्ज बर्नार्डशॉ शाकाहारी थे और शाकाहार के प्रवल समर्थक भी। एक बार वे किसी भोज में निमन्त्रित होकर गये। भोज सामिप था। शॉ भी एक कुर्सी पर जमकर बैठ गये। सबको भोजन परोसा गया। भोजन ग्रहण करते हुए अन्य लोगो ने जब शॉ को चुपचाप बैठे देखा तो कहा– "मिस्टर शॉ ! जहाँ शाकाहारी भोजन की व्यवस्था न हो, वहाँ कभी-कभी सामिष-भोजन करने में कोई हर्ज नही। आप भोजन ग्रहण कीजिये।"

इस पर शॉ ने कहा–"मेरा पेट पेट ही है, कब्रिस्तान नही कि इसमें मुर्दो को स्थान दिया जाय।"

शॉ ने भोजन नही किया। उनके त्याग और इस सुन्दर उत्तर से सभी निमन्त्रित सज्जन चकित हो गये। बहुत कम शब्दो मे शॉ ने अपनी बात प्रभावशाली ढग से कह सुनाई। कुशलवक्ता का यही लक्षण है। शॉ ने एक वाक्य में मानो पूरा प्रवचन ही दे दिया था–

अल्पाक्षररमणीयं,
यः कथयति निश्चितं सा खलु वाग्मी।
बहुवचनमल्पसारं,
यः कथयति विप्रलापी सः॥

(कम अक्षरों में सुन्दर बात जो कह देता है। वह निश्चय ही वाक्पटु है; किन्तु कम सार वाले (थोथे) अनेक वाक्य जो कहता है, वह विप्रलापी (बकवास करने वाला) ही है।)



९७ : अहिंसा

क्या मूक पशुओं के प्रति क्रूरता नीचतम एवं कमीनतम लोगों का एक खास लक्षण है ?

हाँ; वह अज्ञान और नीचता का निश्चित चिन्ह है–

Cruelty to dumb animals is one of the distinguishing vices of the lowest and basest people; whenever it is found, it is a certain mark of ignorance and meanness (क्रूएल्टी टु डम्ब एनीमल्स इज वन ऑफ दि डिस्टिंग्यूशिग वाइसेज ऑफ दि लोएस्ट एण्ड बेसेस्ट पीपुल; व्हेनेवर इट इज फाउंड इट इज ए सर्टेन मार्क ऑफ इग्नोरेंस एण्ड मीननेस ।)

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक राजा अपने मन्त्री के साथ शिकार खेलने गया। वहाँ भागते हुए एक मृग के विषय मे पूछा– "मन्त्रिवर ! यह भागता हुआ हिरन पीछे मुड़-मुड़कर मुझे क्यों देख रहा है ?"

मन्त्री ने कहा– "राजन् ! यह देख रहा है कि आप सच्चे क्षत्रिय है या नहीं।"

राजा– "मेरा क्षात्र धर्म यह कैसे जानेगा ?"

मन्त्री– "यह जानता है कि सच्चा क्षत्रिय वही है, जो भागते हुए किसी शत्रु पर भी प्रहार नही करता।"

मन्त्री की इस बात से राजा का हृदय परिवर्तित हो गया। उसने उसी क्षण शिकार न खेलने का निश्चय कर लिया और अपने को पशु-हत्या के पाप से विरत करने वाले मन्त्री के साथ अपने राजमहल की ओर चल पड़ा।

यावन्ति पशुरोमाणि पशुगात्रेषु भारत !
तावद्वर्षसहस्राणि पच्यन्ते पशुघातकाः ॥

(पशुओ के शरीर पर जितने रोएँ होते हैं, हे अर्जुन ! उतने ही हजार वर्ष तक पशुघातक दुर्गति मे दुःख पाते हैं।)

९८ : अहिंसा

क्या सभी प्राणी जीना चाहते हैं ?

हाँ; मरना कोई नही चाहता; इसलिए निर्ग्रन्थ (राग-द्वेष की ग्रन्थि से रहित) व्यक्ति घोर प्राणिवध (हिंसा) से दूर रहते है-

सव्वे जीवावि इच्छन्ति
जीविउं न मरिज्जिउं ।
तम्हा पाणिवहं घोरं
निग्गंथा वज्जयंति णं ॥

कोई दृष्टान्त ? सुनिये-

एक साधु जहाज में बैठकर द्वारका जा रहा था। उसके पास सौ स्वर्णमुद्राएँ थीं। खलासी का मन उन्हें देखकर ललचा गया। साधु को उसने एक कमरे के भीतर भेज दिया। उसमे जाकर वह सो गया। थोड़ी देर बाद खलासी का पुत्र उस कमरे में गया। उसने साधु को जगा कर बाहर भेज दिया और स्वयं उसके स्थान पर सो गया। खलासी यह बात नहीं जानता था। रात को नंगी तलवार लेकर वह उस कमरे में गया। उसने वहाँ अपने ही पुत्र का गला काट कर दोनों टुकड़े समुद्र में फेंक दिये। प्रातः साधु को बैठा देखकर तथा अपने पुत्र को गायब देखकर वह रोने लगा। साधु ने समझाया- "दूसरों का बुरा सोचने वाले का बुरा पहले होता है। भविष्य में कभी लोभ में पड़कर ऐसे हिंसात्मक क्रूर विचार मत करना।"

हिंसैव दुर्गतेर्द्वारम्,
हिंसैव दुरितार्णवः ।
हिंसैव नरकं घोरम्,
हिंसैव गहनं तमः ॥

(हिंसा ही दुर्गति का द्वार है-हिंसा ही पापों का समुद्र है-हिंसा ही घोर नरक है और हिंसा ही गहरा अँधेरा है।)

९९ : अहिंसा

क्या अहिंसा ही सबसे बड़ा धर्म है ?

हाँ; जैसे मन्दराचल से ऊँचा कुछ नही है और आकाश मे विशाल कोई नही है, वैसे ही समझ लीजिये कि जगत मे अहिंसा के समान दूसरा धर्म नही है–

तुंगं न मंदराओ,
आगासाओ विसालय नत्थि ।
जह तह जगम्मिजाणसु
धम्ममहिंसासम नत्थि ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

"ये गाये मेरी ओर क्यों देख रही है ?" ऐसा प्रश्न सुनकर समय और वाणी का सदुपयोग करने में कुशल बीरबल ने बादशाह अकबर से कहा–"जहापनाह ! हम घास खाकर निर्वाह करती है । हमने किसी का कुछ नही बिगाडा । न किसी की चोरी की और न विश्वास-घात ही किया । हम सबको दूध देती हैं । हमारे बछड़े बैल बनकर खेतो में काम आते हैं । मरने के बाद भी हमारी चमड़ी जूते बनकर हिन्दू-मुस्लिम का भेद किये बिना सबके पाँवों की समान रूप से रक्षा करती है; फिर हमने कौन-सा अपराध किया है कि कसाई हमारा हर रोज वध करते हैं और मुसलमान ईद के दिन ?–ऐसा आपसे ये गाये अपनी मौन वाणी में कह रही हैं ?"

बादशाह ने यह सुनते ही बूचड़खानों मे गौवध बन्द करने का कानून बना दिया और घोषणा करवा दी कि धर्म के उत्सव के नाम पर भी जो गौवध करेगा, उसे कठोर राजदण्ड दिया जायेगा ।

एवं खु नाणिणो सारं,
जं न हिंसइ किंचणं ।

(ज्ञानियों के ज्ञान का सार यही है कि वे किसी की हिंसा नहीं करते ।)

१०० : अहिंसा

क्या संयम ही अहिंसा है ?

हाँ; सब प्राणियों के प्रति संयम रखना ही अहिंसा है–

सर्वभूतेषु संयमोऽहिंसा ।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

महाराज समुद्रविजय और महारानी शिवादेवी के सुपुत्र थे–कुमार अरिष्टनेमि । वे द्वारका से महाराज उग्रसेन की सुन्दर कन्या राजीमती से विवाह करने के लिए बरात लेकर पहुँचे । रथ में बैठकर कुमार नगर में प्रवेश कर ही रहे थे कि सहसा उनकी दृष्टि एक बाड़े मे घिरे जंगली पशुओं के झुण्ड पर पड़ी ।

कारण पूछने पर पता चला कि विवाहोत्सव में सम्मिलित होने वाले सामिषभोजियों के लिए उन पशुओं को बाँध कर रखा गया है। कुमार का संवेदनशील हृदय करुणा से भर गया । इस विशाल हत्या-काण्ड का कारण विवाह होने से उन्होंने इस हिंसा के लिए अपने को ही जिम्मेदार माना । बाड़ा खुलवाकर उन्होंने तत्काल सभी पशुओं को मुक्त करा दिया । फिर रथ लौटाने का आदेश देते हुए सारथी से कहा–"अब मैं राजीमती से नहीं, मोक्षलक्ष्मी से विवाह करूँगा ।" कथनी और करनी में अन्तर नहीं हुआ । वे जैन धर्म के बाईसवें तीर्थङ्कर बने । यह अहिंसा वृत्ति का प्रताप था ।

सव्वाओ वि नईओ,
कमेण जह सायरम्मि निवडन्ति ।
तह भगवई अहिंसा,
सव्वे धम्मा समिल्लन्ति ॥

(सभी नदियाँ क्रम से जिस प्रकार समुद्र में गिरती हैं, उसी प्रकार भगवती अहिंसा में सारे धर्म समाविष्ट होते हैं ।)



क्या हिंसा का धर्म से विरोध है ?

हाँ, जहाँ हिंसा है, वहाँ धर्म नहीं हो सकता, क्योंकि प्राणियों का वध स्वयं अधर्म है–

अधर्मः प्राणिनां वधः ।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

पार्श्वकुमार अपनी माता वामादेवी के साथ हाथी पर सवार होकर बनारस के बाहर ठहरे हुए एक तापस के निकट गये, जिसके दर्शन के लिए सारा नगर चला जा रहा था ।

तापस पञ्चाग्नि तप का प्रदर्शन कर रहा था। अपनी सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति के आधार पर कुमार ने जान लिया कि अग्निकुण्ड में जलाये जा रहे एक लक्कड़ में नाग-नागिन का एक जोड़ा जल रहा है। कुमार ने तापस से कहा–"जहाँ हिंसा है, वहाँ धर्म का नाटक हो सकता है, धर्म नहीं। तुम्हारे सामने ही अग्नी में नाग-नागिन का जोड़ा जल रहा है। किन्तु इस ओर तुम्हारा ध्यान भी नहीं ?"

इसके बाद अपने चाकरों से अधजले लक्कड को फड़वा कर मृतप्राय नाग-नागिन का जोड़ा निकालकर बता दिया। इससे लोग तापस के अविवेक को धिक्कारते हुए अपने-अपने घरों को लौट गये। पार्श्वकुमार भी अपनी माता के साथ महलों मे लौट आये। यही कुमार आगे चलकर तेईसवे तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथ के रूप में प्रसिद्ध हुए ।

सव्वे जीवावि इच्छन्ति, जीविउं न मरिज्जिउ ।
तम्हा पाणिवह घोर, निग्गथा वज्जयंति णं ॥

(सभी प्राणी जीना चाहते है। मरना कोई नही चाहता। इसीलिए निर्ग्रन्थ (मुनि) घोर प्राणिवध (हिंसा) का वर्जन करते है–निषेध करते हैं।)

१०२ : अहिंसा

क्या मूक पशुओं के प्रति क्रूरता लघुतम एवं नीचतम लोगों की एक पहिचान है और जहाँ भी वह पाई जाय अज्ञान और नीचता का निश्चित चिन्ह है ?

हाँ; जॉन्स आफ नेलेंड का कथन है–Cruelty to dumb animals is one of the distinguishing vices of the lowest and basest people; and whenever it is found, it is certain mark of ignorance and meanness. (क्रूएल्टी टु डम्ब एनीमल्स इज वन ऑफ दि डिस्टिंग्विशिंग वाइसेज ऑफ दि लोएस्ट एण्ड बेसेस्ट पीपुल; एण्ड व्हेनेवर इट इज फाउण्ड; इट इज ए सर्टेन मार्क ऑफ इग्नोरेंस एण्ड मीननेस ।)

कोई दृष्टान्त ? सुनिये–

आश्विन मास में नवरात्रि के अवसर पर कंटकेश्वरी देवी के मन्दिर में बकरों और भैंसों (पाड़ों) की बली दी जाने वाली थी। अहिंसा-प्रेमी राजा कुमारपाल ने श्री हेमचन्द्राचार्य से प्रेरणा पाकर बलि के लिए एकत्र पशुओं को मन्दिर मे बन्द करवाने के बाद दूसरे दिन स्वयं अपने हाथ से ताला खोलकर पशुओं को मुक्त करते हुए सबसे कहा–"भाइयो ! देवी किसी पशु को खाना नही चाहती। अन्यथा रात-भर में एक-दो को अवश्य खा गई होती। देवी को जगदम्बा कहते हैं। वह सब प्राणियों की माता है। कोई माँ अपने बच्चो को खाना नही चाहती। आज यह सिद्ध हो चुका है। इसलिए अब यहाँ बलि नही होगी–कभी नही होगी।"

कुछ समय बाद राजा के कोढ़ हो गया। अन्धविश्वासियों ने कहा कि बलि प्रारम्भ करने पर रोग मिट जायगा। परन्तु निर्भयतापूर्वक उसने कहा–"मेरे राज्य मे पशु-बलि नहीं होगी, भले ही मेरे शरीर की बलि हो जाय।"

तुलसी दया न छोड़िये, जब लग घट मे प्रान।

१०३ : अहिंसा

क्या अहिंसा श्रेष्ठ धर्म है ?

हाँ; कहते है–

अहिंसा परमो धर्म. ।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

महाराष्ट्र के प्रसिद्ध सन्त नामदेव के बचपन की यह घटना है। उस दिन काढे के लिए माँ ने बालक नामू को पलाश की छाल लाने का आदेश दिया था। बालक ने आदेश का पालन तो किया। परन्तु यह जानने के लिए कि कुल्हाड़ी की चोट से पेड़ को कितनी वेदना हुई होगी, उसने स्वयं अपने पाँव पर जरासी कुल्हाड़ी की खरोंच लगा कर देखा। खून से उसकी छोटी-सी सफेद धोती लाल हो गई। माँ के पूछने पर उसने ऐसा करने का कारण कह सुनाया।

माँ ने कहा–"बेटा नामू ! ऐसा लगता है कि तू बहुत नामी साधु बनेगा। पेड़ों में भी दूसरे जीव-जन्तुओं की तरह संवेदना शक्ति होती है। यही कारण है कि चोट लगने पर किसी मनुष्य को जितना दुःख होता है, उतना ही पेड़-पौधों को भी होता है–यह बात तू अभी से समझ गया।"

अहिंसैव जगन्माता,
अहिंसैवानन्दपद्धतिः ।
अहिंसैव गतिः साध्वी,
श्रीरहिंसैव शाश्वती ॥

(अहिंसा ही जगत की माता है, अहिंसा ही आनन्द का मार्ग है, अहिंसा ही अच्छी गति है और अहिंसा ही शाश्वत लक्ष्मी है।)



१०४ : अज्ञान

क्या अज्ञानियों को ज्ञानचर्चा करते हुए भी निश्चित अर्थ का ज्ञान नही होता ?

हाँ; कहा है–

"अन्नाणिया नाणं वयतावि निच्छियत्थं न जाणन्ति ।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक अन्धे को किसी घर में भोजन का निमन्त्रण मिला । थाली परोसी गई । हाथ से वस्तुओं को छूकर उसने पूछा कि क्या-क्या है ? रोटी, दाल, शाक के वाद एक कटोरी में रखी खीर का परिचय दिया गया । अन्धे ने पहले खीर कभी नहीं खाई थी । इसलिये विशेष जानकारी के लिए पूछा–"खीर कैसी होती है ?"

उत्तर मिला–"सफेद ।"

फिर पूछा–"सफेद कैसी ?"

उत्तर–"बगुले जैसी ।"

प्रश्न–"वगुला कैसा होता है ?"

इस प्रश्न के उत्तर में मेजबान ने अपने एक हाथ को बगुले के गले की तरह मोड़कर दिखाया कि ऐसा होता है ।

अन्धे ने अपने हाथ से उसके मुड़े हुए हाथ को छूकर अत्यन्त आश्चर्य के साथ कहा– "बाप रे बाप ! इतनी टेढ़ी खीर मैं कैसे खा सकूँगा और कैसे पचा सकूँगा ?"

इसी कारण हिन्दी मे "टेढ़ी खीर" मुहावरा चल पड़ा, जो "कठिन काम" का अर्थ व्यक्त करता है । असल वात यह है कि काम कोई कठिन नही होता । हम अपने अज्ञान के कारण ही उसे कठिन समझ लेते हैं ।

आदमी वह जो मुसीबत से परेशान न हो ।
नही ऐसी कोई मुश्किल कि जो आसान न हो ।।

१०७ : अज्ञान

क्या विद्वान और ज्ञानी में अन्तर है ?

हाँ; जो दूसरों को जानता है, वह विद्वान है और जो स्वय को जानता है, वह ज्ञानी है–

He who knows others is learned He who knows himself is wise.

(ही हू नोज अदर्स इज लर्न्ड, ही हू नोज हिमसेल्फ इज वाइज)

कोई दृष्टान्त ? सुनिये–

मे पहाड को देखकर आँखो ने कहा कि वह वहुत

त, नाक और हाथ से उसका विरोध किया।

कहां है पहाड ? होता तो क्या मुझे उसकी

१०६ : अज्ञान

क्या अज्ञान दिखाई नहीं देता है ?

हाँ; देखने पर वह उपलब्ध नहीं होता—

अज्ञानमपि नास्त्येव,
प्रेक्षितं यत्न लभ्यते ।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

एक बरात विवाह के बाद लौटते समय एक गाँव में ठहर गई। इसके लिए वहाँ के पटेल की एक हवेली मांग ली गई, जिसमें पाँच कमरे थे। बराती रात-भर आराम से सोये और प्रातःकाल हवेली सौंपकर आगे बढ़ गये। पटेल ने अपने नौकर को भेजा कि हवेली संभाल आओ। बराती कोई वस्तु तो उसमें से पार नहीं कर गये न?

नौकर ने सारी सामग्री देखी। व्यवस्थित यथास्थल पड़ी थी। फिर एक मकान (कोठरी) में खड़ा होकर कमरे गिनने लगा। जिस कमरे में खड़ा था। उसे न गिनने से वे चार ही निकले। जाकर उसने पटेल से कह दिया कि बराती एक कमरा ले गये। यह सुनते ही पटेल ने दस-बारह घुड़सवार भेजे कि वे बरातियों को पकड़ लायें। घुड़सवारों ने बरातियों की अच्छी धुनाई की और सबको बाँधकर पटेल के सामने हाजिर किया। पटेल ने कहा कि आप हमारा एक कमरा क्यों ले गये ? वर के बाप ने कहा कि आपके पाँच कमरे अपनी जगह मौजूद हैं। फिर जाकर गिना दिये तो पटेल ने कहा कि यह पाँचवां कमरा तो अभी आपने चुपचाप लाकर रख दिया है।

वितहं पप्पऽक्खेयन्ने, तम्मि ठाणम्मि चिट्ठइ ।
(अज्ञानी झूठी बात सुनकर उसी में उलझ जाता है।)



१०७ : अज्ञान

क्या विद्वान और ज्ञानी में अन्तर है ?

हाँ; जो दूसरों को जानता है, वह विद्वान है और जो स्वयं को जानता है, वह ज्ञानी है–

He who knows others is learned He who knows himself is wise.

(ही हू नोज अदर्स इज लर्न्ड, ही हू नोज हिमसेल्फ इज वाइज)

कोई दृष्टान्त ? सुनिये–

ज्योंही दूर से पहाड़ को देखकर आँखों ने कहा कि वह बहुत सुन्दर है, त्यो ही कान, नाक और हाथ से उसका विरोध किया।

कान ने कहा–"कहां है पहाड ? होता तो क्या मुझे उसकी आवाज नही सुनाई पडती ?"

नाक ने कहा–"यदि कोई पहाड़ होता तो क्या मुझे उसकी कैसी भी अच्छी-बुरी गन्ध न आती ?"

हाथ ने कहा–"भले ही किसी में गन्ध या आवाज न हो, फिर भी अपने शरीर से उसका अस्तित्व रह सकता है। परन्तु पहाड का तो शरीर भी मालूम नही होता; अन्यथा मै तत्काल उसे छूकर जान लेता।"

आँखों ने इन तीनों की बातें सुनकर अपनी दृष्टि मोड ली। अब उन्होने एक सरोवर मे खिले कमलों पर उडने वाले भौंरो की मनोहर गुनगुनाहट का वर्णन प्रारम्भ कर दिया। नाक, कान और हाथ आपस मे फुसफुसाहट करने लगे –"पता नही, आँखों को अजकल क्या हो गया है कि वे कभी कुछ कहती है–कभी कुछ, जरूर उन्हे कोई भ्रम हुआ है–कोई रोग हुआ है, जिसमे वे नई-नई वस्तुओं का वर्णन करती रहती हैं।" आँखे चुप हो गई।

जाणतो अजाण हुइजे तंत लीजे ताणी।
आगलो जो आग होवे तो तूं हुइजे पाणी॥

१०८ : आचरण

क्या मनुष्यों में मनुष्य का-सा आचरण दुर्लभ है ?

हाँ, किसी कवि ने कहा है–

मिले मोकला मिनख पण
मिले न मिनखाचार।
फोकट फोनोग्राफ ज्यूं
वातांरो व्यवहार॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक दिन लम्बे प्रवास से थके हुए हजरत मुहम्मद पैगम्बर शिष्यों के साथ किसी गाँव की सीमा पर आराम कर रहे थे उधर से किसी आदमी की शवयात्रा निकली।

पैगम्बर साहब उसके सम्मान में खड़े हो गये। शिष्यों ने कहा– "हजरत ! यह तो किसी यहूदी की शवयात्रा थी।"

इस पर पैगम्बर साहब ने कहा– "यहूदी होने से क्या कोई मनुष्य नही रहता ? उसके सम्मान में खड़े होकर हमने मानवता को सम्मानित किया है।"

दीनाना कल्पवृक्षः सुगुणफलनतः सज्जनानां कुटुम्बी
ह्यादर्शः शिक्षितानां सुचरितनिकषः शीलवेलासमुद्रः।
सत्कर्ता नावमन्ता पुरुषगुणनिधिर्दक्षिणोदारसत्त्वो
ह्येकः श्लाघ्यः सजीवत्यधिकगुणतया चोच्छ्वसन्तीव चान्ये॥

(सद्गुणरुपी फलों से झुका हुआ जो गरीबों के लिए कल्पवृक्ष के समान है, सज्जनों का कुटुम्बी है, शिक्षितों के लिए आदर्श है, अच्छे चरित्र की कसौटी है, शील रूपी मर्यादा का समुद्र है, सबका सत्कार करता है, अपमान किसी का नहीं करता, पुरुषयोग्य गुणो का खजाना है, दक्षिण (अनुकूल) है, उदार है, वही अपने अधिक गुणों के कारण प्रशंसनीय है, जीवित है। अन्य लोग तो केवल सांस लेते हैं।)

क्या ज्ञान और आचरण दोनों से मोक्ष होता है ?

हां; कहा है–

ज्ञानचारित्राभ्यां मोक्षः ।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

नई दिल्ली में डिफेंस कौलोनी के वस स्टेड पर सभी उतरने वाले यात्री प्यास से व्याकुल हो रहे थे। प्याऊ पास ही थी। परन्तु उस पर ताला लगाकर पानी पिलाने वाला कही चला गया था। उसी समय राष्ट्रपति डॉ० राधाकृष्णन अपनी कार में वहाँ से गुजरे। उन्होंने यह दृश्य देखा तो कार रुकवाई। अपने ड्राइवर से प्याऊ का ताला तुड़वाया, और फिर स्वयं पानी वाले की जगह वैठकर लोगों को पानी पिलाने लगे। किसी ने जव कहा कि आप भारत के सर्वोच्च पद पर प्रतिष्ठित होकर यह साधारण कार्य क्यो करने लगे तो उत्तर में राष्ट्रपति वोले–"जो ज्ञान आचरण में न उतरे। वह केवल भार-स्वरुप होता है। प्यासों को जल पिलाना धर्म है—यह मै जानता हूँ। आज उस ज्ञान को आचरण मे उतारने का अवसर मिला—यह प्रसन्नता की वात है।"

क्षारोवारिनिधि: कलङ्कलुषश्चन्द्रो-रविस्तापकृत्
पर्जन्यश्चपलाश्रयोऽभ्रपटला—दृश्यः सुवर्णाचलः ।
शून्यं व्योम रसाद्विजिह्वविधृता स्वर्धामधेनुः पशुः
काष्ठं कल्पतरुर्दृषत्सुरमणिस्तत्केन साम्य सताम् ॥

(समुद्र खारा है, चन्द्र कलंक से कलुषित है, मेघ मे चपला (विजली) रहती है, मेरुपर्वत मेघसमूह से अदृश्य है, आकाश शून्य है, पृथ्वी द्विजिह्व (शेष नाग) द्वारा धारण की गई है, कामधेनु पशु है, कल्पवृक्ष काष्ठ हैं और सुरमणि पत्थर है। सज्जनो की तुलना किससे की जाय ?)

✻

११० : आचरण

क्या साधु के मन-वचन-कर्म में एकता होती है ?

हां; कहा भी है–

मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम् ।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

कुत्तों की एक विशाल सभा को सम्बोधित करते हुए एक कुत्ते ने कहा"–आदरणीय कुत्तो ! अपनी समाज आपस मे लड़ने-झगड़ने के लिए बदनाम है । यह सचमुच बुरी बात है–बुरी आदत है। इस बुरी आदत को छोड़े विना हम सभ्य समाज मे प्रतिष्ठा नही पा सकेंगे । आज प्रेम का युग है–संगठन का युग है । लोग विश्व प्रेम की बातें करने लगे; परन्तु हम यदि उतनी ऊँचाई तक न भी पहुँच सके तो भी कम से कम जाति प्रेम तो हमें अपना ही लेना चाहिये। रोटी के छोटे से टुकड़े के लिए हम आपस मे लड़कर उस टुकडे को कई टुकड़ों में रूपान्तरित करके धूल में मिला देते हैं । उसमे किसी का पेट नहीं भरता। भौंक-भौंक कर हम अपना गला दुखाने की मूर्खता जरूर कर बैठते हैं; परन्तु अव हम ऐसी मूर्खता न करने का सुदृढ़ संकल्प करते हैं। आशा है, आप सब मेरी इस वात का हार्दिक समर्थन अवश्य करेंगे ।"

प्रस्ताव के समर्थन में सभी कुत्ते अपने दोनों पंजों से जमीन थपथपा ही रहे थे कि सहसा आकाश में उड़ती हुई एक चील के मुंह से हड्डी का एक टुकड़ा आ गिरा । जमीन थपथपाना छोडकर एक दूसरे की ओर भौंकते हुए सभी कुत्ते उस हड्डी के टुकड़े पर झपट पड़े।

मनस्यन्यद्वचस्यन्यत्

कर्मण्यन्यद् दुरात्मनाम् ।

(मन में कुछ और, वचन मे कुछ और तथा कार्य में कुछ और जिन लोगों मे पाया जाय, वे दुष्ट होते है ।)

*

१११ : आचरण

क्या बुद्धि से चरित्र बढ़कर है ?

हाँ, एमर्सन का कथन है—

"Character is higher than intellect". (कैरेक्टर इज हायर दैन इन्टैलेक्ट।)

कोई दृष्टान्त ? सुनिये—

काम्बोज सम्राट निङ्-मिङ् की राजसभा में एक बौद्ध भिक्षु ने आकर कहा—'राजन् ! मैं त्रिपिटकाचार्य हूँ। पन्द्रह वर्ष तक समस्त बौद्ध ग्रन्थों का अध्ययन करने के बाद इस देश का धर्माचार्य बनने की इच्छा लेकर आपके समीप आया हूँ। मैं चाहता हूँ कि काम्बोज का शासन सूत्र महात्मा बुद्ध के आदेशों के आधार पर संचालित हो।"

सम्राट स्वयं भी बौद्ध धर्म मर्मज्ञ थे। वे मुस्कुराते हुए बोले— "मैं चाहता हूँ महात्मन् ! कि आप समस्त बौद्ध ग्रन्थों का एक बार पुन. पारायण कर डालें।" भिक्षु ने क्रोध को मन में दबाकर चुपचाप ग्रन्थों का एक पारायण और कर डाला। अगले वर्ष जब भिक्षु सम्राट के सामने पहुँचा तो पुनः सम्राट ने कह दिया—"आप एकान्त में बैठकर एक पारायण और कर डालें तो अधिक अच्छा रहेगा।"

भिक्षु नदी तट पर पहुँचा, मन मारकर उसने पुनः एक पारायण किया। इस बार उसे अनेक नये अर्थ सूझे। पद पाने की कामना नष्ट हो गई। अगले वर्ष सम्राट स्वयं उसे वन्दन करने गये और प्रार्थना की कि धर्माचार्य का आसन सुशोभित करें, किन्तु भिक्षु ने पद ग्रहण करने से इन्कार कर दिया। उसने कहा— कि धर्म उपदेश की नहीं, आचरण की चीज है। उपदेश में अहंकार रहता है। आचरण मे आनन्द। यही कारण है कि आचरण को वास्तविक धर्म माना गया है।

आचारः प्रथमो धर्मः।

(आचरण ही प्रथम धर्म है)

११२ : आचरण

क्या आचरण के विना ज्ञान व्यर्थ होता है ?

हाँ; पहले ज्ञान और फिर दया का क्रम आवश्यक होता है–

"पढमं नाणं तओ दया ।"

कोई दृष्टान्त ? सुनिये–

रात को किसी घर में पति-पत्नी सो रहे थे कि खिड़की तोड़कर एक चोर उस घर के भीतर चला आया। खटखटाहट से पत्नी की नींद खुल गई। उसने पतिदेव को जगाकर धीरे-धीरे कहा–"अजी जगते हो ?"

पति– "हाँ-हाँ, जग रहा हूँ।"

पत्नी–"जानते भी हो कि घर में कौन चला आया है ?

पति– "हां, चोर होना चाहिये ।"

पत्नी–"होना चाहिये क्या ? है– चोर ही है; वह देखो तिजोरी खोल रहा है।" पति–"जानता हूँ।"

पत्नी–"अरे, उसने धन निकालना शुरू कर दिया है।"

पति– "जानता हूँ।"

पत्नी–"अब तो वह धन की गाँठ बाँध रहा है।"

पति– "जानता हूँ।"

पत्नी–"अरे, उसने तो धन की गठड़ी तैयार भी कर ली।"

पति– "जानता हूँ।"

पत्नी–"अरे, अव तो वह घर का दरवाजा खोलकर बाहर निकल रहा है।" पति–"जानता हूँ।"

पत्नी–"वाहर निकलकर वह बहुत दूर चला गया है।"

पति– "जानता हूँ।"

पत्नी–तोड तिजोरी धन लियो, चोर गयो अति दूर।
जाणूं-जाणूं थे करो, जाणपणा मे धूर ॥

११३ : आचरण

क्या अच्छा आचरण ही सुयश का उपाय है।

हाँ; सुकरात ने कहा था– "सुयश पाने का उपाय यह है कि तुम जैसा दिखना चाहते हो, वैसा बनने की कोशिश करो।" उनके शब्द ये हैं–"The way to gain a good reputation is to endeavour to be what you desire to appear. (दि वे टु गेन ए गुड रेप्युटेशन इज टु एन्डेवर टु बी व्हाट यू डिजायर टु एपीयर।)

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

रिचर्ड जेक्सन को राजद्रोह के अभियोग में गिरफ्तार कर लिया गया; किन्तु अपनी प्रामाणिकता और कर्त्तव्यपरायणता के द्वारा उसने कारावास के सभी अधिकारियों का दिल जीत लिया। यहाँ तक कि उसे कारावास के बाहर भी जाने-आने की अनुमति मिल गई। मृत्युदण्ड की सजा का फैसला सुनाने के लिए जब उसे न्यायालय मे बुलाया गया तो वह अकेला ही बिना संरक्षकों के वहां जा पहुँचा। फैसले के बाद उसे 'मर्सी' का अवसर दिया गया। उसके अनुसार राष्ट्राध्यक्ष मृत्युदण्ड प्राप्त व्यक्ति का दण्ड माफ करना चाहे तो कर सकते है। 'मर्सी' के प्रार्थना पत्र के साथ चरित्र सम्बन्धी रिपोर्ट भी जाती है। अधिकारियो ने उसकी प्रामाणिकता से प्रभावित होकर अच्छी रिपोर्ट भेजी। फलस्वरूप जेक्सन का मृत्युदण्ड अध्यक्ष द्वारा क्षमा कर दिया गया। यह था– सदाचार का मधुर सुपरिणाम, जो इसी जीवन में जेक्सन को मिला था। सच है–

अत्युग्रपुण्यपापाना–
मिहैव लभते फलम्।

(अत्यन्त उग्र पुण्य-पाप का फल इस जीवन मे प्राप्त हो जाता है।)

११४ : आचरण

क्या विचारों के अनुसार ही आचार होना चाहिए ?

हाँ; जो सिर्फ बोलता है, करता नहीं। वह उस बगीचे के समान है, जिसमें केवल घास है–

A man of words and not of deeds,
Is like a garden full of weeds.
(ए मैन ऑफ वर्ड्स एण्ड नॉट ऑफ डीड्स
इज लाइक ए गार्डन फुल ऑफ वीड्स।)

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

वड़ौदा में सर सयाजीराव की अध्यक्षता में हुई सभा में एक मद्रासी विद्वान् का तर्कपूर्ण रोचक भाषण हो रहा था। विषय था– अहिंसा और उसका जीवन में महत्त्व। प्रतिपादन की शैली इतनी आकर्षक थी कि सभी श्रोता मन्त्र-मुग्ध होकर सुन रहे थे। बोलने वाले विद्वान के चेहरे पर पसीने की बूंदे आ गई। उन्हे साफ करने के लिए उन्होंने अपनी जेव में हाथ डालकर रूमाल वाहर निकाला तो ध्यान न रहने से दो अण्डे भी जेव से रूमाल के साथ ही वाहर निकल कर फर्श पर गिर पड़ और फूट गये।

श्रोताओं को यह दृश्य देखकर अत्यन्त खेद और आश्चर्य हुआ कि अहिंसा धर्म पर इस खूबी से प्रकाश डालने वाला व्यक्ति स्वयं अण्डे कैसे खा लेता है। वक्ता महोदय लज्जित होकर बैठ गये। अध्यक्ष पद से सर सयाजीराव ने कहा– "ऐसे ही लोगों ने देश का सत्यानाश किया है, जिनकी कथनी और करनी में एकता नहीं है।"

कहते सो करते नहीं,
मुंह के वड़े लवार।
काला मुंह हो जायेगा,
साईं के दरवार ॥

११५ : आचरण

क्या क्रोध से मनुष्य राक्षस की तरह भयंकर दिखाई देता है ?

हाँ, कहा है–

कोवेण रक्खसो वा,
णराण भीमो णरो हवदि ।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

कौरव और पाडव एक गुरुजी के पास पढने लगे । गुरुजी ने सिखाया–"सत्यं वद धर्म चर" (सच बोलो, धर्म का आचरण करो) । दूसरे सबने पाठ सुना दिया । परन्तु सबसे बडे भाई युधिष्ठिर को पाठ याद नही हो सका। जब तीसरे दिन भी उन्होने पाठ नही सुनाया, और पूछने पर उत्तर दिया कि अभी याद नही हुआ, तब क्रुद्ध होकर गुरुजी ने सबके सामने दो तमाचे युधिष्ठिर के गालो पर जमा दिये । फिर युधिष्ठिर ने मुस्कुराते हुए कहा–"आपकी कृपा से अब मुझे पाठ याद हो गया ।"

गुरुजी ने कहा– "सुनाओ ।"

युधिष्ठिर ने कहा–मैं तो पाठ की परीक्षा भी दे चुका हूँ और उसमे से उत्तीर्ण भी हो गया हूँ ।"

गुरुजी को यह पहेली समझ मे नही आई। पूछने पर उसने स्पष्टीकरण दिया– "क्रोध न करना धर्म है। मुझे सशय था कि क्रोध का अवसर आने पर मैं शान्त रह सकूँगा या नही । इसलिये मैं सत्य बोल रहा था कि मुझे पाठ याद नही हुआ है । किन्तु दोनों गालों पर आपके तमाचे खाकर भी जब मुझे क्रोध नही आया, तब सशय मिट गया ।"

ज्ञानचारित्राभ्यां मोक्ष. ।
(ज्ञान और आचरण से ही मुक्ति प्राप्त होती है ।)

११६ : आचरण

क्या ज्ञान से आचरण का महत्व अधिक है ?

हाँ; कबीर ने अनूठे ढंग से कहा है–

करनी करै सो पूत हमारा
कथनी करै सो नाती।
रहणी रहै सो गुरु हमारा
हम रहणी के साथी ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

घटना उस समय की है, जब महात्मा गांधी लन्दन मे रहते थे। एक पादरी ने ईसाई बनाने की नीयत से उन्हे भोजन का निमन्त्रण दिया। पादरी ने शाकाहारी भोजन की उनके लिये व्यवस्था कर दी थी। पादरी के बच्चों ने पूछा–"मिस्टर गाधी के लिए अलग भोजन क्यो बनवाया गया है ?"

पादरी ने कहा–"वे मास नही खाते।"

बच्चे–"मांस क्यो नही खाते ?"

पादरी–"इसलिए कि वे अहिंसक है– अहिंसा धर्म का पालन करते है।"

बच्चे–"अहिंसा धर्म किसे कहते है ?"

पादरी ने महात्मा गांधी का अहिंसा धर्म समझाया तो उससे प्रभावित होकर बच्चे कहने लगे–"आज से हम भी मास नही खायेंगे। अहिंसा धर्म हमें भी अच्छा लगता है।"

पादरी ने सोचा कि आचरण का प्रभाव ज्ञान से भी अधिक तेज होता है। दूसरी बार उन्होंने कभी गांधी को भोजन के लिए नहीं बुलाया।

त्यागश्चारित्रमिष्यते।

(सब प्रकार के सावद्ययोग (पापजनक कार्यों) के त्याग को चारित्र (आचरण) कहते हैं।)

११७ : आचरण

क्या आचरण ही वुद्धिमत्ता है ?

हाँ, अच्छी तरह सोचना वुद्धिमत्ता है–अच्छी योजना बनाना और भी वडी वुद्धिमत्ता है और अच्छी तरह करना सवसे उत्तम और सवमे वड़ी वुद्धिमत्ता है–

Thinking well is wise, planning well, wiser, doing well wisest and best of all

(थिंकिग वेल इज वाइज, प्लानिंग वेल वाइजर डूइंग वेल वाई-जेस्ट एण्ड वेस्ट ऑफ आल ।)

कोई दृप्टान्त ? सुनिये–

खेलते समय पाँव में काँटा लग जाने से रोती हुई इकलौती राज-कन्या को देखकर राजा को वड़ा दुःख हुआ। उसने मन्त्रिमण्डल से ऐसा उपाय पूछा, जिससे भविष्य में उसे काँटा न लगे।

एक ने कहा–"जितने भी काँटे हों उनको काट-काटकर जला दिका जाय।"

दूसरे ने कहा–"खेतों की रक्षा काँटों की वाड़ वनाकर ही की जाती है। इसलिए केवल अनावश्यक काँटे जलाये जायँ।"

तीसरे ने कहा–"वचे हुए काँटे कभी भी चुभ सकते हैं। इसलिए पूरी जमीन पर चमड़ा मढ़ दिया जाय।"

राजा ने वैसा करने की आज्ञा दे दी परन्तु चौथे मन्त्री ने चमड़े के जूते वनवाकर राजकन्या को पहना दिये। राजा से कहा कि कम चमडे मे अधिक और अभीष्ट काम वन गया है। राजकन्या अव कहीं भी घूम-फिर सकती है। इसे काँटा नही लगेगा। तात्पर्य यह है कि उपदेश से आचरण उत्तम है–

उपानद्गूढपादस्य, ननु चर्मावृतेव भू.।

(जिसके पाँव जूतो में है, उसके लिए सारी पृथ्वी चमड़े से [illegible] हुई है।)

आचरण

११८ : आचरण

क्या उपदेश से आचरण कठिन होता है ?

हाँ; दूसरों को उपदेश देने वाले तो गली-गली में मिल जाते हैं। परन्तु आचरण करने वाले बहुत कम मिलते हैं।

पर उपदेश कुशल बहुतेरे।
जे आचरहिं ते नर न घनेरे ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक दिन अपने प्रवचन में पण्डितजी ने बैंगन की बुराई की उसमें बहुत बीज होते है। प्रत्येक बीज में एक-एक जीव होता है। बैंगन खाने से बहुत हिंसा होती है....आदि। प्रवचन पूरा हुआ। श्रोता अपने-अपने घर पहुँचे। पण्डितजी भी अपने घर की ओर जा रहे थे कि मार्ग में सब्जीमण्डी आई। पण्डितजी ने सोचा कि गोल-गोल ताजे चमकीले बैंगन की शाक यदि भरवाँ बनाई जाय तो बहुत स्वादिष्ट बनती है; क्यों न ले लिये जायँ। वे बैंगन तुलवाने लगे कि एक श्रोता ने देख लिया। वह भी सब्जी खरीदने आया था। उसने टोका। उत्तर में पण्डितजी बोले– "जिनकी बुराई कर रहा था, वे पोथी के बैंगन थे, परन्तु ये तो खाने के बैंगन है। दोनों एक कैसे हो सकते है?"

उवएसा दिज्जन्ति
हत्थे नच्चाविऊण अन्नेसिं।
जं अप्पणा न कीरइ
किमेस विक्काणुओ धम्मो ?

(हाथ नचा-नचाकर दूसरों को उपदेश दिये जाते हैं। किन्तु यदि स्वयं उनका पालन न किया जाय तो क्या यह धर्म बेचने की वस्तु न होगी ?)

११६ : आडम्बर

क्या आदमी मे दिखावटीपन उतना ही होता है, जितनी उसमे समझ की कमी होती है ?

हाँ; कहा भी है–Every man has just as much vanity as he wants understanding. (एवरी मैन हेज जस्ट एज मच वैनिटी एज ही वान्ट्स अण्डरस्टेंडिग)

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

जाट एक नाई को साथ लेकर ससुराल गया। दोनो को रात को न सूझने की बीमारी थी। परन्तु वे इसे प्रकट नही होने देना चाहते थे। रास्ते में साला मिला, उसने वहिनोई साहव को वैल सौप दिये। कहा कि मैं बगीचे से फल तोड़ लाता हूँ। तव तक आप वैलो को लेकर घर पहुँचिये। उसी समय शाम हो गई। वैलों को आगे करके दोनों पीछे-पीछे चलने लगे। वैल एक खडहर मे घुस गये। ये दोनों वाहर खडे रहे। पीछे से साले ने आकर पूछा कि यहाँ आप क्या कर रहे हैं ? नाई ने कहा कि आप ही का इन्तजार कर रहे हैं। हम से तो ये वैल चलते ही नही।

वहाँ से साला दोनों को वैलों के साथ घर ले गया। दोनो को जहाँ जीमने विठाया था, वही एक पाडा भी वँधा था, सो वह परोसी हुई थाली मे से वार-वार रोटी खा जाता। साले ने एक डंडा दे दिया कि पाडा अव पास आये तो उसे दो-चार डंडे मार दिये जायँ। थोड़ी देर वाद सासू खिचडी में घी परोसने आई। जमाई की थाली मे फूस देखकर फूँक मारी। उसने समझा कि आ गया पाड़ा। दो-चार डडे जमा दिये। सासू इसे मजाक समझकर चुपचाप रसोईघर में चली

गई। भोजन के बाद सोने के कमरे में जाते हुए नाई का पाँव अनाज की बखार में चला गया। साले के द्वारा पूछे जाने पर नाई ने कहा कि यह बखार सात हाथ की है या पाँच हाथ की—यह जानने के लिए मै इसके भीतर गया था। उसे बाहर निकाल कर फिर दोनों को एक कमरे में पास-पास सुलाया गया। थोड़ी देर बाद घर में आग लगी, तब इन्होंने चिल्लाकर कहा कि हमें रतिंधा आता है—हाथ पकड़ कर बाहर निकालिये। आखिर कब तक छिपाते?

"सचाई छिप नही सकती कभी झूठे उसूलों से॥"



१२० : आडम्बर

क्या आडम्बर व्यर्थ नहीं होता ?

हाँ, गुणों की ही प्राप्ति का प्रयत्न करना चाहिए। आडम्बर से कोई लाभ नहीं–

गुणेषु क्रियतां यत्नः किमाटोपैः प्रयोजनम् ?

कोई दृष्टान्त ? सुनिये–

एक सेठ आग्रहपूर्वक अपने एक मित्र को घर पर आतिथ्य-सत्कार के लिए लाया। फिर पति-पत्नी मे इस प्रकार बातचीत हुई–

पति–भलो पामणो आवियो,
लागे थांरो वीरो।
और भोजन सब जाणद्यो,
करस्यां ताजा सीरो।
पत्नी–भलो पामणो आवियो,
लागे थांरो साडू।
और भोजन सब जाणद्यो,
करस्यां ताजा लाडू॥
पति–भलो पामणो आवियो,
है आपारो सीर।
और भोजन सब जाणद्यो,
करस्यां ताजा खीर॥
पत्नी–भलो पामणो आवियो,
बैठो टूटी खाट।
और भोजन सब जाणद्यो,
राधो ताजा घाट॥

यह सब सुनकर मित्र ने घाटा खाने की तैयारी बताकर कहा–

अठे सुधी गम खाइने, राखी थाँरी काण।
इणसे नीचे ऊतर्या, तो परमेश्वररी आण॥

१२१ : आतिथ्य

क्या आतिथ्य करने वालों के पास धन नहीं रहता ?

हाँ; प्राय: देखने में आता है कि जिनके यहाँ अतिथि आते रहते हैं, वे धनाभाव से पीड़ित रहते हैं–

अभ्यागतो यत्र न तत्र लक्ष्मी: ।

कोई दृष्टान्त?

सुनिये–

खान अब्दुल गफ्फारखाँ, जो सीमान्त गाँधी के नाम से विख्यात है अपने अतिथियों को भोजन परोसने के बाद हाथ जोड़कर कहा करते– "आप मेरे चेहरे की लाली को देखें, थाली को नहीं।"

उनका आशय यह था कि मेरे घर मे जैसा भी साधारण भोजन मौजूद है, मैं उसी से आपका आतिथ्य सत्कार कर रहा हूँ। आप उस भोजन की ओर न देखकर मेरे चेहरे की ओर देखिये कि मैं कितने प्रेम और आनंद से यह स्वागत कर रहा हूँ।

आगन्तुक उनके इस आशय को बराबर समझ लिया करते थे और जो भी उन्हे मिल जाता था, प्रेमपूर्वक खा लेते थे।

भारत में दुर्योधन के मेवे छोड़कर विदुर के घर कोरा शाक खाने की आदर्श परम्परा श्रीकृष्ण से चली आ रही है। प्रेम में वस्तु का मूल्य बढ़ जाता है–

ददाति प्रतिगृह्णाति,
गुह्यमाख्याति पृच्छति ।
भुङ्क्ते भोजयते चैव,
षड्विधं प्रीतिलक्षणम् ॥

(देता है, लेता है, गुप्त बात कहता है, दूसरे की गुप्त बात पूछता है, खाता है और खिलाता है—ये छहों कार्य प्रेम के लक्षण हैं।)

१२२ : आतिथ्य

क्या आतिथ्य सत्कार को मुफ्तखोरों ने वदनाम किया है।

हाँ, उनकी नीति वड़ी निर्दय होती है। वे कहते है–

मुफ्त का चन्दन घिस वे लाला।
तू भी घिस फिर वाप को बुला ला॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

चार जँवाई एक साथ ससुराल गये। तीन दिन खूब मालताल से उनका स्वागत हुआ। परन्तु इतनी अवधि के वाद भी कोई जाने को तैयार न हुआ तो उनका सम्मान ससुराल वालों की नजर मे गिर गया। उन्होंने उन्हें भगाने के लिए एक योजना वनाई। मालताल तो वनाना वन्द कर ही दिया, साथ ही गेहूँ के वदले वाजरे की रोटी वनाने लगे। इससे एक जँवाई विदा हो गया। फिर घी वन्द करके तेल का प्रयोग शुरु कर दिया। इससे दूसरा जँवाई भी चला गया। फिर रात को सारे ओढ़ने-विछाने की सामग्री गायव कर दी। उन्हें भूमि पर ही सोना पड़ा। इससे तीसरा भी चला गया। अव एक जँवाई वचा था। उसके लिए ससुर और साले ने मिलकर मरम्मत करने की वात सोची। वे सुवह होते ही आपस मे लडने लगे। ससुर ने कहा– कि तूने विस्तर क्यो नही विछाया ? वेचारों को ठण्ड में काँपते हुए जमीन पर सोना पड़ा। साले ने कहा– "पिताजी ! मैं थका हुआ था। लेटते ही मुझे नीद आ गई। यदि आप ही विस्तर कर देते तो क्या हाथ घिस जाते ?" कल्पना के अनुसार झगड़ा मिटाने चौथा जँवाई आया तो दोनों ने उसकी खूव मरम्मत कर डाली। धक्के खाकर वह चला गया।

पहले दिन को पामणो, दूजे दिन को पई।
तीजे दिन जो विदा न माँगे, उसकी अक्कल गई।

१२३ : आतिथ्य

क्या आतिथ्य सत्कार सबके लिए कर्त्तव्य है ?

हाँ; पुराने शास्त्र में अतिथि को देव मानकर उनके सन्मान का विधान करते हैं–

अतिथि देवो भव ।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक धनवान सेठ का व्यापार बहुत बढ़ा-चढ़ा था। आस-पास के गाँवों के अनेक फुटकर व्यापारियों से उसका सम्बन्ध जुड़ा था। वे आते और माल ले जाते। परन्तु सेठानी किसी का आतिथ्य नही करती। भोजन तो दूर, पानी को भी नही पूछती। फलस्वरूप सेठ जब उधारी वसूलने गाँवों मे जाता, तो उसे भी कोई पानी के लिए नही पूछता था। सदा उसे अपने साथ पूरियाँ और अचार बाँधकर ले जाना पड़ता।

कुछ समय बाद सेठानी के मर जाने पर पुत्र-वधू घर की संचालिका बनी। वह सभी आगन्तुकों का भोजन-पानी आदि से सत्कार करती थी। उसके व्यवहार से सब प्रसन्न रहते थे। एक दिन सेठजी ने कहा कि–मुझे गाँवों मे जाना है, पाथेय बना दो। इस पर बहू ने उत्तर दिया कि–पाथेय मैंने आगे भेज दिया है। सेठजी चले गये। सर्वत्र उनका खूब सत्कार हुआ। बहू की बात का मर्म समझकर वे अत्यन्त प्रसन्न हुए। वे जहाँ भी जाते, लोग आग्रहपूर्वक उन्हें दो-दो तीन-तीन दिन के लिए रोक लेते।

दानं च दापनमथो मधुरा च वाणी
त्रिण्यप्यमूनि खलु सत्पुरुषे वसन्ति ।

(देना, दिलाना और मीठा बोलना–ये तीनों गुण सत्पुरुष में रहते हैं।)

कल्याण कथा कोष

१२४ : आत्मशुद्धि

जिसे किसी भी परिस्थिति में क्रोध नहीं आता, क्या उसी की आत्मा शुद्ध है ?

हाँ; उपदेश माँगने पर हजरत मुहम्मद ने एक शिष्य से कहा था–

"नाराज मत होओ।"

"Give me advice." Prophet Mohammad said, "Be not angry." ("गिव मी एड्वाइस" प्रोफेट मोहम्मद सेड, "बी नोट ऐंग्री।)

कोई दृष्टान्त ? सुनिये–

आत्म-शुद्धि का उपाय पूछने पर किसी सन्त ने मन्त्र देकर एक वर्ष तक उसका जप करके लौटने पर वह उपाय अपने शिष्य को बताने का वचन दिया। वर्ष भर तक मन्त्र का जप करके शिष्य ज्यों ही आश्रम में आ रहा था कि सन्त का संकेत पाकर बुहारने वाली ने कुछ कचरा उसके सिर पर डाल दिया। शिष्य आग-बबूला होकर उसे मारने दौड़ा। बुहारने वाली ने भागकर अपना पिण्ड छुड़ाया। सन्त के पास आने पर शिष्य को कहा गया कि वह फिर से एक वर्ष तक उसी मन्त्र का जप करके लौटे। शिष्य ने वैसा ही किया। लौटने पर भगिन ने फिर से कचरा डाल दिया। शिष्य ने उसे खूब डाँटा-डपटा और फिर सन्त के समीप पहुँचा। इस बार फिर उसे वैसा ही जप करने को कहा गया। अवधि पूर्ण होने पर शिष्य ज्यों ही आश्रम की ओर लौटा, उसे फिर भगिन के कचरे का सामना करना पड़ा। किन्तु इस बार उसने भगिन को प्रणाम करके विनयपूर्वक सन्त के निकट बैठकर आत्मशुद्धि का उपाय मधुर कोमल शब्दों में पूछा। सन्त ने शिष्य के सिर पर वात्सल्य से हाथ फिराकर कहा कि अब तुम्हारी आत्मशुद्धि हो चुकी है, इसलिए आत्मशुद्धि का उपाय जानने की आवश्यकता ही नहीं रही। गुस्सा न करना आत्मशुद्धि का लक्षण है–

अपकारिषु, कोपश्चेत्कोपे कोपः कथं न ते ?

(यदि अपकारी जनों पर ही क्रोध आता है तो तू क्रोध पर ही क्रोध क्यों नहीं करता ?)

✻

१२५ : आत्मश्लाघा

क्या सच्ची प्रशंसा वही है, जो दूसरों से हमें प्राप्त होती है ?

हाँ; यदि गुणहीन व्यक्ति हो तो भी दूसरों के द्वारा प्रशंसा पाकर गुणवान् बन जाता है। दूसरी ओर स्वयं इन्द्र भी अपने मुंह से अपनी प्रशंसा करने पर लघुता (हल्कापन या तुच्छता) पा जाता है–

परैः प्रोक्ता गुणा यस्य
निर्गुणोऽपि गुणी भवेत्।
इन्द्रोऽपि लघुतां याति
स्वयं प्रख्यापितैर्गुणैः ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक रोमन दार्शनिक विद्वान से एक वाचाल आदमी ने डींग हाँकते हुए कहा–"मैंने बड़े-बड़े विद्वानों को देखा है और उनसे बातचीत की है–सिर्फ आप ही मुझे पहले विद्वान् के रुप में प्राप्त हुए हो– ऐसी बात नहीं।"

रोमन दार्शनिक ने भी तपाक से इस बात के उत्तर में कहा– "अजी ! मैंने भी इस दुनिया के बड़े-बड़े धनवनों को देखा है और उनसे बातचीत भी की है, परन्तु इससे मैं धनवान नहीं हुआ। और भी कोई व्यक्ति इस तरीके से धनवान बन नहीं सकता।"

आदमी का घमण्ड इस उत्तर से चूर-चूर हो गया। वह समझ गया कि विद्वानों से बात करने से ही किसी को महत्ता नहीं मिल सकेगी। महत्ता के लिए स्वयं विद्वान् बनना होगा–स्वयं साधना करनी होगी।

अपनी प्रशंसा खुद करने से श्रोता निन्दक बन जाते हैं। यह मूर्खता है। लोग कहते हैं कि ऐसा आदमी सदा "अपने मुंह मियाँ मिट्ठू" बनता है।

१२६ : आत्मश्लाघा

क्या अपने मुंह से अपनी प्रशसा नही करनी चाहिये ?

हाँ, और कोई भले ही तेरी तारीफ करे, तू अपने मुँह मियाँ मिट्ठू न बन–ऐसा बाइबल (ईसाई धर्म की पवित्र पुस्तक) मे लिखा है–

Let another man praise thee. and not thin own mouth, a stranger, and not thine own lips

(लेट एनादर मेन प्रेज दी, एण्ड नॉट दाइन ओन माउथ; ए स्ट्रेंजर, एण्ड नॉट दाइन औन लिप्स ।)

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

ग्रीस के एक दार्शनिक को आत्मश्लाघा की बीमारी लग गई। वह साधारण भोजन करता था– साधारण झोंपडी मे रहता था। उसका त्यागमय जीवन सचमुच प्रशसनीय था, परन्तु जगह-जगह वह अपने प्रवचनो में और चर्चाओ मे सादगी से रहने का आदर्श किसी को सीखना हो तो मुझ से सीखे और मेरी तरह जीने का अभ्यास करे– ऐसा बार-बार कहा करता था, इससे उसका प्रभाव जनता पर कुछ नही पड़ता था। एक दिन सुकरात ने उससे कह दिया कि सादगीपूर्ण जीवन का भी अहकार घातक होता है। आप प्रशसा पाने के लिए साधारण वस्त्र, भोजन, घर आदि का उपयोग करते है–यह तपस्या नही है। तपस्या निष्काम होनी चाहिये और अपने मुँह से अपनी प्रशंसा करके उसका महत्त्व नष्ट करने से बचना चाहिए। तभी जीवन सफल हो सकता है।

परैः प्रोक्ता गुणा यस्य, निर्गुणोऽपि गुणी भवेत् ।
इन्द्रोऽपि लघुतां याति, स्वय प्रख्यापितैर्गुणै ॥

(दूसरो के द्वारा जिसके गुणों का वर्णन किया जाता है, वह निर्गुण भी गुणवान् हो जाता है। अपने मुंह से अपनी प्रशसा करने पर इन्द्र भी लघुता पाता है।)



१२७ : आत्मश्लाघा

क्या आत्मश्लाघा नहीं करना चाहिये ?

हाँ; यह बहुत बड़ा दोष है, जो महान् व्यक्ति को तुच्छ बना देता है। इसीलिए कहा जाता है—

आत्मश्लाघा न कर्त्तव्या ।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

कुछ लोगो को अपने मुंह मियाँ मिट्ठू बनने की आदत हो जाती है। एक प्रवचन करने वाले पण्डित को आत्मश्लाघा की आदत थी। वह अनेक प्रकार से प्रशंसा सुनने को उत्सुक रहता था। एक दिन सौ-डेढ सौ आदमियों के बीच किसी आदमी से उन्होंने पूछा—"क्या आप मेरा प्रवचन सुनने नही आते ?" जिससे पूछा गया था, वह आदमी बराबर प्रवचन सुनने आया करता था— यह पण्डितजी जानते थे। फिर भी इतने आदमियों के बीच पूछने से उनका आशय यह था कि वह सबके बीच यह कहे कि मै नियमित रूप से सुनने आता हूँ— आपके प्रवचन सुनने योग्य होते है आदि। इस प्रकार सब उपस्थित लोगों के बीच वे उस श्रोता से अपनी प्रशंसा सुनना चाहते थे; परन्तु श्रोता ने उत्तर दिया—"मै आपके प्रवचनो में इसलिए आता हूँ कि यहां बैठने के लिए स्थान आसानी से मिल जाता है।" इस उत्तर से पण्डितजी को बहुत चोट पहुँची, उन्हें लज्जित होना पडा।

इन्द्रोऽपि लघुतां याति,
स्वयं प्रख्यापितैर्गुणै. ॥

(इन्द्र भी स्वयं अपने मुंह से कहे गये गुणो के द्वारा तुच्छता को प्राप्त करता है।)

१२८ : आत्मा

क्या सच्चा जीवन उसी का है, जो दूसरों के लिए जीता है ?

हाँ, कहा है–

मनुष्य है वही कि जो
मनुष्य के लिए मरे ।
मनुष्य है वही कि जो
मनुष्य के लिए जीये ।।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

किसी कुत्ते की ओर सकेत करते हुए जब परम भक्त हुसैन से पूछा गया कि आप दोनों मे से किसका जीवन श्रेष्ठ है, तब भक्त ने उत्तर दिया– "जब मैं अपना समय परोपकार मे बिताता हूँ, तब मेरा जीवन कुत्ते से श्रेष्ठ होता है । किन्तु जब दूसरो के प्रति ईर्ष्या मन मे पैदा हो जाती है– दूसरो का भला करने की भावना गायब हो जाती है, तब कुत्ते का जीवन मेरे जीवन से श्रेष्ठ हो जाता है । जीवन की श्रेष्ठता का सम्बन्ध पवित्रता से है– परोपकार से है, उच्च कुल आदि से नही ।"

आत्मार्थं जीवलोकेऽस्मिन्,
को न जीवति मानवः ?
पर परोपकारार्थम्,
यो जीवति स जीवति ।।

[इस प्राणियो से परिपूर्ण ससार मे आत्मार्थ (अपनी भलाई के लिए) कौन मनुष्य जीवित नही रहता ? (सभी जीवित रहते है) परन्तु जो व्यक्ति परोपकार के लिए (दूसरे प्राणियो का भला करने के लिए) जीवित रहता है, वही वास्तव मे जीवित है (शेष सब मृत है– मुर्दे है)]

१२९ : आत्मा

क्या आत्मा का रहस्य अनुभव से प्रकट होता है ?

हाँ; आत्मा का रहस्य प्रकट करने की शक्ति शब्दों में नहीं है–

No words suffice the secret soul to show.

(नो वर्डस सफाइस दि सिक्रेट सोल टु शो)

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

सिंहनी ने एक बच्चे को जन्म दिया। कुछ ही समय बाद किसी शिकारी का एक बाण छाती में लगने से उसके प्राणपखेरू उड़ गये। बच्चे को एक गड़रिया उठा ले गया। वह भेड़ों के साथ रहने लगा। संगति के प्रभाव से सिंह शावक भी भीरु स्वभाव का बन गया। एक गड़रिया भेड़ें चरा रहा था। चराते-चराते वह जंगल में कुछ दूर निकल गया। वहाँ एक सिंह मिला। उसने जोरदार गर्जना की। सिंह की उस दिल दहला देने वाली हुंकार को सुनकर सब भेड़ें वहाँ से भागने लगी। सिंह का बच्चा भी उनके साथ ही भागता रहा।

मार्ग में एक झरना बह रहा था। उसका जल एक गड्ढे में भर रहा था। उसमें सभी भेड़ें पानी पीने लगी। शेर के बच्चे ने भी पानी पीने का प्रयास किया। उसी समय उसे अपना प्रतिबिम्ब जल में दिखाई पड़ा। देखते ही उसे ज्ञात हो गया कि मैं तो वैसा ही सिंह हूँ, जो वहाँ गर्जना कर रहा था। तत्काल आत्मज्ञान होते ही वह सब भेड़ों को छोड़कर चला गया–

जे एगं जाणइ से सव्वं जांणइ।

(जो एक (आत्मा) को जानता है, वही सर्वज्ञ है।)

१३० : आत्मा

"ब्रह्म सत्य है—जगत् मिथ्या है—जीव ब्रह्म ही है, दूसरा नही" क्या यह सिद्धान्त वेदान्त का है ?

हाँ; उसके शब्द ये हैं—"ब्रह्म सत्यम्, जगन्मिथ्या, जीवो ब्रह्मैव नाऽपरः।"

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

आद्य शंकराचार्य के जीवन का यह अत्यन्त प्रेरक प्रसंग है। एक दिन वे स्नान करने के बाद नदी से अपने आश्रम की ओर लौट रहे थे कि मार्ग मे एक हरिजन भाई से उनका शरीर छू गया। वे झुंझलाकर बोल पड़े—"अरे अछूत ! तू ने मुझे छूकर अपवित्र क्यो कर दिया ? मुझे फिर से स्नान करना पड़ेगा।"

अछूत भाई ने कहा—"आप अपवित्र किसे मानते है—शरीर को या आत्मा को ? शरीर तो सबका मल-मूत्र-मांस-हड्डी से भरा होने के कारण अपवित्र ही है और आत्मा तो किसी की अपवित्र होती ही नही। आप स्वय भी तो अपने प्रवचनो मे 'जीवो ब्रह्मैव नाऽपरः' (जीव ही ईश्वर है, दूसरा नही) की उद्घोषणा करते रहते है। अद्वैत वेदान्त मे छुआछूत की भावना को कहाँ स्वीकार किया गया है ? कृपया स्पष्ट करें।"

शकराचार्य की आँखें यह कथन सुनकर खुल गईं। वे सत्य को समझ मे आते ही तत्काल स्वीकार कर लेते थे। उन्होने उस हरिजन भाई को प्रणाम किया। उन्होने दुबारा नदी तट पर जाकर स्नान करने का विचार छोड़ दिया और चुपचाप वहाँ से अपने आश्रम मे लौट आये। शकराचार्य में सचाई को स्वीकार करने का जो साहस था, वह सब के लिये उपादेय है ?

अश्वमेधसहस्राद्धि, सत्यमेवातिरिच्यते।

(हजार अश्वमेध यज्ञों से भी सत्य का महत्त्व अधिक है।)

१३१ : आत्मा

क्या आत्मा ही स्वयं ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र और शिव है ?

हाँ; कहा भी है–

> स्वयं ब्रह्मा स्वयं विष्णुः
>
> स्वयमिन्द्रः स्वयं शिवः ।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

थियोडर पार्कर घूमने के लिए नगर से बाहर निकला। वहाँ उसने एक कछुए को घूमते हुए देखा। पार्कर ने एक पत्थर उठाकर उस पर फेकना चाहा कि सहसा मन में यह विचार उठा कि बेचारा यह जानवर पहले से ही कष्ट पा रहा है, पत्थर मार कर मैं इसे और अधिक दु.खी क्यों बनाऊँ। सहसा उसने पत्थर जहाँ से उठाया था वही रख दिया।

फिर घर आया। माँ से पूछा कि कछुए को मारने के लिए उठाया हुआ पत्थर मैं एक ओर पटक कर चला आया तो मैं जानना चाहता हूँ कि मुझसे ऐसा किसने करवाया।

माँ ने कहा–"प्रभु हमारे अन्तःकरण के माध्यम से हमें अच्छे कार्य के लिए प्रेरित करते हैं। स्वार्थ के कारण लालच मे फँसकर जो हृदय से मिलने वाली प्रेरणा की उपेक्षा करते है, वे बुरे कार्य करके अपने जीवन को बिगाडने का अपराध करते है। इससे विपरीत अपने हृदय की पुकार सुनकर उससे अच्छे कार्यों की प्रेरणा लेने वाले दुष्ट भी शिष्ट बन जाते है। यह सब चिन्तन का फल है।"

> "एकाकी चिन्तमानो हि
>
> परं श्रेयोऽधिगच्छति ।"

(अकेला चिन्तन करता हुआ व्यक्ति श्रेष्ठ कल्याण का भागी बनता है।)



१३२ : आत्मा

क्या आत्मा से ही आत्मा का उद्धार करना चाहिये ?

हाँ; आत्मा का पतन नहीं होने देना चाहिए। आत्मा ही आत्मा का बन्धु है और वही उसका शत्रु भी—

उद्धरेदात्मनात्मानम् नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धु–रात्मैव रिपुरात्मन ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

एक अन्धा था और एक लँगड़ा। किसी धनवान ने अपने बगीचे की रक्षा के लिए दोनों को नियुक्त कर दिया। पके हुए फल देखकर लँगड़े के मुँह मे पानी आ गया, किन्तु वह पेड़ तक पहुँच नहीं सकता था। अन्धे को फलों की मादक सुगन्ध आकर्षित कर रही थी, परन्तु वह फल तोड़ नहीं सकता था। अन्त में दोनों ने समझौता कर लिया। उसके अनुसार लँगड़ा अन्धे के कन्धे पर सवार होकर फलदार वृक्षों के समीप जा पहुँचा, खूब फल तोड़े और दोनों ने मिलकर खाये।

फल कम उतरने पर मालिक ने जब पूछताछ की तो ये दोनों झूठ बोल गये। अन्धे ने कहा— "मैं जब देख नहीं सकता तो तोड कैसे सकता हूँ ?" लँगड़े ने कहा— "जब मैं चल-फिर नहीं सकता तब फल कैसे तोड़ सकता हूँ ?"

मालिक ने किसी तरह रहस्य का पता लगाकर दोनो को सर्विस से अलग कर दिया। इसी प्रकार शरीर अन्धा है और आत्मा लँगड़ा। आत्मा शरीर पर सवार होकर ही सारे कार्य करता है। जो उनके इस रहस्य को जान लेते हैं, वे पाप नहीं कर सकते।

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य, येनात्मैवात्मना जित. ।

(जिसने आत्मा से आत्मा को जीत लिया, उसी का आत्मा बन्धु होता है— सहायक होता है।)

१३३ : आत्मा

क्या सच्चा ज्ञानी वही है, जो आत्मा को पहिचानता है ?

हाँ; कबीर साहब का कहना है कि शरीर के भीतर उस परम ज्योति का निवास है—

मन मथुरा दिल द्वारका,
काया काशी जान।
दसों द्वार का देहरा,
ता में ज्योति पिछान ॥

कोई दृष्टान्त ? सुनिये—

एक घर में पुत्र के पैदा होते ही उसका पिता धन कमाने के लिए परदेश में चला गया। पन्द्रह वर्ष बाद पत्र द्वारा यह शुभसन्देश प्राप्त हुआ कि वह घर लौट रहा है, पिता का स्वागत करने पुत्र बड़े उत्साह के साथ अपने गाँव से पाँच मील दूर स्टेशन पर पहुँचा। वहाँ वह एक धर्मशाला में ठहरा। जिस कमरे में वह ठहरा था, उसी में उसका पिता भी आकर ठहर गया। किन्तु दोनो एक-दूसरे को पहिचानते नही थे। इसलिए सामान रखने के प्रश्न पर दोनो मे झगड़ा भी हो गया।

दूसरे दिन पुत्र से पहले ही पिता घर पहुँच कर स्नान के लिए बाथरूम में चला गया। बाद में पुत्र घर पहुँचा। उसने कहा कि पिताजी नहीं आये माँ ! इतने में स्नानघर से पिताजी बाहर निकले तो माँ ने पहिचान कराई। पुत्र ने उसी समय उनके चरणों में प्रणाम करके पिछले दिन हुए कलह के लिए क्षमा माँगी। इसी प्रकार गुरु से हुई आत्मा की पहिचान होने पर ही सारे द्वन्द्व समाप्त होते है।

सर्वभूतस्थमात्मानम् सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शिनः ॥

(सब प्राणियों मे आत्मा को और आत्मा मे सब प्राणियों को जो देखता है, वह सर्वत्र समदर्शी योगी है।)

क्या आत्मज्ञ ही सर्वज्ञ है ?

हाँ, महावीर स्वामी ने कहा है–

जे एगं जाणइ से सव्वं जाणइ।
जे सव्वं जाणइ से एगं जाणइ॥

(जो आत्मज्ञ है, वही सर्वज्ञ है और जो सर्वज्ञ है, वही एक (आत्मा) को जानने वाला अर्थात् आत्मज्ञ है।)

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

हंस ने उल्लू से कहा कि आज सूर्य की धूप बहुत तीखी लग रही है। उल्लू ने पूछा–"सूर्य कहाँ है ?" हंस ने कहा–"वह आकाश में है और उसका प्रकाश धरती पर पडता है।"

उल्लू–"मैंने न तो सूर्य देखा है और न प्रकाश ही। न सूर्य से प्रकाश साबित होता है और न प्रकाश से सूर्य। इसलिये ये दोनों असिद्ध हैं।"

फिर उल्लू हंस को उल्लुओं की सभा में ले गया। वहाँ उसने कहा–"यह हंस सूर्य को सिद्ध करने आया है, आप सब अपने अनुभव से सूर्य को जानते हों तो इसकी बात का समर्थन कीजिए।"

उल्लुओं ने एक स्वर में कहा कि सूर्य का अस्तित्व नही है, उसका हममें से किसी को कभी अनुभव नही हुआ।

कहने का आशय यह है कि सूर्य के समान आत्मा और परमात्मा का अस्तित्व है, फिर भी नास्तिक नही मानते। किन्तु किसी के न मानने मात्र से आत्मा का अस्तित्व समाप्त नही हो जाता।

अप्पा कामदुहा धेणू
अप्पा मे नंदणं वणं।

(आत्मा कामधेनु (कामनायें शान्त करने वाली गाय) है और आत्मा ही मेरे लिए नन्दनवन है।)



१३५ : आयु

क्या आयु खरीदी नहीं जा सकती ?

हाँ; आयु के क्षण का अंश मात्र भी करोड़ों स्वर्णमुद्राओं से प्राप्त नहीं हो सकता। यदि ऐसी अमूल्य आयु सम्पूर्ण व्यर्थ चली जाय तो उससे बढ़कर हानि क्या होगी ?

आयुः क्षणलवमात्रम्
न लभ्यते हेमकोटिभिः क्वापि।
तच्चेद् गच्छति सर्वम्,
वृथा ततः काऽधिका हानिः॥

कोई दृष्टान्त ? सुनिये—

एक सेठ सौ जहाजों में माल भर कर समुद्रीयात्रा द्वारा दूसरे देश के लिए रवाना हुआ। मार्ग में तूफान आने लगे और एक के बाद एक जहाज समुद्र में डूबने लगा। फिर भी सेठ को कोई चिन्ता नहीं हुई। उसने अपने साथियों से कहा कि थोड़े से जहाज भी बच गये तो उन्ही से व्यापार मे इतनी कमाई हो जायगी कि नुकसान की सारी कसर निकल जाय। धीरे-धीरे जब निन्यानवे जहाज डूब गये, तब सेठ की नींद खुली। उसने जहाज चलाने के लिए एक अत्यन्त कुशल खलासी नियुक्त किया, बची हुई सम्पत्ति का एक भाग गरीबों के दुःख-दर्द मिटाने के लिए निकाल दिया। और सभी साथियों को लेकर प्रभु-भजन में लग गया— सौवाँ जहाज सकुशल किनारे पर पहुँचा। वहाँ व्यापार में खूब कमाई करके सेठ घर (अपने घर) लौट आया।

सौ जहाज के समान सौ वर्ष हमें पुण्य और धर्म की कमाई के लिये मिले हैं जो एक के बाद एक डूबते जा रहे हैं, उनका सदुपयोग ही समझदारी है।

सांस-सांस में भजन कर, वृथा सांस मत खोय।
कुन जाने या सांस को, आणो हो कि न होय॥

१३६ : आयु

क्या आयु का एक क्षण भी व्यर्थ नहीं खोना चाहिये ?

हाँ; क्योंकि वह सब (दुनिया भरके) रत्न देने पर भी नहीं मिल सकता। जिस प्रमाद के कारण वह क्षण या आयु व्यर्थ नष्ट की जाती है, वह कितना महान् है–

आयुषः क्षण एकोऽपि सर्वरत्नैर्न लभ्यते।
नीयते तद् वृथा येन प्रमादः सुमहानहो !

कोई दृष्टान्त ? सुनिये–

युधिष्ठिर याचकों को दान कर रहे थे। एक याचक उस समय आया, जब वे भण्डार बन्द कर रहे थे। उसे उन्होंने कह दिया कि कल सुबह सबसे पहले तुम्हीं को दान दिया जायगा। इसलिए सुबह आ जाना। याचक निराश लौटने लगा।

भीम दूर से यह देख रहा था। उसने तत्काल नगारा बजाना शुरु कर दिया। धर्मराज ने किसी को भेजकर पुछवाया कि यह नगारा किस उपलक्ष में बज रहा है। भीम ने कहलाया कि "मेरे बड़े भाई कालविजयी हैं, वे कल सुबह तक निश्चित रूप से जीवित रहेंगे–ऐसा मुझे मालूम हुआ है। बस, इसी खुशी के कारण मैं नगारा बजाने लग गया।"

युधिष्ठिर ने जब यह सुना तो तत्काल उन्हें अपनी भूल समझ में आ गई। उन्होंने भंडार खोलकर उस याचक के घर यथोचित सामग्री भिजवा दी।

कौन सी साँस अन्तिम है ? यह कोई नहीं जानता। इ
छोड़ कर सबको कर्तव्य-तत्पर रहना चाहिए।

महावीर स्वामी बार-बार कहते थे–

समयं गोयम ! मा ।

(हे गौतम ! तू क्षण भर का भी प्रमाद

आयु

१३६ : आसक्ति

क्या आसक्ति से प्राणी दुःखी होते हैं ?

हाँ; जिस प्रकार तालाब के कीचड़ मे डूबे हुए बूढ़े जंगली हाथी परेशान होते हैं, उसी प्रकार पुत्र, पत्नी और कुटुम्ब मे आसक्त प्राणी दुःखी होते हैं–

पुत्रदाराकुटुम्बेषु,
सक्ताः सीदन्ति जन्तव. ।
सरःपङ्कार्णवे मग्नाः,
जीर्णावनगजा इव ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

राजा ययाति अत्यन्त विषयासक्त थे। धीरे-धीरे उनकी जवानी बीत गई। बुढ़ापे में भी विषय-भोग की लोलुपता बनी रही; क्योंकि विषयों की कामना का सम्बन्ध मन से है, तन से नहीं। तन ने उनके मन का साथ नही दिया तो वे खिन्न रहने लगे। पिता की तीव्र भोगलिप्सा और खिन्नता देखकर पुत्र ने अपना यौवन उन्हे दे दिया। पुत्र का यौवन पाकर उन्मुक्त रूप से विषयभोगों का सेवन करने पर भी उन्हें तृप्ति नही हुई, तब उन्हे बोध हुआ–

न जातु कामः कामाना–
मुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव
भूय एवाभिवर्धते ॥

(कभी कामों के उपभोग से काम शान्त नही होते, इसमें विपरीत हवि (हवन की सामग्री अथवा घी) से जिस प्रकार अग्नि बढ़ती है वैसे ही भोग से कामना पुनः बढ़ जाती है।)

१४० : आसक्ति

क्या आसक्त व्यक्ति दोषों में भी गुण देखता है ?

हाँ; वह प्रिय को दूर से देखकर हँसता है– कुशल पूछने पर विशेष आदर करता है– पीठ पीछे भी गुणों की प्रशसा करता है– प्रिय की वस्तु मिलने पर प्रिय का स्मरण करता है– सेवा न करने पर भी अनुराग दिखाता है– प्रिय (मीठी) वाणी के साथ उसे दान करता है– ये सब अनुरक्त के लक्षण है–

दूरादवेक्षणे हासः सप्रश्नेष्वादरो भृशम् ।
परोक्षेऽपि गुणश्लाघा स्मरण प्रियवस्तुषु ॥
असेवके चानुरक्ति–र्दान सप्रियभाषणम् ।
अनुरक्तस्य चिह्नानि दोषेऽपि गुणसंग्रह ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक बादशाह ने अपनी बेगम से कहा–"मै तुम्हारी खुशी को ही अपनी खुशी मानता हूँ, तुम्हे प्रसन्न देखकर मेरा हृदय बाँसो उछलने लगता है, मुझे विचार आता है कि यदि कभी तुम न रही तो मै जिन्दा कैसे रह सकूंगा, मुझे तुम्हारी खुशी के लिए अपनी जान देने मे भी खुशी ही होगी·········

यह सुनकर बेगम बोली–

अजी ! तुम मुझ पर नही,
बस मर रहे हो चार पर ।
[1]नाज पर [2]अन्दाज पर
[3]रफ्तार पर [4]गुफ्तार पर ॥



---

१. नाज=नखरे । २. अदाज=कटाक्ष । ३. रफ्तार=चाल । ४. गुफ्तार =बातचीत करने का ढग ।

१४३ : आज्ञापालन

क्या गुरु की आज्ञा का पालन करना चाहिये ?

हाँ; सज्जन कभी गुरु की आज्ञा का उल्लंघन नही करते–

सतामलङ्घ्या गुर्वाज्ञा ।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

साध्वियों का एक समुदाय किसी गाँव के धर्मस्थान मे ठहरा था। रात को जब ठण्डी हवा के झोंके आने लगे, तब गुरुणीजी ने एक शिष्या साध्वी को फाटक खुला न रखने का आदेश दिया। फाटक बन्द किया गया, किन्तु दुबारा हवा के झोंके से खुल गया, क्योंकि फाटक में साँकल तो थी, परन्तु उसे लगाने का नकुचा नहीं था, फिर भी गुरुणीजी की आज्ञा का पालन करना जरूरी था, इसलिए वह विनीता साध्वी नकुचे के स्थान पर अपने हाथ की उंगली लगाकर रात भर खड़ी रही। गुरुणीजी को और अन्य सभी साध्वियों को आराम से नीद आ गई, परन्तु उस साध्वी का चिन्तन चलता रहा।

प्रातःकाल अरुणोदय के साथ ही उसे केवलज्ञान प्राप्त हुआ। इस प्रकार उसके लिए मोक्ष का सर्वोच्च स्थल सुरक्षित हो गया। आज्ञा-पालन, विनय और सेवाभाव के फलस्वरूप शिष्या आत्मसाधना के मार्ग में अपनी गुरुणीजी से भी आगे बढ गई, गुरुणीजी के लिए भी वन्दनीय बन गई।

पशु की तो पनियाँ[1] बने, नर का कछू न होय ।
नर नर की करणी करे, तो नारायण होय ॥

---

१. पनियाँ=जूते ।

१४४ : आज्ञापालन

क्या सबको बडों की आज्ञा का पालन बिना सोचे-विचारे ही करना चाहिए ? हाँ; कहा भी है–

वड़ों की बात है अविचारणीया ।
मुकुटमणितुल्य शिरसा धारणीया ॥

कोई दृष्टान्त ? सुनिये–

एक सेठजी अपनी सेठानी से बहुत तग आ चुके थे, क्योंकि वह आज्ञा का पालन बराबर नहीं करती थी। इतना ही नही बल्कि जो कुछ कहा जाता, उससे उल्टा ही काम करती थी। सेठजी ने काँटा निकालने के लिए एक उपाय किया। स्वय ही एक चिट्ठी अपने नाम लिखकर पोस्ट कर दी, जब पोस्टमैन ने चिट्ठी लाकर दी तो उसे पढकर सेठानी से उन्होंने कहा– तुम्हारी माँ बहुत बीमार है, मुँह देखने के लिए तुम्हें बुलाया है। परन्तु बरसात के दिन है– नदी मे पूर आ रहा है। इसलिए जाने का विचार मत कर लेना।

सेठानी–"ऐसा कैसे हो सकता है ? मैं तो जाऊँगी"

सेठ–"अच्छी बात है, परन्तु साथ मे अपने सारे गहने भी लेती जाना, नही तो अच्छा नहीं रहेगा।"

सेठानी–"माँ की सेवा करने जाना है, किसी के विवाह मे नही। मै तो एक भी गहना नही ले जाऊँगी।"

सेठ सेठानी को पहुँचाने गये। नदी मे पूर था, नाव थी नही। एक बैल की पूँछ पकड़ कर सेठानी नदी पार जा रही थी। नदी के ठीक बीज में पहुँची होगी कि इधर से सेठ ने चिल्लाकर कहा–"पूँछ मजबूती से पकड़ना, नही तो पूर में बह जाओगी।"

सेठानी बोली– "आज तक कभी तुम्हारा कहना माना भी है, जो आज मानूँगी ?" ऐसा कहकर पूँछ छोड दी और वेग से बहते पानी मे डूब मरी। आज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया।

(बड़ों की आज्ञा बिना विचारे पालन करनी चाहिये।) ※

१४३ : आज्ञापालन

क्या गुरु की आज्ञा का पालन करना चाहिये ?

हाँ; सज्जन कभी गुरु की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करते—

सतामलङ्घ्या गुर्वाज्ञा ।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

साध्वियों का एक समुदाय किसी गाँव के धर्मस्थान में ठहरा था। रात को जब ठण्डी हवा के झोंके आने लगे, तब गुरुणीजी ने एक शिष्या साध्वी को फाटक खुला न रखने का आदेश दिया। फाटक बन्द किया गया, किन्तु दुबारा हवा के झोंके से खुल गया, क्योंकि फाटक में साँकल तो थी, परन्तु उसे लगाने का नकुचा नहीं था. फिर भी गुरुणीजी की आज्ञा का पालन करना जरूरी था, इसलिए वह विनीता साध्वी नकुचे के स्थान पर अपने हाथ की उंगली लगाकर रात भर खड़ी रही। गुरुणीजी को और अन्य सभी साध्वियों को आराम से नींद आ गई, परन्तु उस साध्वी का चिन्तन रात भर चलता रहा।

प्रातःकाल अरुणोदय के साथ ही उसे केवलज्ञान प्राप्त हुआ। इस प्रकार उसके लिए मोक्ष का सर्वोच्च स्थल सुरक्षित हो गया। आज्ञा पालन, विनय और सेवाभाव के फलस्वरूप शिष्या आत्मसाधना के मार्ग में अपनी गुरुणीजी से भी आगे बढ़ गई, गुरुणीजी के लिए भी वन्दनीय बन गई।

पशु की तो पनियाँ[1] बने, नर का कछू न होय।
नर नर की करणी करे, तो नारायण होय॥

---

1. पनियाँ=जूते।



१४४ : आज्ञापालन

क्या सबको बड़ों की आज्ञा का पालन बिना सोचे-विचारे ही करना चाहिए ? हाँ; कहा भी है–

वडों की वात है अविचारणीया ।
मुकुटमणितुल्य शिरसा धारणीया ॥

कोई दृष्टान्त ? सुनिये–

एक सेठजी अपनी सेठानी से बहुत तग आ चुके थे, क्योंकि वह आज्ञा का पालन बराबर नहीं करती थी। इतना ही नही वल्कि जो कुछ कहा जाता, उससे उल्टा ही काम करती थी। सेठजी ने काँटा निकालने के लिए एक उपाय किया। स्वय ही एक चिट्ठी अपने नाम लिखकर पोस्ट कर दी, जब पोस्टमैन ने चिट्ठी लाकर दी तो उसे पढकर सेठानी से उन्होंने कहा– तुम्हारी माँ बहुत बीमार है, मुँह देखने के लिए तुम्हे बुलाया है। परन्तु बरसात के दिन है– नदी मे पूर आ रहा है। इसलिए जाने का विचार मत कर लेना।

सेठानी–"ऐसा कैसे हो सकता है ? मैं तो जाऊँगी"

सेठ–"अच्छी वात है, परन्तु साथ में अपने सारे गहने भी लेती जाना, नही तो अच्छा नही रहेगा।"

सेठानी–"माँ की सेवा करने जाना है, किसी के विवाह में नही। मै तो एक भी गहना नही ले जाऊँगी।"

सेठ सेठानी को पहुँचाने गये। नदी मे पूर था, नाव थी नही। एक वैल की पूंछ पकड़ कर सेठानी नदी पार जा रही थी। नदी के ठीक वीज मे पहुँची होगी कि इधर से सेठ ने चिल्लाकर कहा–"पूंछ मजबूती से पकड़ना, नही तो पूर मे वह जाओगी।"

सेठानी बोली– "आज तक कभी तुम्हारा कहना माना भी है, जो आज मानूंगी ?" ऐसा कहकर पूंछ छोड़ दी और वेग से वहते पानी मे डूब मरी। आज्ञा गुरूणा ह्यविचारणीया।

(बडों की आज्ञा बिना विचारे पालन करनी चाहिये।) ✱

१४५ : आज्ञापालन

क्या बड़ों की आज्ञा का पालन ही धर्म है?

हाँ: कहा है– "आणाए धम्मो।"

कोई दृष्टान्त? सुनिये–

महर्षि अहमद बल्खी से किसी ने कहा– 'कोई ऐसा उपाय बताइये, जिससे मेरी गरीबी दूर हो जाय।' बल्खी बोले कि धन पाने के जितने भी उपाय तुम जानते हो, उन्हें अलग-अलग कागज के टुकड़ों पर लिखकर फिर सब टुकड़ों को एक लोटे में डालकर मेरे पास लाओ। वैसा ही किया गया। बल्खी ने अपना हाथ लोटे में डालकर एक टुकड़ा बाहर निकाला, जिस पर लिखा था– "लूटमार"! बस, महर्षि ने उसे आदेश दे दिया कि यही करो।

भक्त को इस विचित्र आदेश से आश्चर्य तो हुआ, परन्तु आज्ञा-पालन को कर्तव्य समझ कर डाकू दल में वह जा मिला। दल के नियमानुसार यहाँ भी उसे सरदार की आज्ञा का तत्काल पालन करने की प्रतिज्ञा लेनी पड़ी। धन्धा शुरू हो गया। इसी सिलसिले में एक बार कुछ व्यापारियों को पकड़ा गया। बन्दूक के डर से सबने अपना-अपना धन दे दिया, किन्तु जो सबसे अधिक श्रीमान् था, उसने कुछ नहीं दिया। इससे क्रुद्ध होकर सरदार ने नये डाकू को उसकी गर्दन उड़ाने का आदेश दिया, किन्तु नये डाकू ने सरदार की ही गर्दन उड़ा दी। उसने सोचा कि निरपराध सेठ की गर्दन उड़ाने की अपेक्षा अपराधी सरदार की ही हत्या करना अच्छा है। जब आज्ञा का पालन ही करना है तो इस सरदार की अपेक्षा ईश्वर की– अन्तरात्मा की आज्ञा का पालन ही क्यों न किया जाय?

सरदार के मरते ही अन्य डाकू भाग गये। उधर श्रीमान् ने अपने प्राणों के रक्षक नये डाकू को बहुत-सा धन भेंट कर दिया। धन लेकर भक्त महर्षि के दर्शन कर उन्हें सारी घटना का विवरण सुनाकर अपने घर लौट गया। अब उसकी गरीबी मिट गई थी।

बड़ों की बात है सोना-सरीखा।
प्रत्युत्पन्नमति [illegible]।

१४६ : आज्ञापालन

क्या विनीत शिष्य अपना लाभ समझकर ही गुरु की अथवा शास्त्रीय वचनों के अनुसार ही महापुरुषों की आज्ञा का पालन करता है ?

हाँ, उत्तराध्ययन के अनुसार विनीत सोचता है कि गुरु मुझे जो कोमल या कठोर वचन से अनुशासित करते हैं, उसमें मेरा ही लाभ है, इसलिए सावधानीपूर्वक उनकी बात सुनता है–

ज मे बुद्धाणुसासन्ति
सीएण फरुसेण वा ।
मम लाभोत्ति पेहाए
पयओ तं पडिस्सुणे ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक माली ने बगीचे में घूमने की स्वतन्त्रता दे रक्खी थी, परन्तु फूल तोड़ने का निषेध कर रखा था। एक मनुष्य ने पेटिये पर लिखी सूचनाएँ पढ ली, फिर अन्दर जाकर मन फिसल जाने से कुछ सुन्दर फूल तोडकर उसने अपनी जेब में रख लिये। जब बाहर निकलने लगा, तब दरवाजे पर ही उसकी तलाशी ली गई और फूल निकलने पर उसे योग्य दण्ड देने के लिए पुलिस के हवाले कर दिया।

संसार भी एक ऐसा ही बगीचा है, जिसमें हम घूम रहे हैं। शास्त्रो मे जो भी विधि-निषेध है। उसी के अनुसार हमें यहाँ व्यवहार करना चाहिये, अन्यथा उस आदमी की तरह आज्ञा-भंग के लिए हमें भी दण्डित होकर पछताना पड़ेगा।

दीधी पण लागी नही
रीते चूल्हे फूंक ।
गुरु बिचारा क्या करे
चेला ही में चूक ॥

✱

१४७ : आज्ञापालन

क्या हम बड़ों की आज्ञा का पालन करके ही उन्हें वश में कर सकते हैं ?

बड़ों की बात है अविचारणीया ।
मुकुटमणितुल्य शिरसा धारणीया ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

एक समय एक महात्मा बहुत थक जाने से किसी वृक्ष की छाया में लेट गये। फिर अपने एक शिष्य को बुलाकर कहा—"बेटा ! मेरी पीठ और कमर में दर्द हो रहा है, इसलिए अपने पाँवों से कुछ देर दबा दे।"

शिष्य विनीत था, किन्तु उनमें विवेक पूरा विकसित नहीं हो पाया था, इसलिए उसने कहा—"गुरुजी ! यह कैसे हो सकता है ? आप मुझे और कोई सेवा सौंपिये। मैं प्राणों की परवाह न करके पूरा करूँगा, परन्तु आप मेरे लिए पूज्य हैं, आपके शरीर को पाँव से कैसे दबा सकता हूँ। आपकी पीठ को पाँव से छूने पर मुझे पाप लगेगा।"

गुरुजी बोले—"पीठ को पाँव से छूने से तुझे पाप लगता है और मेरी जीभ पर पाँव रखने से क्या तुझे कोई पाप नहीं लगता ?"

शिष्य समझ गया और झटपट उठकर पाँवों से पीठ दबाने लगा। विनय की शुद्धि भी विवेक से ही होती है—

बलं बुद्धिश्च तेजश्च, प्रतिपत्तिः क्रिया फलम् ।
फलन्त्येतानि सर्वाणि, विचारेण धीमताम् ॥

(बल, बुद्धि, तेज, प्रतिपत्ति (ज्ञान) और क्रिया का फल—ये सब बुद्धिमानों के गुण और कार्य विचार से ही सफल होते हैं।)



१४८ : आँख

क्या आँखे सुन्दर होती है ?

हाँ; उन्हे नीलकमल के समान सुन्दर माना जाता है, यदि मुख चाँद है तो उस पर दो नीलकमल (इन्दीवर) चिपकाने पर वे आँखों जैसे लगेगे—

यदि स्यान्मण्डले लग्न-
मिन्दोरिन्दीवरद्वयम् ।
तदोपमीयते तस्या
वदनं चारुलोचनम् ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

एक सेठ जी की आँखे वृद्धावस्था के कारण बहुत मन्द हो गई। धीरे-धीरे धुँधला दृश्य दिखना भी बन्द हो गया। मित्रो के चिकित्सा-प्रस्ताव को सेठजी ने यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि मेरे परिवार के सोलह सदस्यो की बत्तीस आँखे जब मेरी रक्षा के लिए मौजूद है, तब मेरी दो आँखे न भी रही तो कोई चिन्ता की बात नही। एक दिन सेठजी के घर मे आग लग गई। सारे सदस्य भाग कर बाहर जा खडे हुए। आग की लपटें जब शरीर को जलाने लगी तब सेठजी को आँखो का महत्त्व समझ में आया, आँख है तो जहान है—

चेतोहरा युवतयः स्वजनोऽनुकूलः
सद्बान्धवा प्रणयगर्भगिरश्चभृत्याः ।
वल्गन्ति दन्तिनिवहास्तरलास्तुरङ्गा
सम्मीलने नयनयोर्नहि किञ्चिदस्ति ॥

(मनोहर स्त्रियाँ, अनुकूल कुटम्बी, अच्छे भाई, प्रेमपूर्ण बोलने वाले चाकर, हाथियों और चंचल घोड़ों के झुण्ड—ये है, किन्तु आँखे बन्द होने पर कुछ भी नही रहेगा।)

*

१४९ : आँख

क्या शरीर में सबसे अधिक मूल्य आँखों का है ?

हाँ; कहावत भी प्रसिद्ध है–

"आँख है तो जहान है ।"

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

उदयपुर के महाराणा फतहसिंहजी की एक आँख में कोई रोग हो गया। चिकित्सा करवाई। आँख पुनः पूर्ववत् हो गई। चिकित्सक पर महाराणा अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने उसे पचास हजार रुपए अपने खजाने से पुरस्कार के रूप में दिलवा दिये। इतनी विशाल राशि पुरस्कार में देने का कारण जब पूछा गया तो महाराणा ने कहा–"मानव शरीर एक हीरा है, इसका मूल्य सवा लाख रुपये आंका जाता है। इन रुपयों में से पच्चीस हजार का शरीर और एक लाख की ये दो आँखें हैं। एक आँख का मूल्य इसीलिए पचास हजार रुपये मानकर मैंने यह राशि पुरस्कार रूप में दिलवाई है। आँखें न होने पर शरीर की क्या शोभा रह जाती है ? कुछ भी तो नहीं।"

इन्दीवरं लोचनयोस्तुलायै
निर्माय यत्नेन विधिः कदाचित् ।
अतुल्यतां वीक्ष्य तयोः कराभ्यां
निक्षिप्य निक्षेप स पङ्कमध्ये ॥

(ब्रह्मा ने आँखों की तुलना में इन्दीवर (नील कमल) का निर्माण किया। (परन्तु निर्माण करने पर) समानता न देखकर घृणापूर्वक (कमल) तालाब की कीचड़ में फेंक दिया।)



१५० : इच्छा

क्या इच्छा ही उन्नति में बाधक है ?

हाँ; इसीलिए महात्मा कबीर ने कहा है—

चाह गई चिन्ता मिटी,
मनुआ बेपरवाह ।
जिसको कछु न चाहिए,
सो ही शाहन्शाह ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

एक महात्मा एक दिन अचानक बैठे-बैठे रोने लगे। भक्तों ने जब इस तरह रोने का कारण पूंछा तो उन्होने कहा—"आज गंगाजी में स्नान करने की इच्छा हुई । इसलिए आँखों से आँसू निकल पड़े ।"

भक्तगण—"गंगाजी मे नहाने की इच्छा तो एक पवित्र इच्छा है—शुभ विचार है, इसमे रोने की क्या बात हुई ?"

महात्मा—"स्वरूपरमणता की इच्छा के अतिरिक्त जितनी भी इच्छायें है, वे सब दु खदायिनी है । गंगाजी में स्नान करने की इच्छा के बाद कोई नई इच्छा उत्पन्न नही होगी ऐसा नही कहा जाता सकता। यदि मन की बात मान कर मैं शरीर को नचाना शुरू कर दूं तो इस नाच का अन्त कभी नही हो सकेगा । आत्मा उसी की प्रबल होती है, जिसमे मन को वश में रखने की सामर्थ्य हो । हम मन को नचायें, मन हमें न नचा सके यही आदर्श स्थिति होगी, इच्छा तो अपने आप में एक अपराध है ।"

आरजू[1] इक जुर्म[2] है,
जिसकी सजा है[3] जिन्दगी[4] ।
जिन्दगीभर आरजूओं
को पशेमां कीजिये



१ इच्छा, २ अपराध, ३ दण्ड, ४ जीवन ।

१५१ : इच्छा

जो आशा के गुलाम हैं, क्या वे सबके गुलाम हैं ?

हाँ; किन्तु आशा जिनकी दासी है, उनका सारा संसार दास है—

आशाया ये दासाः,
ते दासाः सर्वलोकस्य ।
आशा दासी येषाम्,
तेषां दासायते लोकः ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

एक तपस्वी के विषय में प्रसिद्ध था कि वह निस्पृह है—बहुत बड़ा त्यागी है। दो आदमियों ने उसकी परीक्षा करने का निश्चय किया। वे उसकी कुटिया में पहुँचे। तपस्वी उस समय परमात्मा के ध्यान में मग्न था। उसकी दोनों आँखें बन्द थीं।

एक आदमी दूसरे से कहने लगा— "अपन इतना स्वादिष्ट भोजन लाये हैं। परन्तु तपस्वी जी तो इस समय ध्यानमग्न हैं, किसको दें ?"

दूसरा आदमी— "हाँ, बड़ी समस्या है, यदि बाहर रखें तो कोई उठा सकता है या चूहे खा सकते हैं, क्या करें ? कहाँ रखें ?"

तपस्वी यह सब सुन रहा था। उसने आँखें तो बन्द ही रखीं, किन्तु मुँह खोलकर हाथ से संकेत कर दिया कि भोजन-सामग्री यहाँ इसमें रख दीजिए।

आदमियों ने समझ लिया कि यह तपस्वी ढोंगी है। उन्होंने चिमटी भर धूल उसके मुँह में डाल दी और चलते बने।

'सरापा[1] आरजू होने से बन्दा कर दिया हमको।
वगर्ना[2] हम खुदा थे गर दिले बेमुद्दआ[3] होते॥'

---

१. सरापा- सिर से पैर तक। २. वगर्ना- अन्यथा। ३. बेमुद्दआ- इच्छा-रहित।

१५२ : ईर्ष्या

क्या ईर्ष्या, घृणा, असन्तोष, क्रोध, शंका और परावलम्बन–इन छह दोषों वाले व्यक्ति दुःख पाते है–

ईर्ष्यी घृणी त्वसन्तुष्टः
क्रोधनो नित्यशङ्कितः।
परभाग्योपजीवी च
षडेते दुःखभागिनः॥

कोई दृष्टान्त ? सुनिये–

एक सेठजी के घर दो विद्वान आये। दोनो को अपनी-अपनी विद्वत्ता का अभिमान था। दोनों की पारस्परिक चर्चाएँ सुनकर सेठजी बहुत चकित हुए। दोनों एक दूसरे की बात का खण्डन करके अपने को श्रेष्ठ सिद्ध करने की चेष्टा कर रहे थे। उधर सेठजी के घर में रसोई तैयार हो चुकी थी। इसलिए उन्होने स्नान-ध्यान से निवृत्त होने के लिए आग्रह किया। एक विद्वान नहाने के लिए कूए पर चला गया। दूसरे ने कहा कि नहाने से क्या होता है ? मछलियाँ चौबीसो घण्टे जल मे रहती है तो क्या वे मनुष्य से बड़ी है ? जल से आत्मा की शुद्धि मानने वाला गधा है।

यह सुनकर सेठजी कूए की तरफ गये और वहाँ नहाने वाले से कहने लगे कि जो पण्डितजी घर पर बैठे है, वे कैसे विद्वान हैं ? ईर्ष्या से जल-भुनकर नहाने वाले पण्डित ने कहा– "वह तो पूरा बैल है, बैल स्वयं नही नहाता।"

सेठजी ने एक की थाली में घास और दूसरे की थाली मे भूसा परोस दिया, बोले–"आपने एक दूसरे का जो परिचय दिया था, उसी के अनुसार मैंने भोज्य परोसा है।" इससे दोनो पण्डित लज्जित होकर चले गये।

'ईर्ष्या हि विवेक परिपन्थिनी'॥

(जहाँ ईर्ष्या होती है, विवेक नही रहता।)

१५३ : ईर्ष्या

क्या ईर्ष्यालु में विवेक नही होता ?

हाँ; ईर्ष्या विवेक की विरोधिनी है–

ईर्ष्या हि विवेकपरिपन्थिनी ।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

दो मित्र थे। एक उनमें से अन्धा था और एक लँगड़ा। वे साथ ही रहते। लँगड़ा अन्धे के कन्धे पर सवार होकर मार्ग दिखाता और अन्धा लाठी के सहारे मार्ग पर चल कर लंगड़े को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचा देता। भिक्षा में मिली वस्तु का दोनों मिल-जुलकर भोग करते। राजी खुशी वे जिन्दगी के दिन काट रहे थे।

एक दिन किसी बात को लेकर वे आपस मे झगड बैठे; सहयोग टूट जाने से दोनों को जीविकोपार्जन में कठिनाई का अनुभव होने लगा। एक देव ने दयावश दोनों को स्वस्थ बनाने की इच्छा से प्रकट होकर इच्छित वर माँगने के लिए कहा–

अन्धे को आँखें और लँगड़े को टाँग माँगनी चाहिए थी; परन्तु इस से विपरीत अन्धे ने यह वर माँगा कि उस लँगड़े को अन्धा बना दो। इसी प्रकार लँगड़े ने यह वर माँगा कि उस अन्धे को लँगड़ा बना दो।

ईर्ष्यालुओं से ऐसे ही वरों के माँगने की आशा की जा सकती थी। ईर्ष्या व्यक्ति को दुष्ट बना देती है, जिसके सारे शरीर में जहर होता है।

तक्षकस्य विषं दन्ते,
मक्षिकायाश्च मस्तके ।
वृश्चिकस्य विषं पुच्छे,
सर्वाङ्गेऽपि खलस्य तत् ॥

(सांप के दांत मे, मक्खी के मस्तक मे और बिच्छू के पूंछ (डक) में जहर होता है; परन्तु दुष्ट के पूरे अंग (शरीर) में जहर होता है।) ❋

१५४ : ईर्ष्या

क्या ईर्ष्या एक दुर्गुण है ?

हाँ; वह ऐसा दुर्गुण है, जो सब गुणों के मूल स्रोत विवेक का विरोधी है–

ईर्ष्या हि विवेकपरिपन्थिनी ।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

जवास को देखकर मानव ने पूछा– "इस बरसात के मौसम में सारी सृष्टि प्रसन्न है, सभी पेड-पौधों के पत्ते हरे-भरे हो गये हैं, सब मे जवानी की मस्ती छाई हुई है– ऐसी हालत में तुम पर बुढापा क्यों सवार हो गया है ? तुम्हारे पत्ते क्यों झड़ गये ?" इस पर जवास ने कहा–"आश्चर्य है कि तू मानव होकर भी मेरे हृदय की पीड़ा को समझ नही पा रहा है। तू जिस प्रकार अपने साथियों की पदोन्नति देख नही पाता–उनको सुख-सुविधा देखकर मन ही मन जलता है, उसी प्रकार मैं भी आसपास की समस्त वनस्थली के सौन्दर्य को देखकर जलता रहता हूँ । यह जलने की बुराई मैंने तुझ से ही सीखी है– तू ही इस विषय मे मेरा गुरु है।" जवास के इस प्रवचन को सुनकर मानव मौन हो गया । वह सोचने लगा कि सुख की कुञ्जी स्वयं मेरे हाथ मे है, ईर्ष्या की आग ही सुख को जलाती है, यदि मै उस आग को बुझा दूं–यदि ईर्ष्या को अपने मन से दूर रखूं तो सुखी बन सकता हूँ ।

ईर्ष्यी घृणी त्वसन्तुष्टः
क्रोधनो नित्यशङ्कितः ।
परभाग्योपजीवी च
षडेते दुःखभागिनः ॥

(ईर्ष्यालु, घृणा करने वाला, असन्तोषी, क्रोधी, सदा शंका करने वाला और दूसरो के भाग्य पर जीवित रहने वाला– ये छहो मनुष्य दुःखी होते है।)



१५५ : ईर्ष्या

क्या दूसरों को सुखी देखकर हमें प्रसन्न होना चाहिए ?

हाँ; ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार खिले हुए सुन्दर फूलों को देखकर हम प्रसन्न होते हैं–

सुरम्यान् कुसुमान् दृष्ट्वा,
यथा सर्वः प्रसीदति ।
प्रसन्नानपरान् दृष्ट्वा,
तथा त्वं सुखमाप्नुया ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

महात्मा ईसा को शैतान मिला । वह अपने गधों पर ईर्ष्याभाव लाद कर दुनियाँ के बाजार में बेचने जा रहा था ।

महात्मा ने पूछा–"कहाँ चले जा रहे हो ?"

शैतान –"अपना माल बेचने ।"

कुछ समय बाद खाली गधों के साथ लौटते हुए शैतान को देखकर महात्मा ईसा ने पूछा–"तुम्हारा माल किस-किसने लिया ?"

शैतान बोला–"सबसे पहले मेरा माल खरीदा स्त्रियों ने । उसके बाद व्यापारियों ने और फि धर्म के ठेकेदारों ने !"

इस संवाद का आशय यही है कि इस दुनियाँ में सबसे अधिक ईर्ष्या औरतों में पाई जाती है, उनसे कम व्यापारियों में और उनसे भी कम धर्म के प्रचारकों में । ईर्ष्या भी ऐसी ठण्डी आग है, जो हृदय की प्रसन्नता को जलाकर राख कर देती है, ईर्ष्या से बचने वाले ही सदा प्रसन्न रह सकते हैं ।

हेतावीर्ष्युः फले नेर्ष्युः ।

(ईर्ष्या कारणों में रखनी चाहिए, फलों में नहीं । जिन कारणों से दूसरे लोगों ने उन्नती की है, उन कारणों को अपना कर स्वयं भी उन्नति करनी चाहिए, उन्हें सुखी देखकर जलने से क्या लाभ ?) ❋

१५६ : ईर्ष्या

क्या ईर्ष्या असाध्य बीमारी है ?

हाँ; जो व्यक्ति दूसरो के धन, रूप, वल, कुलीनता, सुख, सौभाग्य और सत्कार पर ईर्ष्या करता है, उसकी इस ईर्ष्या रूपी बीमारी का अन्त नही होता–

य ईर्ष्युः परवित्तेषु रूपे वीर्ये कुलान्वये ।
सुख सौभाग्य सत्कारे तस्य व्याधिरनन्तकः ।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक राजा ने अपने मन्त्री से एक दिन सभासदों के बीच पूछा–"मन्त्रिवर ! क्या आप बतायेंगे कि मेरी दोनों हथेलियों में बाळ क्यों नही है ?"

मन्त्री–"आप दान करते है, इसलिए बार-बार देने का कार्य होते रहने से बाल घिस गये ।"

राजा–"आपकी हथेलियो में क्यों नहीं है ?"

मन्त्री–"दान लेते-लेते बाल घिस गये ।"

राजा–"और इन सभासदों की हथेलियों के बाल कहाँ चले गये ?"

मन्त्री–"इन्हे कुछ न मिलने मे ये बैठे-बैठे मेरे सौभाग्य पर ईर्ष्यावश लगातार हाथ मलते रहे हैं । इसलिये बाल घिस गये ।"

राजा मन्त्री की हाजिरजबाबी पर प्रसन्न होकर अन्य सभासदों के साथ खिलखिला उठा । ईर्ष्या से हाथ मलने वालों को दुश्मन भले ही माफ कर दें; परन्तु स्वयं ईर्ष्या उन्हें माफ नही करती, वह उन्हें जला कर ही दम लेती है ।

सव्वत्थं विणीयमच्छरे ।
(सब जगह मात्सर्य (ईर्ष्या) भाव का त्याग करना चाहिए ।)



१५७ : ईर्ष्या

क्या ईर्ष्या कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य दोनों है ?

हाँ; ज्ञानी कहते है कि परिश्रम आदि कारणों पर ईर्ष्या करनी चाहिये, धन-सुख आदि फलो पर नही–

हेतावीर्स्युः फले नेर्स्युः।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

दो भाई थे। छोटे भाई को एक पुत्र हुआ और एक पुत्री। बड़े भाई को सन्तान कुछ न थी। छोटे भाई की सन्तान उसकी आँखो मे खटकती थी। एक दिन किसी वहाने से लड़-झगड़ कर उसने छोटे भाई के परिवार को अलग कर दिया। पास के शहर में व्यापार करने के लिए छोटा भाई जाता और शाम को जो कमाकर लाता, उससे दूसरे दिन सब लोग पेट भरते। एक दिन घर मे खाने के लिए कुछ नही था। छोटा भाई कमाने के लिए शहर गया। इधर बच्चे भूख से रोने लगे। छोटी बहू अपनी सासू से चार रोटी का आटा माँग लाई। वह रोटी बना ही रही थी कि उधर बडे भाई को इस घटना का पता लग गया। वह छोटे भाई के घर में घुसकर बच्चो के हाथ से रोटियाँ छीन कर कुत्तों को डाल आया। दुखिया माँ दोनो बच्चो को लेकर कुए पर गई। छोटी बच्ची को छाती से चिपटाकर वह बड़े बच्चे से यह कहती हुई उसमें कूद पड़ी कि मैं अभी रोटी लाती हूँ। भोला बच्चा प्रतीक्षा मे बैठा ही था कि उसके पिता शहर से लौटे। बच्चे ने बताया कि माँ रोटी लेने कुए में गई है। बाप सब कुछ समझ गया। उसने बच्चे को उठाकर कहा कि चलो हम दोनों भी माँ के पास चले और फिर कूए में सदा के लिए कूद गया।

ईर्ष्या हि विवेकपरिपन्थिनी।

(ईर्ष्या विवेक की विरोधिनी है।)

क्या ईश्वर और अहंकार एक साथ नही रहते ?

हाँ; यदि मान रहता है तो प्रियतम (ईश्वर) नही रहते और प्रियतम रहते है तो अभिमान नही रह रह सकता। दो हाथी एक खम्भे से नही बाँधे जा सकते—

जइ माणो कीस पीयो ?
अहव पिओ कीस कीरए माणो ?
माणिणि ! दोवि गयंदा
एक्के खम्भे व वज्जन्ति ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

किसी भक्त से पूछा गया कि क्या आपको कभी ईश्वर के दर्शन हुए है ?

भक्त ने कहा— "जब अहकार निर्मूल हो जाता है, तब मुझे अपने अन्तस्तल मे ही परमात्मा के दर्शन होते है। फूलो मे सुगन्ध की तरह उसका निवास मन में होता है। कस्तूरी-मृग की नाभि से जो मनोमोहक महक आती है, उससे आकर्षित होकर हिरण उसे दूर-दूर तक घास मे उछल-कूदकर ढूंढने का प्रयास करता है; परन्तु उसे सफलता नही मिलती; क्योकि उसे सुगन्ध के स्थान का ज्ञान नही होता। इसी प्रकार जिन लोगो को आत्मज्ञान नही होता— जो नहीं जानते कि आत्मा ही परमात्मा है, वे उसे ढूंढने के लिए ससार के तथाकथित तीर्थो मे—पवित्र स्थानो मे भटका करते हैं।"

तेरा साईं तुज्झ में,
ज्यों पुहुपन मे बास।
कस्तूरी का मिरग ज्यों,
फिर-फिर ढूंढ़ने घास ॥

१५६ : उत्साह

क्या हमें उत्साहपूर्वक कार्य करते रहना चाहिए ?

हाँ; बुद्धिमान् वही है, जो समय का शीघ्र सदुपयोग करें। कोई नही जानता कि किसका कल क्या होगा; इसलिए जो काम कल करने हों, उन्हें आज ही कर डालना चाहिए–

न कश्चिदपि जानाति,
किं कस्य श्वो भविष्यति।
अतः श्वः करणीयानि,
कुर्यादद्यैऽव बुद्धिमान् ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

महाराज रणजीतसिंह अपनी सेना के साथ अटक नदी के तट पर पहुँचे। दूसरे तट पर शत्रु की सेना का पड़ाव था। नदी के चौड़े पाट को देखते हुए शत्रु सेना निश्चिन्त थी कि नदी को पार करके आक्रमण करने का साहस कोई कर नहीं सकेगा।

उधर महाराज रणजीतसिंह के सेनापति भी विचार-मग्न थे कि नदी पार करने के लिए एक भी नौका नही है– क्या करें ? महाराज रणजीतसिह ने सारी परिस्थिति पर विचार करके तत्काल एक दोहा बनाकर सुनाया। उसे सुनते ही सेनापतियों और सैनिकों में प्रचण्ड उत्साह भर गया। सबके सब नदी में कूद पड़े और तैर कर उस पार पहुँचे। शत्रु-सैनिक यह सब दूर से देखकर ही भाग खड़े हुए। महाराज रणजीतसिंह ने जो दोहा सुनाया, वह यों था–

जाके मन में अटक है
सो ही अटक रहा।
जाके मन में अटक ना,
वाकी अटक कहाँ ?



१६० : उदारता

क्या उदार व्यक्ति सारी पृथ्वी को अपना कुटुम्व मानता है ? हाँ; कहते है–

उदारचरिताना तु, वसुधैव कुटुम्बकम् ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

व्यापार के लिए जहाज माल से लादकर दोब्रीवे जा रहा था, रास्ते मे गुलामो से लदे जहाज से उसने अपना जहाज वदल लिया, फिर सभी गुलामो को अपने-अपने घर भेज दिया। सिर्फ एक कन्या और उसकी दासी रह गई। कन्या रूस के सम्राट की पुत्री थी और अपने घर लौटना नही चाहती थी, उसने दोब्रीवे से विवाह कर लिया। घर लौटा, पिताजी नाराज हुए, दूसरी बार भी माल मे लदा जहाज वेचकर टैक्स न चुका सकने के अपराध में वन्दी वनाये गये लोगो का सारा टैक्स चुकाकर उन्हे वन्धनमुक्त कर दिया। पिताजी फिर नाराज हुए, तीसरी वार कडी चेतावनी देकर उसे भेजा गया। उधर रूस का वादशाह अपनी पुत्री को ढूंढता हुआ एक वन्दरगाह पर आया। पुत्री की अँगूठी दोब्रीवे की उंगली मे देखकर उससे सारा वृत्तान्त सुना और फिर उससे कहा कि मै तो रूस जा रहा हूं, मेरा मन्त्री आपके साथ रहेगा। आप अपने पूरे परिवार को लेकर रूस में आ जाइये। मन्त्री के साथ परिवार चला, रास्ते मे मन्त्री ने दोब्रीवे को समुद्र मे ढकेल दिया। आधी सम्पत्ति देने की शर्त पर एक मछुए ने उसे रूस मे पहुँचा दिया। दोब्रीवे ने मन्त्री को क्षमा कर दिया। उसे पूरा राज्य सौंपा गया तो वचन के अनुसार उसने मछुए को आधा राज्य दे दिया, मछुए ने नही लिया।

परोपकारजं पुण्यं न स्यात्क्रतुशतैरपि।

(सैकडों यज्ञो से भी उतना पुण्य नही होता, जितना परोपकार से होता है।)

✲

१६१ : उदारता

क्या उदारता घर से शुरू होती है ?

हाँ; परन्तु वहीं समाप्त नहीं होती–

Charity begins at home, but should not end there.

(चैरिटी बिगिन्स एट होम, बट शुड नॉट एण्ड देअर)

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक आदमी को दो पुत्र थे, मरने से पहले उसने दोनों को अपनी सम्पत्ति बराबर दो हिस्से करके बाँट दी थी, एक पुत्र का स्वभाव उदार था, वह स्वयं भी अच्छा भोजन करता और अपने आश्रितों को भी वैसा ही कराता। प्रेमपूर्वक सबसे बोलता और कोमल सूचनाओ द्वारा उनसे काम लेता, समय पर सबको वेतन देता, कर्मचारी भी मन लगाकर काम करते थे इससे ठीक विपरीत दूसरा पुत्र कजूस था. कठोर वाणी में सबसे काम लेता, स्वय बढ़िया खाता और आश्रितों को रूखा-सूखा साधारण भोजन खिलाता।

एक दिन गाँव में डाका पड़ा, दोनों भाइयों के घर भी डाकू आये। परन्तु जहाँ उदार भाई की सम्पत्ति बचानें के लिए कर्मचारी और पड़ौसी दौडे आये, वैसे कजूस भाई को वचाने कोई नही आया, उदार का धन वच गया और कजूस का लुट गया। व्यग्य में एक कवि ने कंजूस की दानवीरता का वर्णन इस प्रकार किया है–

कृपणेन समो दाता, न भूतो न भविष्यति ।
अस्पृशन्नेव वित्तानि, यः परेभ्यः प्रयच्छति ॥

(कंजूस के समान दाता न हुआ है और न होगा ही, जो विना छुए ही अपनी धन-दौलत दूसरो को दे देता है।)



१६२ : उदारता

क्या लेने वाले से देने वाला श्रेष्ठ होता है ?

हाँ; बादल जल लेते समय काले से काला होता जाता है; परन्तु देते समय वह उज्ज्वल से उज्ज्वलतर होता है, यही देते हुओं से लेते हुओं में अन्तर को स्पष्ट करता है–

किसिणिज्जन्ति लयन्ता,
उदहिजलं जलहरा पयत्तेणं ।
धवलीहुन्ति हु देन्ता,
देन्त लयनन्तरं पेच्छ ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

महाकवि माघ की पत्नी का नाम लक्ष्मी था, जो विष्णुपत्नी लक्ष्मी के समान थी–

तस्याभूद् गेहिनी लक्ष्मी–लक्ष्मीर्लक्ष्मीपतेरिव ॥

एक दिन राजा भोज के यहाँ महाकवि माघ का एक श्लोक लेकर वह पहुँची तो उससे प्रभावित राजा ने उसे एक लाख स्वर्णमुद्रायें दे दी। उन्हे लेकर वह अपने पति के समीप आ रही थी कि महाकवि माघ की उदारता की प्रशंसा करते हुए सैकड़ों याचक उसे स्थान-स्थान पर मार्ग मे मिलते रहे। लक्ष्मी भी उदारतापूर्वक उन्हें दान करती रही, जब वह घर पहुँची तो एक भी स्वर्णमुद्रा उसके पास नही बची, माघ ने यह वृत्तान्त सुना तो प्रसन्न होकर कहा–"तुम वास्तव मे मेरी शरीरधारिणी कीर्ति हो !"

कुछ समय बाद एक याचक को जब वे कुछ नही दे सके तो यह उद्‌गार प्रकट करते हुए प्राण त्याग दिए–

व्रजत-व्रजत प्राणा अर्थिनि व्यर्थतां गते ।
पश्चादपि हि गन्तव्यं क्व सार्थः पुनरीदृशः ?

(हे प्राणो ! याचक के व्यर्थ जाने पर तुम भी चले जाओ, जाना तो बाद मे भी पड़ेगा ही; परन्तु ऐसा साथ फिर कहाँ मिलेगा?) ❋

१६३ : उदारता

क्या परोपकार ही स्वार्थ का सर्वोत्तम उपाय है ?

हाँ; लाभ का ठीक उपाय दान है– The best way to do good to ourselves, is to do it to others, the right way to gather is to scatter. (दी बेस्ट वे टु डू गुड टु अवरसेल्व्ज इज टु डू इट टु अदर्स, दि राइट वे टु गेदर इज टु स्केटर।)

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

विद्रोही डेन्मार्क निवासियों ने प्रचण्ड युद्ध मे आल्फ्रेड की सेना को बुरी तरह परास्त कर दिया था। आल्फ्रेड एक दुर्ग में इने-गिने सैनिको के साथ जा छिपा। भोजन सामग्री समाप्त हो गई। स्वयं आल्फ्रेड को भी कई दिनों तक भूखा रहना पड़ा। ऐसी स्थिति मे तीन दिन से भूखा एक सैनिक समीप आकर कुछ खाने को माँगने लगा। आल्फ्रेड ने अपनी रानी की ओर देखा। कई दिनो बाद उसी दिन कही से उसे एक रोटी प्राप्त हुई थी। रोटी के दो टुकड़े करके रखे गये थे। आल्फ्रेड के लिए उनमें से एक टुकड़ा था। उसने रानी से कहा कि अन्य सैनिक भोजन-सामग्री जुटाने के प्रयास मे गये है। वे अवश्य कुछ लायेंगे। तब तक मेरे हिस्से का टुकड़ा इसे दे दो। रानी भी उपकार मे पीछे रहने वाली नही थी। उसने अपना टुकड़ा भी उसमे मिलाकर पूरी रोटी उसे दे दी। कुछ समय बाद ही गए हुए सैनिक काफी भोजन-सामग्री अपने साथ लेकर लौटे। सबने भरपेट भोजन किया। राजा-रानी की उदारता सफल हो गई।

नत्थि चित्ते पसन्नम्हि
अप्पका नाम दक्खिणा ॥

(प्रसन्नचित्त से किया गया कोई भी दान अल्प (कम) नही होता।)



१६४ : उदारता

क्या कंजूस त्यागी होता है ?

हाँ; एक कवि के शब्दों में कजूस उदार व्यक्ति से भी अधिक त्यागी होता है, क्योंकि उदार व्यक्ति पहले धन देता है, फिर प्राण, परन्तु कंजूस पहले प्राण देता है, फिर धन—

उदारचरितस्त्यागी,
याचितः कृपणोऽधिकः ।
एको धन तत प्राणान्,
अन्यः प्राणास्ततो धनम् ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

प्यासा चातक पानी की आशा मे बार-बार बादलों को देखता, उनसे जल की याचना करता, अपनी व्यथा सुनाता और गिडगिडाता, परन्तु एक-एक करके बादल गर्जना करते हुए विना जल बरसाय ही आगे बढ़ जाते। यह तमाशा देखकर एक मनुष्य के मन मे चातक के प्रति सहानुभूति पैदा हो गई। उसने चातक से कहा—

रे रे चातक ! सावधानमनसा,
मित्र ! क्षणं श्रूयताम्
अम्भो वहवो वसन्ति गगने
सर्वेऽपि नैत्रादृशा ।
केचिद् वृष्टिभिरार्द्रयन्ति धरणीं
गर्जन्ति केचिद् वृथा
य य पश्यसि तस्य तस्य पुरतो
मा ब्रूहि दीन वचः ॥

(हे मित्र चातक ! सावधान मन से क्षण-भर सुनो। आकाश में बहुतसे बादल रहते है। सब ऐसे नही है। कुछ तो बरसातो के द्वारा धरती को गीला कर देते हैं और कुछ व्यर्थ ही गर्जना करते है, इसलिए तू जिस-जिस बादल को देखता है, उस-उसके सामने दीन वचन (करुणा प्रार्थना के शब्द) मत कह।)



१६५ : उदारता

क्या अपनी भलाई का सर्वोत्तम उपाय दूसरों की भलाई है ?

हाँ; लाभ का सच्चा उपाय दान है—

The best way to do good to ourselves, is to do it to others, the right way to gather is to scatter.

(दि बेस्ट वे टु डू गुड टु अवरसेल्व्ज, इज टु डू इट टु अदर्स, दि राइट वे टु गेदर इज टु स्केटर ।)

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

एक सेठ उदार था। वह अपने नौकर-चाकर को भी वैसा ही भोजन कराता, जैसा स्वयं करता। एक दिन कोई अनुदार सेठ उसके घर आमन्त्रित होकर जीमने आया। उसने सबको समान भोजन करते देखकर एकान्त में अपने मित्र को सलाह दी कि इन लोगों के लिए साधारण भोजन बनाना चाहिए। इससे बहुत-सी फिजूलखर्ची बचेगी। मित्र सेठ के विदा होने पर इस सेठ ने साधारण भोजन से नौकरों को निपटाना शुरू कर दिया। एक दिन सेठ ने कोई बात समझाने के लिए प्रत्येक का नाम लेकर पुकारा तो उत्तर में किसी ने "कुकड़ूँकूँ" कहा, किसी ने "म्याऊँ" और किसी ने "भौं-भौं"। सेठ ने कहा— "तुम सब ढोर कब से बन गए ? नौकरों ने उत्तर दिया "जब से ढोरों का अन्न खाने लगे, तब से !" सेठ समझ गया और उसी दिन से उसने अपना व्यवहार पुनः सुधार लिया।

उदारचरितानां तु, वसुधैव कुटुम्बकम् ॥

(उदार चरित्रवालों के लिए सारी पृथ्वी ही कुटुम्ब है।)



१६६ : उद्यम

क्या कार्य उद्यम से ही सिद्ध होते हैं, मनोरथों से नही ?

हाँ; सोते हुए सिंह के मुंह में पशु प्रविष्ट नही हो जाते–

उद्यमेन हि सिद्ध्यन्ति,
कार्याणि न मनोरथैः ।
न हि सुप्तस्य सिंहस्य,
प्रविशन्ति मुखे मृगाः ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

प्रवचन में यह कहा गया था कि सबको श्रम की रोटी खानी चाहिए। इस पर एक राजा ने पूछा कि श्रम की रोटी कैसी होती है ? प्रवक्ता ने कहा कि इसी नगर के अमुक मुहल्ले में चरखा कातने वाली एक बुढ़िया रहती है। उससे आप श्रम की रोटी माँगिये तो आपको अपने प्रश्न का उत्तर मिल जायगा।

राजा ने वैसा ही किया। श्रम की एक रोटी माँगने पर बुढ़िया ने कहा कि मेरे पास एक ही रोटी हैं, किन्तु उसमें से आधी श्रम की है, आधी बिना श्रम की, क्योंकि एक दिन चरखा कातते हुए सूरज डूब गया। अँधेरा चारों ओर छा गया, इतने में दूर से एक जुलूस आता दिखाई दिया, जिसमे अनेक मशाले जल रही थी। जुलूस धीरे-धीरे गुजरता रहा और उसके प्रकाश में चरखा कातती रही। मुझे दीपक नही जलाना पड़ा। तेल बचा, इस अवधि मे काते सुत को बेचने पर यह रोटी बनी है, इसलिए आधी रोटी मेरे श्रम की है, आधी जुलूस की। श्रम किये बिना कुछ भी नहीं मिलता।

बिना डुलाये ना मिले, ज्यों पंखा की पौन[1]

✱

[1] पौन=हवा

१६७ : उद्यम

क्या उद्यमशील व्यक्ति के पास ही लक्ष्मी आती है ?

हाँ; कहा है–

उद्योगिन पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी: ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक ज्योतिषी को कुण्डली देखने पर पता चला कि उसका पुत्र बीस वर्ष की अवस्था में चोरी करते हुए पकड़ा जायगा। ज्योतिषी ने पुरुषार्थ का महत्त्व समझ रखा था। वह जानता था कि पुरुषार्थ से भाग्य को बदला जा सकता है, अतः उसने पुत्र को धर्मशास्त्र का अध्यापन करके उसमें पारंगत कर दिया। धीरे-धीरे वह बीस वर्ष का हो गया। रात को एक बार नगर में घूम रहा था कि सहसा कुछ चोरों ने उसके सामने चोरी करने के लिए चलने का प्रस्ताव रखा। वह तैयार होकर उनके साथ चल पड़ा। सब मिलकर राजमहल मे गये। वहाँ हीरे, माणिक, मोती आदि सबने उठाए और चल पड़े, परन्तु ज्योतिषी महाराज के पुत्र को प्रत्येक वस्तु में कुछ-न-कुछ दोष दिखाई दिया। वह धर्मशास्त्र के अनुसार विचार करता रहा कि ऐसी वस्तु चुराई जाय, जो हिंसाजन्य न हो– निर्दोष हो। अन्त मे अपनी चादर फैलाकर उसने घास बाँध ली और उसे उठाकर चला। आरक्षकों ने उसे पकड़ कर राजा के सामने उपस्थित किया। ज्योतिषी जी भी राजा के पास ही बैठे थे। उन्होंने अपने पुत्र के प्रति संकेत करके कहा कि इसने कौन-सी वस्तु चुराई है, देखना चाहिए। देखा गया तो घास निकली। सब हँस पड़े और उसे घास ले जाने दिया गया। राजा को ज्योतिषी ने बताया कि मैंने अपने पुरुषार्थ से भाग्य को बदल दिया है–परास्त कर दिया है।

उद्यमेन हि सिद्ध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः ॥

(कार्य उद्यम से ही सिद्ध होते हैं, मनोरथों से नहीं।)



१६८ : उद्यम

क्या विद्या के लिए उद्यम आवश्यक है ?

हाँ; कहा है–

विद्या धन उद्यम बिना,
कहो जु पावै कौन ?
बिना डुलाये न मिलै,
ज्यों पंखा को पौन ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

काशी की एक पाठशाला में एक विद्यार्थी बहुत कुशल था। घर पर करने के लिए जो काम दिया जाता, बराबर कर लाता। जो पाठ याद करने को दिया जाता, उसे उसी दिन याद कर लेता था। कारण पूछने पर साथी छात्रों से उसने कहा–"मैं प्रात काल सरम्वती का स्तोत्र बोलकर उसके चित्र को पुष्प चढाता हूँ और फिर मन लगा कर अपना पाठ पढता हूँ। इससे सरस्वती मेरी सहायता करती है।" दूसरे छात्रों ने भी इसी प्रकार प्रात· सरस्वती देवी की स्तुति कर पुष्प चढाना शुरु कर दिया, किन्तु उन्हें सफलता नही मिली, क्योकि वे पूजा के बाद पाठ पढ़ने नही बैठते थे। चाहते थे कि बिना पढे ही पाठ याद हो जाय, किन्तु ऐसा नही हो सकता। उस कुशल छात्र ने बताया कि जो स्वय पुरुषार्थ करते हैं, देव उसी को सहायता करते हैं। फिर सभी छात्र मन लगाकर पढने लगे।

उद्यम साहस धैर्यम्,
बुद्धि. शक्ति. पराक्रमः ।
षडेते यत्र वर्त्तन्ते,
तत्र देवः सहायकृत् ॥

(उद्यम, साहस, धैर्य, बुद्धि, शक्ति और पराक्रम–ये छह जहाँ होते हैं, वही ईश्वर सहायता करता है।)

१६६ : उद्यम

क्या भाग्य भी पुरुषार्थ से ही फलता है ?

हाँ; जिस प्रकार एक चक्र से रथ की गति नहीं होती (दोनों चक्र उसमें आवश्यक है) उसी प्रकार विना पुरुषार्थ के भाग्य सिद्ध नहीं होता—

यथा ह्येकेन चक्रेण,
न रथस्य गतिर्भवेत ।
तथा पुरुषकारेण,
विना दैवं न सिद्ध्यति ।।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

धीराजी नामक एक बुनकर था। वह चाहता था कि विना परिश्रम के धन प्राप्त हो जाय। लोभी जहाँ होते है, वहाँ धूर्त भूखो नही मरते। कोई उसे मन्त्र साधने के लिए कहता, कोई भूतो को वश मे करने की विधि बताता, कोई यज्ञ कराता, कोई तावीज गले में या भुजा मे बँधवाता, परन्तु किसी से उसे धन की प्राप्ति नही हुई, वल्कि इनके चक्कर मे गाँठ का भी गया और धन्धे के लिए पूरा समय न मिलने से कमाई मे भी कमी हो गई।

कुछ समय वाद एक विवेकी साधु का उसके गाँव मे आगमन हुआ। धीरा भक्त ने सेवा से उन्हे प्रसन्न करके उनसे धन प्राप्ति का उपाय पूछा—साधु ने पिछले प्रयासो के विषय मे भी जान लिया कि किस प्रकार धूर्तों ने विविध व्यर्थ उपाय वताकर उससे अपना उल्लू सीधा किया है। साधु ने वताया कि तुम्हारी बुनाई का जो औजार है, वह बुनते समय जितनी वार आये और जाये, उतनी वार राम-राम लेना। जब औजार घिस जायगा, तव तुम्हे धन की प्राप्ति होगी, हो भी गई।

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी ।।

(उद्योगी पुरुषसिंह के पास लक्ष्मी आती है।)

※

१७० : उद्यम

क्या पुरुषार्थ से भाग्य की शक्ती बढ़ जाती है?

हाँ; ठीक वैसे ही जैसे साधारण-सी आग भी हवा का सहारा पाकर प्रचण्ड हो जाती है–

यथाग्नि पवनोद्भूतः, सुसूक्ष्मोऽपि महान् भवेत्।
तथा कर्मसमायुक्तम्, दैवं साधु विवर्धते॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

पुरुषार्थवादी पुत्रवधू ने भाग्यवादी ससुर से कहा कि हाथ पर हाथ धर कर बैठे रहने से भाग्य भी क्षीण होने लगता है। बिना प्रयत्न के न भाग्य का लाभ उठाया जा सकता है और न उसे परखा ही जा सकता है। व्यापार के लिए यदि आपके पास पूँजी नहीं है तो भी मेरा निवेदन है कि आप खाली हाथ घर न लौटने का नियम बना लें। यदि और कुछ न मिले तो मुट्ठी भर रेत या धूल ही उठा लाइयेगा।

ससुर ने बात स्वीकार करके उसे अमल में लाना शुरू कर दिया। एक दिन बाहर से लौटते समय उसे सड़क की एक ओर कोई मरा हुआ साँप दिखाई दिया, ससुर उसे भी उठा लाया। बहू ने घर में उसका कोई उपयोग न देखकर उसे छत पर फेंक दिया। एक चील ने उसे देखा। उसके मुँह में रत्नोंका हार था। चील ने उस रत्नहार को वहीं पटक दिया और साँप को चोंच से पकड़ कर वह आकाश में उड़ गई। बहू ने ससुर को रत्नहार दिखाकर कहा कि उद्यम से भाग्य यों प्रकट होता है। विद्या भी बिना उद्यम के प्राप्त नहीं होती–

विद्या धन उद्यम बिना, कहौ जु पावै कौन?
बिना डुलाये ना मिलै, ज्यों पखा की पौन[1]॥

---

१ पौन=पवन

१७१ : उद्यम

क्या विना उद्यम के कुछ भी प्राप्त नहीं होता ?

हाँ; भाग्य के भरोसे रहकर कभी अपना उद्यम नहीं छोड देना चाहिए। विना उद्यम किये तिलों में से तेल कौन पा सकता है ? कोई नहीं—

न दैवमिति संचिन्त्य,
त्यजेदुद्योगमात्मनः ।
अनुद्यमेन कस्तैलम्,
तिलेभ्यः प्राप्तुमर्हति ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

एक किसान के चारों जवान बेटे बड़े आलसी थे। वे सोचते थे कि जब तक पिताजी जीवित हैं, तब तक कमाई की चिन्ता हमें करने की जरूरत ही नहीं और उनकी मृत्यु के बाद भी गड़ा धन हमे भोगने के लिए मिल ही जायगा, इसलिए कोई काम करने और सीखने की क्या जरूरत ? किसान उनकी ऐसी मनोवृति से परिचित था और उससे दुःखी भी। अन्त में वृद्धावस्था के कारण जब वह बीमार पडा और उसे जीने की आशा न रही तब गड़े हुए धन से उसने एक खेत खरीद कर पुत्रों से कहा कि मैंने अपने नये खेत में धन गाड रखा है। उसे खोद कर निकाल लेना। किसान चल बसा। फिर चारों ने खेत खोद डाला। धन तो कुछ नही निकला, परन्तु उस मेहनत से खेत तैयार जरूर हो गया। उसमें उन्होने बीज बो दिए। बरसात ने उसमें सिचाई कर दी। बढ़िया फसल आई। काटी, बेची और प्राप्त धन के चार भाग करके सबने अपनी-अपनी आजीविका का प्रबन्ध कर लिया। उनका आलस्य दूर हो गया।

विना डुलाये ना मिले,
ज्यों पंखा की पौन ॥



१७२ : उपदेश

क्या उपदेश में भी विवेक आवश्यक है ?

हाँ? भूखे आदमी को रोटी की जरूरत होती है, उपदेश की नहीं, अन्यथा वह भगवान से कहेगा–

भूखे भजन न होइ गुपाला ।
ये लेहु कण्ठी ये लेहु माला ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक लड़का तालाब में तैरने के लिए कूद पड़ा। खूब तैरा। आखिर थक जाने से वह डूबने लगा। तालाब के घाट पर उसका शिक्षक कपड़े धो रहा था। लड़के को उसने उपदेश झाड़ना शुरू कर दिया–"अरे तू बड़ों की आज्ञा का पालन नहीं करता। उसी का यह फल है कि तुझे आज इस मुसीबत में फँसना पड़ा। बोल अब बराबर बड़ों का कहना मानेगा कि नहीं ?" शिक्षक ऐसा कह ही रहा था कि किसी मच्छी-मार ने तैरते हुए उसके पास पहुँच कर उसे किनारे ला बिठाया। मछुए ने शिक्षक को फटकारा– "आपको यह भी भान नहीं कि उपदेश किस समय दिया जाना चाहिए और बन गये शिक्षक ! धूल पड़े तुम्हारी शिक्षा पर।" बालक के माँ-बाप ने मछुए का उपकार माना और सौ रुपयों का पुरस्कार दिया उसे।

धर्मशास्त्र, भक्ति, भजन, उपदेश आदि का प्रभाव तभी पड़ता है, जब व्यक्ति संकट में न हो या उसे असह्य संकट न हो ! कहा है–

ना कुछ देखा भाव भजन मे
न कुछ देखा पोथी मे ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो !
जो देखा सो रोटी में ।

१७३ : उपदेश

क्या उपदेश सुपात्र को ही देना चाहिए ?

हाँ; मूर्खों को उपदेश दिया जाय तो उससे उनका क्रोध और भी भड़क उठता है, शान्त नही होता। साँपों को दूध पिलाने से उनका केवल जहर बढता है—

उपदेशो हि मूर्खाणाम्
प्रकोपाय न शान्तये ।
पयःपानं भुजङ्गानाम्
केवल विषवर्धनम् ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

एक वन्दर को वर्षा में भीगता देखकर वृक्ष पर अपने घोंसले मे सुरक्षित रूप से बैठा बया नामक पक्षी बोल उठा—

हाथ तेरे पाँव तेरे मिनख जैसी देह रे ।
घर क्यों नही छावे वन्दर ! ऊपर बरसे मेह रे॥

यह सुनकर बन्दर को गुस्सा आ गया। पेड़ पर चढ़कर उसने बया का घोसला तोड़ फेंका। बोला—

सूचीमुखी ! दुराचारे ! रंडे ! पण्डितवादिनी !
गृहारम्भेऽसमर्थोऽहम् समर्थो गृहभंजने ॥

(हे सुई जैसे मुंह वाली, दुराचारिणी, समझदार की तरह बोलने वाली राँड ! मैं घर बनाने में समर्थ नही हूँ— केवल घर तोड़ने में समर्थ हूँ।)

मूर्ख को उपदेश देने का ऐसा ही फल होता है। कहा है—

सीख उणां को दीजिए,
ज्याँरे हिये सुहाय ।
सीख सुणे नहि बाँदरा,
नीड़[1] बया को जाय ॥



---

१ नीड़=घोसला।

क्या कथनी के अनुसार ही करनी होनी चाहिये ।

हाँ, जिन लोगों की कथनी-करनी में भेद होता है, भगवान के दरबार में उनका मुँह काला हो जायगा । ऐसा कहा गया है—

कहते सो करते नहीं, मुँह के बड़े लबार ।
काला मुँह हो जायगा, साहिब के दरबार ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

एक पुजारी के पास सुइयों का ढेर था, एक दिन महात्मा ईसा की माता उसके पास गई और बोली— "महाराज ! मेरे बच्चे की नेकर फट गई है, कृपा करके एक सुई मुझे दे दें, इसकी सिलाई होते ही सुई आपको मैं लौटा दूंगी ।"

पुजारी ने उसे सुई नहीं दी; परन्तु मन्दिर में प्रवेश करने से पहले उसने दान के महत्त्व पर एक शानदार प्रवचन अवश्य दे दिया । ऐसे ही लोगों के लिए कहा जाता है कि वे गरजते है, बरसते नही । एक अन्योक्ति के रूप में किसी संस्कृत कवि ने कहा है—

रे रे चातक ! सावधानमनसा
मित्र ! क्षणं श्रूयता—
मम्भोदा बहवो वसन्ति गगने
सर्वेऽपि नैतादृशाः ।
केचिद्वृष्टिभिरार्द्रयन्ति धरणी
गर्जन्ति केचिद्वृथा
यं यं पश्यसि तस्य तस्य पुरतो
मा ब्रूहि दीनं वचः ॥

(हे मित्र चातक! सावधान मन से क्षणभर सुनो, आकाश में मेघ बहुत रहते हैं ।परन्तु सभी ऐसे नही हैं, कुछ तो वृष्टियों के द्वारा धरती गीली कर देते हैं कुछ व्यर्थ ही गरजते रहते है । इसलिए तू जिसे-जिसे देखता है, उस-उस (सब) के सामने दीन वचन मत बोल ।)

१७५ : उपदेश

क्या दूसरों को उपदेश देना सरल है ?

हाँ कहा है–

परोपदेशे पाण्डित्यम्
सर्वेषां सुकर नृणाम् ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक दिन भरी सभा में महातपस्वी मनसूर इम्मार का प्रवचन हो रहा था कि बीच ही में एक विरोधी आदमी ने उन्हें अपमानित करने के लिए कागज के एक टुकड़े पर कुछ लिखकर महर्षि को दे दिया। उसमें अरबी भाषा का एक पद्य लिखा हुआ था, जिसका आशय यह था–"स्वयं आचरण में उतारे विना केवल दूसरों को ज्ञान का उपदेश देना ठीक वैसा ही है, जैसे कोई महारोगी दूसरों के रोगों का इलाज करने की चेष्टा करे।"

महर्षि यदि ऐसा कहते है कि मेरा आचरण मेरे उपदेश के अनुसार ही है तो इससे अभिमान प्रकट होता और यदि स्वीकार करते हैं कि मेरा आचरण पवित्र नहीं है तो उस पद्य के अनुसार वे उपदेश के अधिकारी नही रहते। विरोधी द्वारा चली गई इस चाल को समझ कर महर्षि ने पहले तो वह पद्य सभा में सबको पढ़कर सुनाया और फिर प्रवचन जारी रखते हुए बोले–"प्रिय सज्जनों ! यदि मेरे उपदेश के अनुसार तुम चलोगे तो इससे तुम्हें लाभ ही होगा। मेरे जीवन में वैसा आचरण हो या न हो– उससे तुम्हे निश्चय ही कोई नुकसान नहीं हो सकता।"

सभा प्रभावित हुई। विरोधी की चाल व्यर्थ गई। धर्मोपदेशकों के जीवन में ऐसे कई प्रसंग आते है, जहाँ उन्हें वहुत धैर्य और बुद्धिमत्ता से काम लेना पड़ता है।

पर उपदेश कुशल वहुतेरे।
जो आचरहि ते नर न घनेरे ॥



१७६ : उपदेश

क्या नीच व्यक्ति की भी उत्तम वात को ग्रहण करना चाहिए ?

हाँ; अपवित्र स्थान मे भी सोना पड़ा हो तो उसे कोई छोडना क्यो चाहेगा ?

परौ अपावन ठौर में
कचन तजै न कोय ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

कुछ नर्तकियाँ अपनी संगीतकला और नृत्यकला का प्रदर्शन करने के लिए कही जा रही थीं। उनमें से कोई किसी से कह रही थी– "विणा के तार अधिक कसे हुए हों तो उनके टूटने का डर रहता है और यदि वे ढीले हों तो उनसे अच्छी ध्वनि नहीं निकलती, उत्तम ध्वनि के लिए आवश्यक है कि तार न अधिक कसे हो और न ढीले ही।"

एक शाक्य नामक मुनि ने यह वात सुनी और उनके हृदय मे इस प्रकार विचार उठे– "यह नारी ठीक ही तो कह रही है– हमारा जीवन भी वीणा की तरह ही सन्तुलित रहना चाहिए। अधिक तपस्या से शरीर क्षीण हो सकता है और तपस्या विल्कुल न रहने मे शरीर मे विविध भोगों से रोग उत्पन्न हो सकते है। इसलिए भोग और योग के समन्वय मे ही जीवन की सार्थकता है॥" विचार उठते ही उसे शाक्य मुनि ने आचार मे परिणत कर लिया। वे मध्यममार्ग पर चलने लगे। अपने अनुयायियो को भी उन्होंने मध्यममार्ग का उपदेश दिया, किन्तु स्वय उन्होने यह उपदेश एक नर्तकी नारी से लिया था।

वालादपि सुभाषितम्

(वालक (अज्ञ) से भी अच्छी वात अपनानी चाहिए।)



१७७ : उपदेश

क्या सुभाषित भी मधुर होता है?

हाँ; सुभाषित के आनन्द के सामने दाख का मुँह मुरझा गया, शक्कर पत्थर बन गई और अमृत तो डरकर स्वर्गवासी बन गया—

द्राक्षा म्लानमुखी जाता, शर्करा चाश्मता गता।
सुभाषितरसस्याग्रे सुधा भीता दिवंगता॥

कोई दृष्टान्त?

सुनिये—

आइन्स्टीन से जब किसी बालक ने सफलता का मन्त्र पूछा तो वे बोले—"हिम्मत रखना ही वह मन्त्र है, जिससे जीवन सफल होता है। जब मैं भी छोटा बालक था, तब पढ़ने-लिखने में तेज नहीं था। स्कूल के साथी मुझे परेशान करते थे। कभी-कभी वे मेरी पीठ पर 'बुद्धू' शब्द लिख दिया करते थे। मेरे अध्यापक भी मुझे खूब झिड़कते थे। कक्षा में प्रश्नों का उत्तर न आने पर मुझे कई बार बेंच पर खड़ा कर दिया जाता था। गणित के अध्यापक तो मुझसे बहुत नाराज रहते थे। कहते थे कि तू सात जन्मों तक गणित नहीं सीख सकता। लेकिन मैं अपनी धुन में लगा रहा, परिश्रम करता ही रहा। रात को बारह बजे तक पाठ्यपुस्तकों में खोया रहता। धीरे-धीरे मुझे पढ़ाई-लिखाई में रस आने लगा। सिद्धान्त समझ में आने लगे। प्रथम श्रेणी में वार्षिक परीक्षा उत्तीर्ण करने लगा। यदि मैं हिम्मत हार गया होता तो मुझे जीवन में कोई सफलता नहीं मिल पाती।"

इस उपदेश का बालक के हृदय पर अच्छा प्रभाव पड़ा।

जाड्यं निहन्ति रुचिमेति करोति तृप्तिम्
नूनं सुभाषितरसोऽन्यरसातिशायी॥

(सुभाषित का रस अन्य रसों से निश्चय ही श्रेष्ठ होता है, जो मूर्खता को नष्ट करता है, रुचि पैदा करता है और तृप्ति देता है।)



१७८ : उपदेश

क्या ज्ञानियों का ज्ञान और युगों का अनुभव सूक्तियों द्वारा सुरक्षित रह सकता है ?

हाँ, डिजरायली ने ऐसा ही कहा था— The wisdom of the wise and the experience of ages may be preserved by quotations, (दि विज्डम ऑफ दि वाईज एण्ड दि एक्स्पीरियन्स ऑफ एजेज मे वी प्रीजर्व्ड वाय कोटेशन्स ।)

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

सुप्रसिद्ध दार्शनिक अफलातून ने अन्तिम समय मे अपने शिष्यों को जीवन सफल बनाने की कला का उपदेश इन चार बातो के रूप में दिया—

(एक) दूसरों के द्वारा हुआ अपना अपकार भूल जाओ; क्योंकि याद रखोगे तो हृदय मे उनके प्रति द्वेष बना रहेगा।

(दो) दूसरों के प्रति किया गया अपना उपकार भी भूल जाओ, क्योंकि याद रखोगे तो अहकार के शिकार बन जाओगे।

(तीन) याद रखो कि कोई भी अपने को सुख-दु.ख नही दे सकता।

(चार) याद रखो कि जिसने जन्म लिया है, वह एक दिन अवश्य मरेगा।

इस प्रकार चार बातो मे से दो भूल जाने की है और दो याद, रखने की।

पृथिव्या त्रीणि रत्नानि
जलमन्न सुभाषितम् ।
मूढै पाषाणखण्डेषु
रत्नसज्ञा विधीयते ॥

(पृथ्वी मे तीन रत्न है—जल, अन्न और सुभाषित। वे लोग भोले है, जो चमकीले पत्थर के टुकडों को "रत्न" कहते हैं।) ※

१७९ : उपदेश

क्या उपदेश का स्वयं पालन जरूरी है ?

हाँ; वहुत जरूरी । जो हाथ नचा-नचाकर दूसरों को उपदेश देते हैं, परन्तु स्वयं उन उपदेशों का पालन नहीं करते, वे धर्म को वेचते हैं । धर्मोपदेश बेचकर उसके बदले प्रतिष्ठा खरीदते है-

उवएसा दिज्जन्ति,
हत्थे नच्चाविऊण अन्नेसि ।
ज अप्पणा न कीरइ,
किमेस विक्काणुओ धम्मो ?

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये-

आदमी ने वादल से पूछा-"यह गर्जन क्यों ? विना गर्जन भी तो वरसा जा सकता है, फिर यह आडम्वर क्यों ? विज्ञापन क्यों ?"

वादल ने कहा-"तू मेरे विना जी नही सकता, फिर भी मेरी निन्दा करता है । मेरा मीठा जल पीकर जहर उगलता है- क्या यही तेरी कृतज्ञता है ? सभ्यता है ? समझदारी है ? मैं तो समुद्र का खारा जल पीकर भी मीठा जल वरसाता हूँ । जो आदमी मेरी निन्दा करता है मुझमें दोष ढूंढता है, मेरे दोष प्रकट करता है, उसे भी मैं विना किसी द्वेष के मीठे जल से नहला देता हूँ। उपकारी का उपकार तो सभी करते हैं; परन्तु मैं तेरे समान अनुपकारी को भी उपकृत करता हूँ । मैं चाहता हूँ कि तेरा जीवन भी मेरी तरह परोपकारी वने और यही समझाने के लिए मैं गर्जन करता हूँ । समझे ?"

दातव्यमिति यद्दान, दीयतेऽनुपकारिणे ।
देश काले च पात्रे च, तद्दानं सात्विकं स्मृतम् ॥

(देना चाहिए-ऐसा सोचकर अपने पर उपकार न करने वाले को देश, काल और पात्र के अनुसार जो दिया जाता है, उसी दान को 'सात्विक' कहते हैं ।)

१८० : उपदेश

क्या अनुभवी ही उपदेश कर सकता है ?

हाँ; किन्तु अनुभव तीन प्रकार का होता है– शास्त्र से, गुरु से तथा स्वयं से। जैसे– "गुड़ मीठा होता है।"– यह अनुभव शास्त्र के आधार पर है, "दूर से गुड़ का दर्शन होना"– यह अनुभव गुरु के आधार पर होता है, परन्तु गुड़ खाने के सुख को आत्मानुभव (स्वयं का अनुभव) कहते हैं–

त्रेधा प्रतीतिरुक्का,
शास्त्राद् गुरुतस्तथात्मनस्तत्र ।
शास्त्रप्रतीतिरादौ,
यद्वन्मधुरो गुडोऽस्तीति ॥
अग्रे गुरुप्रतीतिर–
दूराद् गुडदर्शन यद्वत् ।
आत्मप्रतीतिरस्माद्–
गुडभक्षणज सुख यद्वत् ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

लका में युद्ध के वाद राम ने लक्ष्मण से कहा कि रावण भले ही हमको अपना शत्रु मानता रहा हो, परन्तु हमसे वह अधिक विद्वान है, वृद्ध है, अनुभवी है, इसलिए युद्धस्थल मे घायल होकर पडे रावण से विनयपूर्वक उपदेश ग्रहण कर आओ।

लक्ष्मण गया। रावण को प्रणाम करके उसने उपदेश की याचना की। रावण ने अपने अनुभवो को निचोड कर दो वातें कही। पहली यह कि "आवश्यक काम कभी स्थगित नही करना" और दूसरी यह कि "अपने शत्रु को कभी छोटा नही समझना।"

उपदेश-ग्रहण के वाद पुन. प्रणाम कर लक्ष्मण लौट आया।

विद्या कवहुँ न छाँड़िये, जदपि नीच पै होय ।
परो अपावन ठौर में, कंचन तजै न कोय ॥



१८१ : उपदेश

क्या अपनी बात को संक्षप में प्रकट करना एक उत्तम कला है?

हाँ; इसीलिए किसी इंगलिश विचारक ने कहा है–

"क्षमा कीजिए, मेरे पास इतना समय नहीं है कि मैं विस्तारपूर्वक लिख सकूँ, इसलिए संक्षेप में लिखता हूँ।"

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक वार ब्रह्माजी के पास तीन व्यक्ति एक साथ उपदेश सुनने पहुँचे। उनमे से एक देव प्रकृति का था, दूसरा मानवीय प्रकृति का और तीसरा दानवीय प्रकृति का। ब्रह्माजो के पास इतना समय नही था कि वे तीनों को अलग-अलग विस्तार से उपदेश देते, इसलिए उन्होंने एक साथ सबको कहा–"दददा:"। इससे तीनों सन्तुष्ट होकर जिधर से आये थे, उधर चले गये। उनके सन्तुष्ट होने का रहस्य इस प्रकार है–देव प्रकृति के व्यक्ति ने समझा कि मैं विलासी हूँ–इन्द्रियों के लिए विषय की खोज में लगा रहता हूँ, इसलिए मुझे 'द' से दमन का–इन्द्रियों को वश में रखने का उपदेश दिया गया है। मनुष्य ने समझा कि मैं परिग्रही हूँ–लोभ में फँसा हूँ, इसलिए मुझे 'द' से दान करने की प्रेरणा दी गई है। दानवीय प्रकृति के व्यक्ति ने समझा कि मै क्रोधी हूँ–क्रूर हूँ, इसलिये मुझे 'द' से दया की शिक्षा दी गई है। इस प्रकार तीनों ने अपनी-अपनी योग्यता और आवश्यकता के अनुसार एक अक्षर से बोध ग्रहण कर लिया।

मितं च सारं च वचो हि वाग्मिता ॥

(परिमित और सारगर्भित वचन ही वाक्पटुता है।)



१८२ : उपाय

क्या शक्ति से युक्ति अधिक प्रबल होती है ?

हाँ; उपाय से जो सम्भव है, वह पराक्रम से नहीं–

उपायेन हि यच्छक्यम्
न तच्छक्यं पराक्रमैः ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक वार वादशाह अकबर का अँगूठा युद्ध में कट गया। उपचार से अँगूठा तो पुन. ठीक हो गया, परन्तु उस पर नाखून नही आया। वादशाह ने वड़े-वड़े वैद्यों और हकीमों को सादर आमन्त्रित करके यह कार्य सौंपा। उसकी अवधि निश्चित कर दी और कहा कि उस अवधि में यदि नाखून पैदा नही हो सका तो आप सबको जेल में ठूँस दिया जायगा।

ऐसे अवसर पर युक्ति ही काम आ सकती थी। सब चिकित्सक मिलकर बीरवल के पास गये। बीरबल ने उन्हे बचाने का उपाय निकाल लिया। बादशाह से कहा–"यदि गूलर के फूल को मछली के मूत्र में पीस कर लेप किया जाय तो नाखून आ सकता है–ऐसा चिकित्सकों का कहना है। आप ये दोनों वस्तुएँ मँगवा दीजिए।" बादशाह वस्तुएँ नही मँगवा सका, इसलिए नाखून ठीक नही हो सका। चिकित्सको की जेल माफ हो गई।

मतिरेव बलाद् गरीयसी
यदभावे करिणामियं दशा ॥

[बुद्धि ही वल से श्रेष्ठ होती है। बुद्धि के अभाव में हाथियों की यह दशा है (कि बुद्धिमान् मनुष्य उनकी गर्दन पर सवार होकर घूम रहा है–बुद्धिहीन हाथी को उसका भार ढोना पड़ रहा है।)]

उपाय : १८३

क्या विना अभिषेक और संस्कार के ही अपने पराक्रम में अर्जित वन के राज्य का सिंह स्वयं राजा बन जाता है ?

हां; कहा भी गया है—

> नाभिषेको न संस्कारः,
> सिंहस्य क्रियते मृगैः ।
> विक्रमार्जित राज्यस्य,
> स्वयमेव मृगेन्द्रता ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

जंगल के निवासी एक नागराज से बहुत ही आतंकित थे। उसने सैकड़ों पशुओं और ग्वालों को जान से मार डाला था। ग्वाले उससे पचास कदम दूर रहने में ही अपना कल्याण मानते थे। एक दिन एक साधु की शान्त मुद्रा देखकर वह बहुत प्रभावित हुआ। साधु ने उसे शान्त रहने का उपदेश दिया।

नागराज शान्त हो गया। उसका आतंक मिट गया। ग्वाले उसे पत्थर मार-मार घायल करने लगे। वही साधु एक दिन उधर से गुजरा तो नागराज ने पूछा कि क्या धर्म के पालन से ऐसी ही दुर्दशा होती है ?

साधु ने कहा— "भैया ! मैंने काटने के लिए तुम्हें मना किया था; फुफकारने के लिए नही। आत्म-रक्षा के लिए फुफकार सकते थे।"

> तावद्गर्जन्ति मण्डूकाः कूपमाश्रित्य निर्भयाः।
> यावत्करिकराकारः कृष्णसर्पो न दृश्यते ॥

(जब तक हाथी की सूंड़के समान काला सांप दिखाई नहीं पड़ता, तब तक कुए में रहकर निर्भय मेंढक टरं-टरं करते हैं।)



क्या बुद्धि नेत्र के समान पथ प्रदर्शिका है ?

हाँ; जिसमें अपनी बुद्धि नही होती, शास्त्र उसका क्या कर सकते है (शास्त्रो से वह व्यक्ति कोई लाभ नही उठा सकता)? जिसकी आँखे नही है, उसका काँच क्या करेगा (दर्पण उस व्यक्ति को उसकी मूरत नहीं दिखा सकेगा, जो अन्धा है) ?–

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा,
शास्त्र तस्य करोति किम्।
लोचनाभ्या विहीनस्य
दर्पणः किं करिष्यति ?

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

जो पण्डित शहजादे को पढाने आया करते थे, उनसे बादशाह ने एक दिन कहा– "मुझे भी आप अपनी सन्ध्या विधी सिखा दीजिए।" यह सुनकर पण्डित क्षणभर के लिए किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गया। यदि सन्ध्या विधि सिखाये तो अपना समाज (उसका जाति से) बहिष्कार कर सकता है और न सिखाये तो बादशाह आज्ञा भंग का आरोप लगाकर फाँसी दे सकता है। आखिर उसने एक युक्ति से काम लिया। बादशाह से कहा कि आप स्नान करके पूर्व दिशा मे मुँह करके बैठ जाइये। मैं आपको सिखा देता हूँ। बादशाह ने वैसा ही किया और सामने आकर बैठ गया। फिर पण्डित ने कहा– "आप अपनी चोटी बाँध लीजिए।" बादशाह की चोटी थी ही नही। क्या बाँधता ? आखिर पण्डित ने कहा– "पहले आप चोटी रख लीजिए उसके बाद ही अगली विधि बताई जा सकेगी।"

किमज्ञेय हि धीमताम् ?

[बुद्धिमानों के लिए अज्ञेय क्या है? (कुछ नही।)] ❋

१८५ : उपाय

जो कार्य पराक्रम से सिद्ध नही होता, क्या वह उपाय से हो सकता है ?

हाँ; नीतिकारों का कथन है–

"उपायेन हि यच्छक्य, न तच्छक्यं पराक्रमैः ।"

कोई दृष्टान्त ? सुनिये–

एक गाँव में दो भाई अलग-अलग रहते थे, आपस में वे बहुत प्रेम करते थे; परन्तु औरतों की अनबन के कारण उन्हें अलग रहने को विवश होना पड़ा। एक दिन बड़े भाई ने किसी खुशी के प्रसंग पर एक विशाल भोज का आयोजन किया। बड़े भाई का प्रेम देखकर वहाँ पर छोटा भाई भी जा पहुँचा। जहाँ सबको जिमाया जा रहा था। छोटे भाई ने भी परोसने का काम बड़ी स्फूर्ति और सावधानी से किया। अन्त मे परोसने वाले जीमने को बैठे। छोटे भाई को जीमने के लिये बैठते हुए देखकर उसकी भौजाई जल-भुनकर राख हो गई। उसने अपने पतिदेव (बड़े भाई) से साफ-साफ कह दिया कि छोटे भाई की थाली मे घी बिलकुल न परोसा जाय, अन्यथा परिणाम ठीक न होगा। बडे भाई ने सब के सामने कलह मे बचने के लिए मौन रहना ही उचित समझा। मन-ही-मन वह ऐसा उपाय सोचने लगा कि साँप भी मर जाय और लाठी भी न टूटे। उपाय सूझ गया।

थाली मे मिठाई के साथ खिचड़ी परोसी गई थी। जो बिना घी के खाई नही जा सकती थी। बड़े भाई ने छोटे भाई के पास बैठे आदमी के सामने घी का बर्तन रख दिया और मिठाई परोसने के बहाने इधर से उधर जाते हुए उस पर ऐसी ठोकर लगाई कि सारा घी खिचड़ी में ढुलक गया। इससे पत्नी भी नाराज नही हुई और भाई भी तृप्त हो गया।

भाई के मन भाई भायो। बिना बुलाये जीमण आयो ॥
आँख्या में वो खटक्यो नाही। घी ढुलिलो तो खिचड़ी माहीं ॥ ❋

१८६ : उपाय

क्या समुद्र में नदियों की तरह स्वार्थ में सारे सद्गुण खो जाते हैं ?

हाँ;—

The virtues are lost in the self-interest as revers are in the sea.

(दि वर्च्यूज आर लोस्ट इन सेल्फ-इन्टरेस्ट एज रिवर्स आर इन दि सी.)

कोई दृष्टान्त ? सुनिये—

गर्मी की मौसम थी। एक मुसाफिर ने रास्ते में एक सुन्दर विशाल आम का पेड़ देखा। विश्राम के लिए वह उसकी छाया मे जाकर बैठ गया। थोडी देर वाद पेड पर वहुत से पके आम लगे देखकर उन्हे चूसने की उसके मन मे इच्छा हुई। बिना पूछे आम तोड़ना चोरी है, यह वह अच्छी तरह जानता था। उसने आम से ही पूछा—"अम्वसार! अम्वसार! ले लूं दो चार? फिर खुद ही उत्तर दिया—"ले ले दस-वीस"। इस उत्तर के साथ ही दस-वीस आम तोड़कर उसने चूस लिए। यह दृश्य दूर से पेड़ का मालिक देख रहा था, उसने पूछने और उत्तर पाने के ढग का अध्ययन करके एक डण्डा हाथ मे उठा लिया और फिर उसे सम्बोधित करते हुए पूछा—"डण्डसार! डण्डसार! मारूँ दो-चार?" फिर खुद ही वोला—"मार दस-वीस"। इस उत्तर के साथ ही मुसाफिर को डडे जमा दिये गये। मुसाफिर वहाँ से भाग खडा हुआ। वह अपने उपाय पर पछताने लगा।

किसी भी व्यक्ति को ऐसा उपाय नही अपनाना चाहिए, जो अन्यायपूर्ण हो, लक्ष्य की प्राप्ति मे वाधक हो—

"न ह्युपाय उपेयव्यभिचारी।"

(उपाय वही है, जो उपेय (उपाय का जो लक्ष्य है. उस) में वाधा न डाले।)



१८७ : उपाय

क्या पराक्रम से वैसी कार्यसिद्धि नहीं होती, जैसी उपाय से ?

हाँ; तभी तो कहा है—

"उपायेन हि यच्छक्यम्
न तच्छक्यं पराक्रमैः।"

कोई दृष्टान्त ? सुनिये—

एक नगरसेठ के मकान में सेंध लगाकर कुछ चोर आ घुसे। सेठजी ने यहाँ पराक्रम की अपेक्षा उपाय का अवलम्बन करना ही श्रेष्ठ समझा। इसलिए धीमे स्वर में सेठानी से कहा—अरी ! सुनती हो ? आज कलकत्ता और दिल्ली से तार आये है कि वहाँ राई के भाव वहुत वढ़ गये हैं; इसलिए कल मैं सारे बाजार की राई खरीदने वाला हूँ; परन्तु यह बात तुम किसी से कह मत देना, अन्यथा दूसरे लोग भी राई खरीदना शुरू कर देगे और अपने को पूरा लाभ नही हो सकेगा। उधर चोरों को तिजोरी का पता नही लग पाया, परन्तु जगह-जगह राई के ढेर पड़े थे। राई का भाव वढ़ने की वात उनके सुनने में आ गई थी। इसलिए राई की गाँठे वाँधकर वे चल पड़े।

इधर सेठ ने प्रातः उठते ही सेंध वाले भाग को चुनवा दिया। उधर वाजार मे राई की गाँठो का ढेर पड़ा था, परन्तु कोई क्रेता नहीं मिल रहा था। परेशान होकर किसानवेष धारी चोर उसी नगर सेठ के यहाँ चोरी का माल वेचने आये। सेठ ने वहुत सस्ते भाव मे राई खरीद ली। एक चोर के पूछने पर सेठ ने सस्ती राई खरीदने का कारण वताते हुए कहा—"भाई ! राई का भाव तो रात को ही चला गया।

शक्ति से युक्ति प्रवल होती है—

वुद्धिर्यस्य वलं तस्य।

(जिसके पास वुद्धि है, वही वलवान् है।)



१८८ : उपेक्षा

उपकारियों की उपेक्षा करने वाले कृतघ्न है क्या ?

हाँ, एक कवि ने कृतघ्न को कुत्ते से भी गया-बीता बताते हुए कहा है—हे कुत्ते ! कृतघ्न नामक बुरे से बुरे (मनुष्यरूपी) कुत्ते को देखकर तू व्यर्थ ही ऐसा शोक मत कर कि "प्राणियों मे केवल मैं ही अधम हूँ।"

शोकं मा कुरु कुक्कुर !
सत्त्वेष्वहमधम इति मुधा साधो ।
कष्टादपि कष्टतरं
दृष्ट्वा श्वानं कृतघ्ननामानम् ॥

कोई दृष्टान्त ? सुनिये—

जगल मे हँसती हुई जडों से जब किसी मुसाफिर ने हँसने का कारण पूछा तो एक जड ने जवाब मे कहा—हम मनुष्य के अज्ञान पर हँस रही हैं कि वह कितना कृतघ्न है ! हम जमीन के भीतर रह कर वृक्ष को खुली हवा में थामे रहती है—स्वय अँधेरे मे रहकर उसे प्रकाश मे रखती है— पृथ्वी से रस ग्रहण करके उसको अँकुरित, विकसित, पुष्पित और फलित करती है । मनुष्य कितना निकटदर्शी है ? वह फूलो और फलो का भोग करके वृक्ष की प्रशसा कर देता है; परन्तु हमारी उपेक्षा करता है। वह कार्य को अपनाता है—उसी की तारीफ के पुल बाँधता है । परन्तु कारण की ओर ध्यान नही देता, कैसा अज्ञानी है वह ?

मुसाफिर यह सुनकर गम्भीर हो गया।

नाकारणं भवेत्कार्यम्, नाऽन्यकारणकारणम् ।
अन्यथा न व्यवस्था स्यात्, कार्यकारणयो. क्वचित् ॥

(बिना कारण कार्य नही होता। अन्य कारण से भी कार्य नही होता। कार्य और कारण की यह जो व्यवस्था है, वह कभी अन्यथा नही होती (बदलती नही।)

१८९ : एकता

क्या संगठित रहने में ही शक्ति का निवास है ?

हाँ; कलियुग मे यही सत्य है–

संघे शक्ति कलौयुगे ।।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक लुहार ने ढेर सारे कुल्हाड़े बनाये। उन्हें एक बैलगाडी में भर कर वह शहर की ओर बेचने चल पड़ा। रास्ते मे जिन-जिन वृक्षो ने बैलगाड़ी मे लदे कुल्हाड़ों का ढेर देखा, वे सब भय के मारे थर-थर कांपने लगे। एक वृद्ध झाड़ ने सबसे कहा–आप लोग व्यर्थ डर रहे है, मुझे डर का अभी कोई कारण नहीं दिखाई दे रहा है, जितने कुल्हाड़े बैलगाड़ी में है, उनसे दस गुने भी एकत्र हो जायँ तो भी वे आपको कोई हानि नही पहुँचा सकते ; क्योकि इनमे से किसी मे भी अपनी जाति के अंश का हत्था नही है। आप सब सगठित होकर रहिये, अपना कोई भी हिस्सा विपक्ष मे जाकर न मिले; अन्यथा विभीषण ने जिस प्रकार राम से मिलकर अपने बड़े भाई रावण को हरा दिया और सारी लका का सत्यानाश हो गया, उसी प्रकार अपने जगल का भी हो सकता है।

वृद्ध अनुभवी की सलाह मानकर सारे वृक्ष सगठित हो गये और सचमुच उनका कुछ नही बिगड़ा।

कुछ वर्षो बाद एक वृक्ष ने भूल की। उसकी शाखा का एक टुकड़ा किसी कुल्हाड़ी में हत्था बन गया। परिणामस्वरूप सारा जगल उजड़ गया। जहाँ एकता है, वही शान्ति रहती है।

गुजराती मे एक कहावत है–

"सप त्यां जंप"



१६० : एकता

क्या एकता में ही शान्ति सम्भव है!

हाँ; गुजराती की लोकोक्ति प्रसिद्ध है–

संप त्याँ जप ।।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक सेठजी थे। उनके पास प्रचुर सम्पत्ति थी। एक दिन लक्ष्मी देवी ने उन्हे सपने में दर्शन देकर कहा– 'आपकी तिजोरी मे रहते-रहते मेरा जी ऊब गया है, इसलिए अब मैं अन्यत्र जाना चाहती हूँ।'

सेठजी ने वहुत कुछ अनुनय-विनय की परन्तु लक्ष्मी ने अपना निर्णय नही वदला, फिर भी दया करके सेठजी से इतना कह दिया कि मै जाते-जाते आपकी एक इच्छा पूरी कर सकती हूँ। आप जो भी मुझमे माँगना चाहें, माँग ले। सेठजी ने सोचने के लिए एक दिन की अवधि माँगी, सो उन्हे दे दी गई। फिर उनकी नींद खुल गई। उन्होंने अपने सभी कुटुम्वियों को सपने का वृत्तान्त कह सुनाया और पुछा कि एक वरदान लक्ष्मीदेवी से क्या माँगा जाय?

इस पर किसी ने विशाल महल, किसी ने लम्वा चौड़ा खेत, किसी ने प्रतिष्ठा और किसी ने स्वास्थ्य मांगने का सुझाव रक्खा; परन्तु सेठजी को छोटी वहू का प्रस्ताव ही सवसे श्रेष्ठ लगा। उसने सुझाया कि आप एकता (सप) का वर माँगे अर्थात् घर में फूट का प्रवेश न हो–सभी मिल जुलकर रहें। दूसरे दिन रात को लक्ष्मीजी फिर दिखाई दी। सेठजी ने अभीष्ट वरदान माँगा तो लक्ष्मी ने उत्तर दिया– "एकता का वर माँग कर आपने तो मेरी टाँगे ही तोड़ दी, अव मैं नही जाऊँगी।

जहाँ सुमति तहाँ सम्पत्ति नाना ।। 

१६१ : कन्या

क्या एक सुपुत्र सैकड़ों कुपुत्रों से श्रेष्ठ होता है?

हाँ; एक चन्द्र अंधेरे को नष्ट कर देता है; परन्तु तारों का झुण्ड वैसा नहीं कर सकता—

वरमेको गुणी पुत्रो
न च मूर्खशतान्यपि।
एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति
न च तारागणोऽपि च॥

कोई दृष्टान्त?

सुनिये—

एक आदमी ने पुत्र प्राप्ति के लिए भैरवदेव की उपासना की। उसने प्रसन्न होकर पुत्र होने का वर दिया; परन्तु बदले में पाँच किलो गौमांस माँग लिया। पुत्र उत्पन्न होने पर उसने देव से कह दिया कि पुत्र बड़ा हो जायेगा, तब आपकी माँग पूरी करूँगा। बड़ा होने पर कहा कि इसकी शादी हो जाने दीजिए। भैरवदेव ने कहा कि यदि दो दिन में माँग पूरी नहीं हुई तो मैं तुम्हारे पुत्र को मार डालूँगा। आदमी घबराया कि गौहत्या कैसे की जाय? यदि पुत्र के लिए वैसा करूँ तो क्या मैं समाज से बहिष्कृत न हो जाऊँगा? अन्त में उसकी घबराहट शान्त करते हुए देव ने कहा— "मैं तुझे उपाय बताता हूँ तेरे पड़ौसी ने अभी-अभी धन के लिए अपनी कन्या बेची है, उसके घर से पाँच किलोग्राम अनाज ले आओ, वह अनाज गौमांस के बराबर है। आदमी ने वैसा ही किया; वहाँ से बाल्टी भरकर ज्यों ही घर लाया, त्यों ही उसमें गौमांस के लोथड़े दिखाई दिये। लोगों ने भी अचरज के साथ उसे देखा। भैरव ने कहा—"मुझे माँस की जरूरत नहीं थी, मैं तो केवल आप लोगों को यह समझाना चाहता था कि कन्या बेचकर प्राप्त धन का अन्न खाना गौमाँस-भक्षण जैसा है।" गुजराती कहावत है— "पाप पीपले चढीने पोकारे।"

१९२ : करुणा

क्या करुणा एक उत्तम गुण है ?

हाँ; क्योंकि वह दूसरों का दुःख नष्ट करती है–

परदुखविनाशिनी करुणा ।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

सुरेशकुमार कार्यालय की मध्यविश्रान्ति के समय दूसरे कर्मचारियो के साथ चाय नही पिया करता था। साथी के पूछने पर उसने बताया कि सबके साथ चाय पीने से खर्च अधिक आता है, जिसे मैं सह नही सकता।

सबसे अधिक वेतन पाने वाले सुरेशकुमार ने जब यह कहा तो किसी ने विश्वास नही किया। एक मित्र ने खाने-पीने में ऐसी कंजूसी न करने का जब उपदेश दिया, तब असली बात बताते हुए उसने कहा कि अपने वेतन से मैं तीन-चार निर्धन छात्रों की मदद करता हूँ। एक छात्र का, जो मेडिकल कॉलेज में पढ़ रहा है, खर्च कुछ बढ गया है। मेरे पास आय का अन्य कोई स्रोत नही है, इसलिए मैने खानपान में कटौती की है। अब ४५ रु० वाली लॉज के बदले २८ रु० वाली लॉज में खाना शुरू कर दिया है। साथियो के साथ चाय पीने मे तीस पैसे का खर्च आता है; इसलिए मैं अकेला ही किसी होटल मे पन्द्रह पैसे वाली चाय पी आता हूँ।

"इस तरह तो तुम्हारा स्वास्थ्य गिर जायगा" ऐसी आशंका व्यक्त करने वाले साथी से उसने कहा– "तो वह डॉक्टर (जिसकी पढाई मे मैं मदद कर रहा हूँ) ठीक कर देगा ?"

सबने उसे कजूस नही, उस दिन से देवता समझा।

"परहित सरिस धरम नहि भाई !"

१९३ : कर्तव्य

क्या प्राणों की पर्वाह न करके सबको अपने-अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिये ?

हाँ; और अकर्त्तव्य नहीं करना चाहिये, भले ही प्राण चले जायँ–

कर्त्तव्यमेव कर्त्तव्यम्, प्राणैः कण्ठगतैरपि ।
अकर्त्तव्यं न कर्त्तव्यम्, प्राणैः कण्ठगतैरपि ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

अत्यन्त निर्धनता के कारण एक आदमी पत्नी को वनिता विश्राम गृह में भरती करने के बाद मेहनत-मजदूरी के द्वारा अपने छोटे-छोटे दो बच्चों का और अपना पेट पालने लगा। बड़ा बच्चा बारह वर्ष का था और छोटा छह वर्ष का। एक दिन दुर्घटनाग्रस्त होकर पिताजी चल बसे। बच्चों ने पैदल चलकर माँ के पास जाने के लिए प्रस्थान किया। मार्ग मे एक बैलगाड़ी वाले ने कहा कि तुम दोनों में से किसी एक को मैं बिठा सकता हूँ। बड़े भाई ने छोटे को उसमें बिठा दिया और खुद पैदल चलने लगा। कुछ समय बाद छोटे ने कहा कि भाई साहब ! आप बैठिये। मुझे पैदल चलने दीजिये। परन्तु बड़े ने कहा कि तुझे सुख देना ही मेरा कर्त्तव्य है। यदि मैं अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं कर सका तो माँ के सामने और ईश्वर के सामने अपना काला मुँह कैसे बताऊँगा। यह सुनकर गाड़ीवान बहुत प्रभावित हुआ। उसने बड़े भाई को भी बिठा लिया। दोनों माँ से मिले। माँ ने दोनो को छाती से लगा लिया।

कार्यमित्येव यत्कर्म, नियतं क्रियतेऽर्जुन !
संगं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विको मतः ॥

[हे अर्जुन ! आसक्ति और फल का त्याग कर कर्त्तव्य होने से ही जो नियत कर्म किया जाता है, वह सात्त्विक त्याग माना जाता है।]



१६४ : कर्तव्य

क्या जैसे के साथ तैसा व्यवहार करना चाहिये ?

हाँ; नीति यही कहती है कि दुष्ट के साथ दुष्टता का वर्ताव करो–

शठे शाठ्यं समाचरेत् ।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक भोला-भाला गरीब आदमी गाँव से शहर में घूमने गया। वहाँ एक हलवाई की दूकान पर अलग-अलग थालों मे अलग-अलग तरह की मिठाइयाँ देखकर वहुत प्रसन्न हुआ; परन्तु उसके पास इतने पैसे नही थे कि वह मिठाई खरीदकर खा सके; इसलिए चुप-चाप खडा-खडा देखता रहा। हलवाई ने कहा–"मिठाई की सुगन्ध के भी पैसे लगते है, इसलिए सौ ग्राम मिठाई का मूल्य एक रुपया निकालो।" ग्रामीण ने कहा–"मैने मिठाई खाई नही है, फिर पैसे कैसे ?" हलवाई ने कहा–"सुगन्ध लेना और खाना बराबर ही होता है, पैसे तुम्हे देने पडेगे।"

यह दृश्य एक चतुर आदमी देख रहा था, उसने तत्काल एक रुपया कलदार निकाल कर सडक पर फेक दिया और कहा–"यह लो तुम्हारी मिठाई का रुपया !" रुपये की खनक सुनकर हलवाई ज्यो ही उसे लेने के लिए उठा, त्यो ही उस आदमी ने रुपया उठाकर जेब मे रखते हुए कहा–"रुपया तुम्हे मिल चुका है, रुपये के पास आने की क्या जरूरत ? यदि मिठाई की सुगन्ध लेना और उसे खाना बराबर है तो रुपया लेना और उसकी खनक सुनना बराबर क्यों नही ?"

मतिरेव बलाद् गरीयसी।

[शक्ति से युक्ति महान होती है।]

*

१९५ : कर्तव्य

क्या कर्त्तव्यनिष्ठ मनस्वी सुख-दुःख की जरा भी पर्वाह नही करते ?

हाँ ; कभी वे जमीन पर सो जाते है, कभी पलंग पर—कभी शाकाहार करते है, कभी उत्तम भात खाते है— कभी चिथडा पहिन लेते है, कभी उत्तम पोशक (प्रत्येक अवस्था मे वे प्रसन्न रहकर अपने कर्त्तव्य का पालन करते रहते है ।)

क्वचिद् भूमौ शय्या
क्वचिदपि च पर्यङ्कशयनम्
क्वचिच्छाकाहारी
क्वचिदपि च शाल्योदनरुचिः ।
क्वचित्कन्थाधारी
क्वचिदपि च दिव्याम्बरधरो,
मनस्वी कार्यार्थी
न गणयति दुःखं न च सुखम् ।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

सुप्रसिद्ध साहित्यकार पंडित श्री बनारसीदास जी को राजमार्ग पर चलते हुए एक बार लघुशंका की इच्छा हुई । वे सड़क के किनारे पर बैठ गये । कुछ ही दूर एक पुलिस वाला खड़ा-खड़ा यह देख रहा था । दूसरे ही क्षण लपक कर वह समीप आ गया । इधर लघुशंका से निवृत्त होकर ज्यों ही पंडितजी उठे, त्यो ही उनके दोनों गालो पर पुलिस वाले ने एक-एक तमाचा कस कर मार दिया । सड़क के नियम भग करने का यह प्रसाद था । पंडित जी ने शाहजहाँ के सामने उसकी कर्त्तव्यतत्परता की प्रशसा करके उसका वेतन बढ़वा दिया ।

उप्तं सुकृतबीजं हि सुक्षेत्रेषु महत्फलम्

[अच्छे कार्य का बीज अच्छे क्षेत्र में बोया जाय तो महान फल-दायक होता है ।]

१९६ : कर्तव्य

क्या कर्त्तव्य का त्याग ही सर्वनाश है ?

हाँ; यदि धन गया तो कुछ नही गया, स्वास्थ्य गया तो कुछ गया और चरित्र गया तो सब कुछ गया—

If wealth is lost, nothing is lost.
If health is lost, something is lost.
If character is lost, everything is lost.

(इफ वेल्थ इज लोस्ट, नथिंग इज लोस्ट ।
इफ हैल्थ इज लोस्ट, समथिंग इज लोस्ट ।
इफ करेक्टर इज लोस्ट, एवरीथिंग इज लोस्ट ।)

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

एक आदमी अपनी पत्नी को लिवा लाने ससुराल गया, परन्तु वहाँ मनोरंजन में लग गया। कई दिनो वाद पिताजी की चिट्ठी आई तव उसे याद आया कि मैं यहाँ किस लिए आया था। उसने अपनी सास से कहा कि आज ही मुझे अपने घर जाना है। आप अपनी बेटी को मेरे साथ भेज दीजिये। सास ने कहा कि अभी उसके कपडो की व्यवस्था करनी है, मेहदी रचानी है, इसमे तीन-चार दिन लग जायगे। आपको जल्दी हो तो चले जाइये और तीन-चार दिन वाद आकर ले जाइये। आदमी को मुँह लटका कर अकेले ही लौट आना पडा।

इस संसाररूपी ससुराल में हम अध्यात्म-विद्यारूपी दुल्हन को लेने आये हैं। परन्तु भौतिक सुखसामग्री में उलझकर कर्त्तव्य भूल गये हैं। जव मृत्यु का वुलावा आयगा तो हमें भी लज्जित होकर मुंह लटकाये हुए जाना पड़ेगा।

ऊँचे गिरि से जो गिरे, मरे एक ही बार।
चारित्र-गिरि से जो गिरे, बिगड़े जन्म हजार॥



१९७ : कर्तव्य

क्या सज्जन सदा परोपकारपरायण होते हैं ?

हाँ; इसमें आश्चर्य की बात क्या है ? चन्दन के पेड़ अपने शरीर को शीतल करने के लिए पैदा नहीं होते (वे तो दूसरों के शरीर को ही शीतल बनाने के लिए होते हैं।)

किमत्र चित्रं यत्सन्त परानुग्रहतत्पराः।
न हि स्वदेहशैत्याय जायन्ते चन्दनद्रुमाः॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

आधुनिक शल्यचिकित्सा के जनक डॉ० हार्वे कुशिंग किसी बिमार औरत को टेबल पर लिटाकर उसके अंगविशेष के ऑपरेशन की तैयारी कर रहे थे कि उसी समय उन्हें उनके सबसे बड़े पुत्र की मोटर दुर्घटना में मृत्यु के समाचार मिले; फिर भी विचलित हुए बिना धैर्यपूर्वक उन्होंने ऑपरेशन का कार्य पूरा किया। फिर ऑपरेशन कक्ष से बाहर आने के बाद ही उन्होंने पुत्र वियोग के आंसू निकाले और पोंछे।

इसे कहते हैं – कर्त्तव्यपरायणता ! व्यक्तिगत सुख-दुःख के कारण जिसके कर्त्तव्य में शिथिलता नही आती, वही कर्मयोगी है।

अद्यापि नोज्झति हरः किल कालकूटम्
कूर्मो बिभर्त्ति धरणी खलु पृष्ठभागे
अम्भोनिधीर्वहति दुर्वहवाडवाग्नि –
मङ्गीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति।

[आज भी शंकर जी कालकूट (एक प्रकार का भयंकर विष, जो कहते हैं, समुद्र-मन्थन के बाद निकला था) नहीं छोड़ रहे हैं– कूर्म (कछुआ) धरती को अपनी पीठ पर धारण किये हुए है (पौराणिक मान्यतानुसार), समुद्र कठिनाई से धारण करने योग्य वाडवानल को धारण करता है, सज्जन अंगीकृत कार्य का निर्वाह करते हैं।]



१९८ : कर्त्तव्य

क्या कर्त्तव्य ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण है ?

हाँ; कहते हैं—

दुनिया में राजा बड़ा
राजा से भी वेष ।
कार्य बड़ा है वेष से
शंका यहाँ न लेश ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

यमुना नदी के एक हिस्से में मछली मारने का निषेध था। एक दिन उसी हिस्से मे एक मछलीमार मछली मारने का प्रयास कर रहा था कि वहाँ शाहंशाह अकबर जा पहुँचा।

दूर मे मछलीमार ने जब बादशाह को आते देखा तो वह एकदम घबरा गया। संकट से बचने के लिए उसने एक धूनी जलाई, उसमें जाल जला दी। अन्य औजार झाड़ियों मे फेंक दिये। धूनी की राख शरीर पर मल ली और एक महर्षि की तरह धूनी के पास जा बैठा। बादशाह वहाँ आया। उसे संन्यासी समझा। श्रद्धापूर्वक नमस्कार करके वह अपने गन्तव्य स्थल की ओर बढ गया।

बादशाह के चले जाने पर नकली साधु ने सोचा कि साधु के वेष मे कितना प्रभाव है ! इस वेष के कारण दिल्ली का सम्राट भी आकर मुझे प्रणाम कर गया। यदि मैं सचमुच साधु बन जाऊँ तो कितना अच्छा हो ! इस प्रकार के विचार से वैराग्य के प्रति आकर्षण बढ़ जाने से वह साधु बना ही रहा, वेष नही छोड़ा। ठीक भी है—

नकली साधू बन गया,
अकबर नमिया आय ।
असली जो साधू बनूं,
नाव पार लग जाय ॥

१९९ : कर्त्तव्य

क्या मनुष्य को इस लोक में जैसा आचरण होता है परलोक में वैसा ही फल होता है ?

हाँ; इसीलिए तो कहा जाता है–

जैसी करनी, वैसी भरनी ।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

नई वहू ने घर आते ही सड़े अन्न की रोटी बना कर ससुर जी की थाली में परोस दी । कारण पूछने पर विनयपूर्ण साहस के साथ उसने उत्तर दिया–"पिताजी ! आपने जो अन्नसत्र खोल रक्खा है, उसमें भूखों को ऐसे ही आटे की रोटियाँ दी जाती है । परलोक मे तो वैसा ही मिलता है, जैसा यहाँ दिया जाता है । जैसी रोटी मैंने आपको आज परोसी है, वैसी ही सदा परलोक में आपको मिलने वाली है । आज की रोटी आपके अन्न-सत्र से मँगाये गये आटे से ही बनाई गई है । यदि अभी से आपको ऐसी रोटी खाने का अभ्यास नही होगा तो परलोक में आप कैसे ऐसी रोटी खा सकेंगे ? दानवीर की उपाधि प्राप्त करने के लिए आप अपनी दूकान में न विकने योग्य घुन लगा सड़ा अनाज जो भी वचा रहता है, उसे अन्नसत्र में भेज देते है । पेट की आग बुझाने के लिए बेचारे भूखे लोग उसी की बनी रोटियाँ खा लेते हैं, परन्तु क्या यह उचित है ?"

बहू की बात से सेठजी अत्यन्त प्रभावित हुए और तत्काल उन्होंने सड़ा अन्न ढोरों को खिलवा दिया और अन्नसत्र में अच्छा अन्न भिजवा दिया । वे समझ गये–

बोये पेड़ बबूल को, आम कहाँ ते होय ।

✱

२०० : कर्त्तव्यपालन

देश, काल और पात्र का विचार करके 'देना ही कर्त्तव्य है' ऐसा समझकर जिसने अपने ऊपर कोई उपकार नही किया है, उसे जो दान किया जाता है, क्या वही सात्त्विक दान है ?

हां; गीता कहती है-

दातव्यमिती यद्दानं
दीयतेऽनुपकारिणे ।
देशे काले च पात्रे च
तद्दान सात्त्विक स्मृतम् ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये-

अनुयायियों से धन का संग्रह करने के लिए मिश्र देश के राजा ने एक वार महात्मा ईसा को जेल मे डाल दिया । उन्हे मुक्त कराने के लिए लोग राजा को यथाशक्ति धन देने लगे । उन लोगो मे से एक गरीव बुढ़िया उल्लेखनीय है, जिसने अपने हाथ से काते हुए सूत की तीन-चार लच्छियाँ लाकर (क्योंकि वही उसका धन था, वह रोज कूआ खोदने और रोज पानी पीने वालों मे से थी) राजा को भेट की। लोग यह देखकर हँसने लगे । तव बुढिया ने उन्हे उत्तर दिया-"इन लच्छियो से महात्मा जी छोडे जायँ अथवा नही, परन्तु ईश्वर जव पूछेगा कि उन्हे छुडाने के लिए तुमने क्या किया, तव नीची-गर्दन करके खडे तो नही रहना पडेगा न ?"

इस उत्तर से सवकी हँसी रुक गई और वे सव अपने-अपने कर्त्तव्य-पालन के लिए तत्पर रहने लगे ।

सुजन व्यजनं मन्ये, चारुवंशसमुद्भवम् ।
आत्मानं च परिभ्राम्य, परतापनिवारणम् ॥

[सज्जन को मैं व्यजन (पंखा) मानता हूँ, जो सुन्दर वंश (वाँस) से उत्पन्न होता है तथा अपने को घुमाकर दूसरो के ताप (गर्मी) का निवारण करता है ।]

२०१ : कर्म

क्या दूषित चित्त ही कर्मों का संचय करता है ?

हाँ; और वे कर्म परिणाम (विपाक) में बहुत दुःखदायी होते हैं–

पदुट्ठचित्तो य चिणाइ कम्मं
जं से पुणो होइ दुहं विवागे ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक महिला ने तपेले में पानी भरकर उसे चुल्हे पर चढ़ा दिया। थोड़ी देर बाद पानी उबलता हुआ कुछ ध्वनि करने लगा। महिला ने पूछा – "भैया जल ! तुम क्या कह रहे हो ? जरा स्पष्ट शब्दों में समझा दो।"

जल बोला– "बहिन! आग मुझे जला रही है। मुझ में वह शक्ति है कि यदि इस पर आक्रमण कर दूँ तो क्षण-भर मे यह ठडी हो जाय परन्तु बीच में यह पीतल आवरण बन के पड़ा है, इसलिए मैं मजबूरी से दुःख भोग रहा हूँ।" आत्मा पर भी कर्मो का आवरण पड़ा है इस लिए विवश होकर उसे दुःख भोगना पड़ रहा है। एक कवि ने कहा है–

ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो ब्रह्माण्डभाण्डोदरे ।
विष्णुर्येन दशावतारगहने क्षिप्तः सदा संकटे ॥
रुद्रो येन कपालपाणिपुटके भिक्षाटनं कारितः ।
सूर्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने तस्मै नमः कर्मणे ॥

[जिसने कुम्हार की तरह ब्रह्मा को ब्रह्माण्डरूपी भाण्ड (बर्तन) बनाने में लगा दिया, विष्णु को दस अवतार लेने की झंझट में डाल दिया, शंकर को खप्पर हाथ में रखकर भीख माँगने के लिए भटकाया और जो सूर्य को नित्य आकाश में भ्रमण करता है, उस कर्म को नमस्कार हो।]



२०२ : कर्मफल

क्या कोई भी दु.ख पूर्वकृत कर्म का फल होता है ?

हाँ; तुम पर कोई भी बला नाजिल हो, उसका कारण तुम्हारा ही कोई पूर्वकृत कर्म होता है–

"Whatever mishap may befall you, it is on account on something which your hands have done. (व्हाटेवर मिसहैप मे बिफाल यू, इट इज औन एकाउन्ट ऑफ समथिग व्हिच युवर हैंड्स हेव डन)।

कोई दृष्टान्त ? सुनिये–

सुनिये–

एक महात्मा अपने शिष्य के साथ एक गाँव से दूसरे गाँव जा रहे थे। मार्ग में एक तालाव के तट पर किसी मछुए को मछलियाँ पकडते देखकर गुरुजी तो आगे निकल गये; परन्तु शिष्य से न रहा गया। उसने मछुए को अहिंसा का उपदेश दिया; परन्तु मछुए ने उसे स्वीकार नहीं किया। शिष्य वहाँ आगे वढ़कर तेज गति से चलता हुआ गुरुजी के पास पहुँच गया। गुरुजी ने समझाया कि अपने-अपने शुभाशुभ कर्मो का फल सव भोगते है। उपदेश देने पर भी यदि कोई नही सुनता तो उसका दुष्परिणाम उसे भोगना ही पड़ेगा।

कुछ वर्षो बाद मार्ग मे गुरुशिष्य को एक साँप दिखाई दिया, जो असख्य चीटियों के काटने से घायल हो गया था; इसलिए तड़प रहा था; परन्तु भागकर अन्यत्र नही जा पा रहा था। गरुजी ने शिष्य से कहा–

देखो, वह मछुआ ही यह साँप है, और जिन मछलियों को मारा था उसने, वे सव चीटियाँ वनकर उसके खून से लथपथ शरीर को काट रही हैं। कर्मो का फल प्राणियों को इसी प्रकार इस जन्म मे नही तो अगले जन्म में अवश्य ही मिलता है।

जेहवी करे छे करनी
तेहवी तरत फले छे ॥

२०३ कर्मफल

क्या कृतकर्मों का फल अवश्य मिलता है ?

हाँ; फल भोगे बिना अपने कर्मों से किसी को कभी मुक्ति नहीं मिला करती। कहा है—

कडाण कम्माण न अत्थि मोक्खो।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

एक ग्वालिन सदा दूध में पानी मिला कर वह मिश्रण शहर में दूध के भाव बेचा करती थी। महीने भर तक इस प्रकार दूध बेचने के बाद सभी दूध खरीदने वालों से रुपये एकत्र कर उसने एक पोटली में बाँध लिये और फिर चल पड़ी—वह अपने गाँव की ओर। मार्ग मे नदीतट पर किसी वृक्ष के नीचे कुछ समय तक वह विश्राम के लिए ठहर गई। ठंडी-ठंडी हवा चली। उसे नींद आ गई। उधर से कूदता-फाँदता एक बन्दर आया। उसने खाद्यसामग्री की सम्भावना से पोटली उठाई और वृक्ष की शाखा पर बैठ कर खोली। सिक्के निकले। एक सिक्का उसने नदी में फेंक दिया और दूसरा जमीन पर ग्वालिन के पास। मजा आया तो जब तक सारे सिक्के समाप्त न हो गये, फेंकता रहा। ग्वालिन उठी। रोने लगी। किसी राहगीर ने उसे समझाया— "पानी का पैसा पानी में गया। इसमें रोने की क्या बात ?"

एक अहीरी चली पय बेचन
पानी मिलाय भई खुश रानी।
पानी मिलायो सो कोऊ न जानत
जानत है एक आतम ज्ञानी॥
शहर में जाकर बेच दिया
भये दाम दूने मन में हरखानी।
बन्दर न्याय कियो अति सुन्दर
दूध को दूध रु पानी को पानी॥



२०४ : कर्मफल

क्या तीव्र पुण्य-पाप का फल यहीं मिल जाता है ?

हाँ; कहा भी है–

अत्युग्रपुण्यपापाना–
मिहैव लभते फलम् ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक फिकर का फाका करने वाला मस्त फकीर भिक्षा के लिए वस्ती मे जाकर इस प्रकार बोला करता था–"करेगा सो भरेगा ।"

एक कुलटा महिला के पति और पुत्र धन कमाने अन्यत्र गये थे। उसने सोचा कि फकीर मुझे ही सुनाकर यह वात कहा करता है। एक दिन क्यों न इसका काम तमाम कर दिया जाय, जिससे न रहेगा वॉस और न वजेगी वॉसुरी ।

एक दिन वडे प्रेम से फकीर को अपने पास बुलाकर उसे दो जहर मिले लड्डू कुलटा ने दे दिये । फकीर ने अपनी झोपडी मे पहुँच कर भिक्षा मे प्राप्त रोटी खा ली और दोनो लड्डू सुवह नाश्ते के लिए छोड दिये ।

उधर से पिता-पुत्र धन कमाकर लोट रहे थे । रास्ते में जोर से वरसात होने लगी, उससे उचने के लिए वे फकीर की कुटिया मे चले आये । भूखे परदेशियो को फकीर ने एक-एक लड्डू खाने को दे दिया । खाते ही दोनो सदा के लिए जमीन पर लुढक गये । सुवह फकीर ने गॉव वालो से जाकर यह वात कही । कुछ लोगो ने पहिचान लिया । उसके घर पर सूचना पहुँचाई । महिला समझ गई कि यह मेरे ही पाप का दुष्फल है ।

जनमा सो मरेगा,
पाका सो खरेगा।
झूठा सो डरेगा,
कोधा सो मरेगा ॥



२०५ : कर्मफल

क्या यह सच है कि हमें अच्छे-बुरे कर्म का फल इसी जीवन में मिलता है ?

हाँ; यदि पुण्य-पाप अत्यन्त उग्र हों तो ! कहा है–

अत्युग्रपुण्यपापनामिहैव लभते फलम् ।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

न्यायमूर्ति रानाडे सतारा जिले का प्रवास करने को निकले। पत्नी रमाबाई भी साथ थी । रानाडे रास्ते में एक जगह पैदल ही कुछ आगे निकल गये। रमाबाई के लिए बैलगाड़ी थी। बैठने से पहले गाड़ीवाले से डंडा लेकर रमाबाई ने मालिक से पूछे बिना सड़क के किनारे खड़े एक पेड़ से दस-बारह आम तोड़ लिये; परन्तु डंडा फेंकने के साथ ही उनके हाथ से सोने की एक चुड़ी निकलकर कही गिर गई, जो बहुत ढूँढ़ने पर भी नही मिली । आगे चलकर रानाडे ने जब यह घटना सुनी तो वे बोले–"पूछे बिना आम तोड़ना चोरी है, जिसका ईश्वर की ओर से यह दण्ड मिला है। अब तुम एक चूड़ी ही पहिनती रहो, मैं दूसरी बनवाऊँगा नहीं, जिससे अपने बुरे काम की तुम्हे याद बनी रहे। फिर घर पहुँचकर शाम को रानाडे बोले–"वह सौ रु० का आचार तो लाओ? उसे मैं चखना चाहता हूँ। मेरे हाथ से भी आज एक चाकू खो गया है। तुम्हारे पाप के छींटे मुझे भी लग गये है–ऐसा लगता है।"

पुण्यस्य फलमिच्छन्ति
पुण्यं नेच्छन्ति मानवाः ।
पापस्य फलं नेच्छन्ति
पापं कुर्वन्ति यत्नतः ।।

[पुण्य का फल चाहते है; किन्तु मनुष्य पुण्य करना नही चाहते। पाप का फल नहीं चाहते; परन्तु यत्नपूर्वक पाप करते है ।]



२०६ : कर्मफल

क्या पूर्वजन्म में किये गये कर्मों का शुभाशुभ फल इस जन्म मे भोगना ही पड़ता है ?

हाँ, फल भोगे विना कृतकर्मों से मुक्ति नही होती– ऐसा महावीर स्वामी ने कहा था–

"कडाण कम्माण न अत्थि मोक्खो ॥"

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

शोकाकुल धृतराष्ट्र ने महर्षि व्यास से पूछा– "मेरे सामने ही मेरे सौ जवान पुत्र मर गये और मैं अन्धा हूँ – यह सव मेरे किस कर्म का फल है ?"

महर्षि ने कहा– "पूर्वजन्म में आप एक राजा थे। एक बार शिकार खेलने के लिए गये थे। वहाँ आपका शिकार भागता हुआ एक सघन जगल मे जा घुसा। आपने क्रुद्ध होकर उस जगल में आग लगा दी। हजारो पशु-पक्षी और प्राणी मर गये। एक सर्पिणी अपने सौ वच्चो के साथ भागने का प्रयास कर रही थी; किन्तु उसे आपने रोकने की चेष्टा की। सर्पिणी तो किसी तरह से भाग निकली; परन्तु उसके सौ बच्चे जल मरे। सर्पिणी को रोकने की असफलता से खिन्न होकर आपने उसे तीर मारे। तीर आँखो में लगे। वह अन्धी हो गई। आपने सर्पिणी के सौ वच्चे मारने का जो पाप किया, उसी से आपके सौ पुत्र वच्चे मारे गये। सर्पिणी को अन्धत्व दिया सो इस जन्म मे आपको मिला (आप अन्धे वने)।"

यह पूर्वभव की कथा सुनकर धृतराष्ट्र को बोध हुआ कि मरने के वाद–

"कर्मानुगो गच्छति जीव एक.।"

[कर्मो से अनुगत ज़ीव अकेला ही जाता है।]

✱

२०७ : कलह

क्या तेल से आग बुझाने का प्रयास व्यर्थ है ?

हाँ; इसीलिए कहा गया है–

Do not throw oil in the fire.

(डू नोट थ्रो ऑयल इन दि फायर)

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

बम्बई की घटना है। दो भाईयों में अनबन हो जाने से सम्पत्ति का बँटवारा हो गया। बँटवारे के समय एक सुपारी के पेड़ पर झगड़ा हो गया। बड़े भाई ने उसे बोया था; किन्तु छोटे भाई के हिस्से की जमीन में वह आया था; इसलिए दोनों उस पर अपना अधिकार जता रहे थे। बड़े भाई ने एक सुझाव रखा कि एक वर्ष फल एक भाई ले और दूसरे वर्ष दूसरा। इस प्रकार बारी-बारी से फल का लाभ दोनों को बराबर मिलता रह सकेगा; परन्तु छोटे भाई ने यह प्रस्ताव स्वीकार नही किया। मामला कचहरी में गया। वर्षो तक पेशियाँ हुई। लगभग एक लाख रुपये खर्च हुए। अन्त में जज ने पेड़ कटाने का फैसला दिया। पेड़ काट कर फेंक दिया गया, तब दोनों की आँखे खुली कि किसी एक भाई के पास पेड़ रहता या दोनों आधे-आधे फल प्राप्त करते अथवा एक-एक वर्ष फल दोनों बारी-बारी से लिया करते तो दोनों लाभ में रहते। कचहरी में लाख रुपये खर्च न होते और दोनों भाइयों के बीच पेड़ के माध्यम से प्रेम भी बना रहता; परन्तु अब क्या हो सकता था !

महावीर स्वामी ने कहा है–

"अहिगरणं न करेज्ज पंडिए ॥"

[पंडित (समझदार) पुरुष को अधिकरण (कलह) नहीं करना चाहिये।]



२०८ : कलह

क्या कलह से सब दु खी होते हैं ?

हाँ मूर्ख ही कलह करता है और उससे सब दु.खी हो जाते है, मूर्ख भी दुष्ट हो सकता है। हैजलिस्ट का कथन है–मैं मूर्ख से हमेशा डरता हूँ कोई भला कैसे मान सकता है कि वह दुष्ट भी नही। है ?

I am always afraid of a fool; one cannot be sure that he is not a knave as well.

(आइ एम आल वेज एफ्रेड ऑफ ए फूल; वन केननॉट बि स्योर दैट ही इज नॉट ए नेव एज वेल)

कोई दृप्टान्त ? सुनिये–

एक आदमी वड़ा कलह-प्रेमी था। दो व्यक्तियो को झगड़ते देख कर वह प्रसन्न होता था, इसलिए वह इधर-उधर की वाते लगाकर कही भी झगडा पैदा कर दिया करता था। इस गुण के कारण लोग उसे नारद कहकर पुकारने लगे। एक दिन लोगों ने उसे कह दिया कि यदि तुम इस गाँव के ठाकुर और ठकुराइन को लडा दो तो हम जाने कि तुम अपनी कला मे सचमुच कुशल हो। नारद ने यह चुनौती सहर्ष स्वीकार करली।

वह पहले ठकुराइन के पास गया और बोला– "ठाकुर साहव तो खारे है। विश्वास न हो तो रात को उनका शरीर जीभ से चाटकर देख लीजियेगा।" फिर ठाकुर मे कहा– "आपकी ठकुराइन डायन है, भरोसा न हो तो आज ही रात को देख लीजिये कि आपके सो जाने पर वह क्या करती है।" ठाकुर कपट निद्रा मे लेटे रहे। ठकुराइन ने ज्यो ही उनके शरीर को चाटने की चेष्टा की, त्यों ही झगड़ा शुरू हो गया। अन्त मे नारद ने ही उन्हे समझा-वुझाकर कलह शान्त किया।

ज्ञानिना कलहो नास्ति।

[जो ज्ञानी होते है, वे आपस में कभी कलह नही करते।]

२०६ : कलह

कलह को क्या शीघ्र ही मिटा डालना चाहिए ?

हाँ; एक राजस्थानी सोरठा ऐसा ही संकेत करता है—

रोग अगनि अरु राड़, जाण अल्प कीजे जतन।
बधियाँ पछै बगाड़, रोक्यो रहे न राजिया॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

बादशाह ने पूछा— "बीरबल ? आज आने में देर क्यों हुई ?"

बीरबल— "जहाँपनाह ! मेरा बच्चा रो रहा था, उसे चुप करने में थोड़ी देर हो गई।"

बादशाह— "फिर भी आवश्यकता से अधिक देर हो गई, बच्चे तो जल्दी प्रसन्न हो जाते है।"

बीरबल— "नहीं होते। यदि आपको विश्वास न हो तो थोड़ी देर के लिए आप मेरे बाप बनकर मुझे चुप करने का प्रयास कीजीये।" यह कहते ही बीरबल रोने लगा। बादशाह ने उसे पुचकार कर कहा कि क्या चाहिये बेटा ? बीरबल ने कहा—"गन्ना। बादशाह ने झट एक गन्ना मँगवा दिया। बीरबल ने कहा —"इसे छील कर छोटे-छोटे टुकड़े बना दीजिए।" वैसा ही किया गया। फिर कहा—"मुझे तो दूध पीना है।" दूध आने पर कहा—"इसे शक्कर डालकर मीठा कर दीजिये।" वैसा होने पर बोला—"अब टुकड़े जोडकर पहले जैसा गन्ना बना दीजिए और दूध में से शक्कर बाहर निकाल दीजिये।" बादशाह—"ऐसा कैसा हो सकता है ?" बीरबल—"तो बालक जल्दी प्रसन्न भी कैसे हो सकता है ?" बादशाह को बीरबल की बात सच्ची माननी पड़ी।

ठीक ही कहा है—

कलहकारो असमाहिकरे।

[कलह करने वाला व्यक्ति असमाधि (अशान्ति या असन्तोष) करने वाला होता है।]



२१० : कला

क्या कला से सन्मान मिलता है ?

हाँ; लोक में कला ही राजाओं के द्वारा पूजी जाती है, कुलीनता नही। अन्य देवों के रहते भी शंकर जी अपने मस्तक पर कलावान् (चन्द्रमा) को ही धारण करते है–

प्रभुभि. पूज्यते लोके,
कलैव न कुलीनता।
कलावान् मान्यते मूर्ध्नि,
सत्सु देवेषु शम्भुना॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

बीरबल बोलने की कला में अत्यन्त कुशल था। इसीलिए बादशाह उसका सन्मान करते थे। एक दिन भरी सभा मे दोनो की बातचीत यो हुई–"बीरबल ! दुनियां में सबसे बडा कृतघ्न कौन होता है ? "हुजूर ! जामाता (दामाद); क्योंकि बहुत कुछ पा लेने पर भी अपने ससुर से सदा असन्तुष्ट रहता है।" "अच्छा, यह बताओ कि सबसे बडा कृतज्ञ कौन है ?" "जहाँपनाह ! कुत्ता; क्योंकि रूखा-सूखा रोटी का टुकड़ा खाकर भी वह सदा खुश रहता है और प्राणों की पर्वाह न करके अपने मालिक के घर की और मालिक की रक्षा करता है।"

बादशाह इस उत्तर से प्रसन्न हुआ।

कलावत. सैव कला,
ययाध: क्रियते भव.।
बह्वीभिश्च कलाभि: किम्,
याभिरङ्क. प्रदर्श्यते॥

[कलावान् (चंन्द्रमा) की सच्ची कला वही है, जिससे भव (शंकर; संसार) नीचे किया जाता है। उन अनेक कलाओ से क्या ? जिनके रहते भी कलंक प्रकट होता है।]

२११ : कला

सूर्य को पकड़कर जमीन पर पटकने के समान मूर्खों को कविता समझाना भी क्या असम्भव है ?

हाँ; कविता समझाइबो मूढन को
सविता गहि भूमि पै डारिबो है।"

कोई दृष्टान्त ? सुनिये–

एक बार एक संगीतकार अपनी कविता सुन्दर स्वरों मे गाकर गाँव वालों के एक समूह को सुना रहा था। उसके हाथ मे वीणा थी। वीणा बजाने मे वह बहुत प्रवीण था। परन्तु सुनने वाले रस नही पा रहे थे–

अन्ध को बैठ बतावत आरसी
बहरे को जाकर राग सुनाई।
हीरो गँवार के हाथ दियो जस
श्वान के अंग सुगंध लगाई॥
मूरख हाथ तमोल दियो
जिमि गर्दभ पीठ पै झूल चढ़ाई।
मूरख सामने ज्ञान कह्यो जिमि
भैंस के सामने बीन बजाई॥

जो कला में रुचि रखता हो वही कलाकार की कद्र कर सकता है। रुचि भी उसी को होती है, जो उस विषय की सामान्य जानकारी रखता हो। गाँव मे रहने वाले अनपढ़ किसान बेचारे संगीत क्या समझे ? कविता के भावों को कैसे हृदयंगम करें ? कैसे काव्यमय संगीत का रस लूटें ? इसमें श्रोताओं की तुलना में कलाकार ही अधिक जिम्मेदार है। उसे श्रोताओं के स्तर की ही रचनायें सुनानी चाहिए। एक कवि ने उस संगीतकार से इस प्रकार कहा–

ये सब गायन[1] में बड़े, तू गायन परबीन।
ये ग्राहक करबीन[2] के, ले बैठा कर[3] बीन[4]॥

---

१. गायों मे बड़े=बैल=मूर्ख। २. जुवार की कड़बी। ३. हाथ। ४. वीणा।



२१२ : कला

क्या कला का विकास स्वतन्त्रता मे ही होता है ?

हाँ; रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने यह बात अपनी काव्यमय भाषा में इस प्रकार व्यक्त की है–

"झरना कह रहा है कि चट्टानो से मुक्त होकर ही मै अपना सगीत पा सका हूँ।"

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

सुविख्यात सगीतकार तानसेन के गुरु का नाम था–हरिदासजी। वे अपनी मस्ती मे भजन गाते थे स्वेच्छा से, किसी के कहने से नही। बादशाह अकबर ने एक दिन तानसेन से कहा– "जब आप इतना अच्छा गाते है तो आपके गुरु और भी अच्छा गाते होगे।"

तानसेन– "इसमे क्या सन्देह है ?"

बादशाह– "तो फिर कभी हमे उनका सगीत भी सुनवाइये न ?"

तानसेन– "वे अपनी मस्ती मे गाते है, किसी के कहने से नही गाते। हाँ, यदि आप मेरे साथ उनके आश्रम मे चले और कही छिपकर बैठ जायँ तो मैं गुरुदेव का सगीत आपको सुनवा सकता हूँ।"

अकबर ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। दोनों हरिदासजी के आश्रम मे पहुँचे। अकबर छिपकर बैठ गया। तानसेन ने गुरुदेव को प्रणाम किया। फिर एक भजन किसी रागिनी मे गाना प्रारम्भ किया और बीच-बीच मे जान बूझकर कुछ विस्वर गाया। यह देखकर हरिदासजी ने तानसेन की त्रुटि सुधारने के लिए स्वय गाना प्रारम्भ कर दिया। अकबर सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ। लौटते समय अकबर ने मार्ग मे पूछा– "तानसेन! आपके गाने से आपके गुरुजी का गाना कई गुना अच्छा क्यों है ?" तानसेन ने उत्तर दिया– "जहांपनाह! गुरुजी अपनी इच्छा से गाते है, किन्तु मैं आपकी इच्छा से गाता हूँ; इसीलिए दोनो के सगीत में अन्तर है।"

कलारत्नं संगीतम्।

[कलाओं में श्रेष्ठ सगीत है।]

२१३ : कवि

क्या कवि की व्यभिचारी और चोर से तुलना की जा सकती है ?

हाँ; ये तीनों सुवर्ण (क्रमशः सुन्दर अक्षर, सौन्दर्य और स्वर्ण) को ढूंढते हैं, चरण धरते हुए (पद्य का चतुर्थांश बनाते हुए; पाँव रखते हुए) चिन्ता करते हैं और चारों तरफ देखा करते है—

चरन धरत चिन्ता करत
चितवत चारिहुँ ओर ।
सुवरण को ढूंढ़त फिरत
कवि, व्यभिचारी, चोर ॥

कवि ने ही कवि का ऐसा वर्णन किया है। ऐसा होता है—कवि का चमत्कार !

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

एक चारण था। वह उदयपूर के महाराणा भीमसिंह की प्रशस्ति का वर्णन अपनी सम्पूर्ण बौद्धिक शक्ति से करने के बाद भी जब महाराणा की ओर से पुरस्कृत नही हुआ, तब खिन्न होकर उसने एक चुभते सोरठे की रचना करके उसका पहला-दूसरा चरण इस प्रकार सुनाया—

भीमा ! तूं भाठोह,
मोटा डूंगर मायलो ।

यह सुन महाराणा को क्रुद्ध देखकर मन्त्री ने कवि को संकेत किया कि वह ऐसा वर्णन न करे; अन्यथा उसका जीवन संकट में पड़ जायगा। तब कवि ने सोरठे का अगला अंश यों सुनाया—

कर राखूं काठोह,
शंकर ज्यूं सेवा करूं ॥



२१४ : कवि

क्या आप किसी ऐसे कवि जानते हैं, जिसने चापलूसी न करके खरी-खोटी सुनाई हों ?

हाँ; वह कवि है—बाँकीदास ।

कोई दृष्टान्त ? सुनिये—

जोधपुर नरेश अजितसिंह का वध करके उनके पुत्र ने सिंहासन सँभाला तो बाँकीदास बोले—

वखता ! बखतावाहिरा[1], तैं मार्यो अजमाल[2], ।
हिंदुआणीरो सेहरो, तुरकाणीरो साल[3] ।।

एक दिन अपने घोड़े को 'वापा' कहकर बखतसिंह उसकी पीठ थपथपा रहे थे, तब बाँकीदास ने मौके का लाभ उठाकर कहा—

वापा मत कह बखतसी ! कापत है के काण[4] ।
एकण बापा फिर कह्यॉ, तुरग तजेला प्राण ।।

वात चुभ गई । बाँकीदास को दरबार से निकाल दिया गया । जयपुर पहुँचे, वहाँ भी माता की हत्या करके राजगद्दी हथियाने की घटना हो चुकी थी, बोले—

कॉइ करॉ जावॉ कठे। बाप मारने बेटो बठे ।।
माय मारने वाँध्यो मौर। राठौड़ कछावा दोनुं चौर ।।

वहाँ भी उनकी कड़वी बात नही सही गई। किसी से कवि को सन्मान नही मिला । उदयपुर आये । वहाँ महाराणाओं के उज्ज्वल चरित्र की प्रशंसा की । महाराणा ने शिरोपाव भेंट किया । इसकी आलोचना में बोले—

वांका वाँकीदास मे एती वाताँ होय ।
शिरोपाव[5] तो एक पण, देशनिकाला दोय ।।

महाराणा ने तत्काल एक शिरोपाव और मँगवा कर कुल दो शिरोपाव प्रदान किये ।

---

१. दुर्भाग्यशाली । २. अजितसिंह । ३. चुभने वाला । ४. मर्यादा । ५. बहुमूल्य सम्पूर्ण पोशाक ।

२१५ : कविता

क्या कविता भावनाओं से रंगी हुई बुद्धि है ?

हाँ ;–

Poetry is intellect coloured by feelings.

(पोयट्री इज इन्टैलेक्ट कलर्ड बाइ फीलिंग्ज)

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक ठाकुर के पास कोई भाट गया। उसने अच्छी से अच्छी कविताएँ सुनाई, परन्तु समझ-शक्ति के अभाव में ठाकुर को कोई आनन्द नहीं आया। अन्त मे भाट ने यह पद्य सुनाया–

आपका नाम तो हो गया ठाकुरा
गाम को नाम कब हाथ लेसी।
आप तो धन्न पे सर्प हो सोवसो
जो न जाचक्क ने दान देसी ॥

यह सुनकर ठाकुर ने कामदार को आज्ञा दी कि भाट को एक ऊँट दे दिया जाय। कामदार ने लँगड़ा ऊँट दे दिया, क्योंकि

परहित कर दे नष्ट स्वार्थवश
यह लेखा ससारी का।
मसल है सच, देवे दाता और
दुखे पेट भंडारी का ॥

उधर भाट ने ठाकुर से कहा–

हुकुम हुओ तो जाखोड़ा को, ठूंटो ऊँट खन्दायो।
ठाकुर साव ! ऊपर से कह्यो के नीचे से फरमायो ?

यह सुनकर ठाकुर ने कामदार को खूब फटकारा और एक स्वस्थ ऊँट दिलवा दिया। उन पर सवार होकर भाट अपने देश चला गया।

काव्य सम्बन्धिनी कीर्तिः स्थायिनी निरपायिनी।

[काव्यरचना से जो कवि को कीर्ति मिलती है, वह स्थायी भी होती है और निर्दोष भी।]

*

२१६ : कविता

क्या काव्य रचना दुष्टों के लिए भी होती है ?

हाँ, एक कवि ने दुष्टों से कहा था–"हे दुष्टो ! मेरी वात तुम मत सुनो, स्वर्ग में अमृत सुलभ है; किन्तु वह तुम्हारे लिए दुर्लभ है, (तुम्हारा आचरण ऐसा नही है कि तुम्हे स्वर्ग मिल सके)। इसलिए तुम्हारा उपकार करने वाला काव्यामृत हम वनाते है, उसे वहुत आदर के साथ पियो–

रे रे खलाः ! श्रृणुत मद्वचनं समस्ताः
स्वर्गे सुधास्ति सुलभा न तु सा भवद्भ्यः ।
कुर्मस्तदत्र भवतामुपकारकारि
काव्यामृत पिबत तत्परमादरेण ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

दो मित्र थे। दोनों कविता के प्रेमी थे। कविता रचने का अभ्यास भी किया करते थे। एक-दूसरे को स्वरचित कविताएँ सुनाकर उन्हें अधिक से अधिक शुद्ध करने का प्रयास भी करते थे। धीरे-धीरे वे सिद्धहस्त कवि बन गये।

एक दिन वे अपने-अपने घर से निकलकर एक-दूसरे से मिलने को चल पडे। मार्ग में आमना-सामना हो गया। एक ने मनोविनोद की दृष्टि से वही खडे-खड़े एक पक्ति वनाकर इस प्रकार सुनाई–

"मित्र ! तुम्हारे वदन पर
मूरखता दरसात।"

यह सुनकर दूसरे ने तत्काल उत्तर दिया–

"मो मुख दर्पन विमल अति
आज विदित भो तात !"

[अर्थात् मुझे आज ही मालूम हुआ कि मेरा मुँह अत्यन्त स्वच्छ दर्पण है। इसका आशय यह निकला कि मूर्ख तुम हो, मै नही।]

२१७ : कविता

क्या कविता मे रहस्य छिपाया जा सकता है ?

हाँ; कुशल कवि ऐसा कर सकते हैं; परन्तु वे जानते-देखते सब कुछ हैं। उनकी नजर पैनी होती है, वे भला क्या नही देखते ?

"कवयः किं न पश्यन्ति ?"

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

किसी गाँव का जुलाहा तिकड़म के बल पर दूसरे नगर का राजा बन बैठा। एक दिन वह सुन्दर पोशाक पहने हुए सिंहासन पर विराजमान था कि सहसा उसकी नजर एक चारण पर पड़ी, जो उसी के गाँव का निवासी था। राजा मन में डरने लगा कि यदि कहीं इसने मेरे जुलाहा होने का रहस्य खोल दिया तो सिंहासन छिन जायेगा। फलतः राजा ने दूर से ही चिल्लाकर कहा— "इसे निकाल दो।" चारण पोशाक से उसे राजा समझकर ही वहाँ आया था, परन्तु आवाज से उसे पहचान लिया और तब बोला—

इतना क्यों गुर्राता बाबा !
मैं तुझसे न तनिक डरता।
वह दिन तो तू भूल गया जब
यों कर यों कर यों करता ॥

अन्तिम पंक्ति मे उसने कपड़ा बुनने के समय की आवाज ध्वनित की थी, जिसे राजा तो समझ गया; किन्तु अन्य कोई नही समझ सका। चारण की इस काव्यकुशलता से प्रसन्न होकर राजा ने उसको सम्मानपूर्वक अपने पास बुलाया। फिर उसने एक पद्य को सुनाया, जिसमें हत्थी, नली, ताना आदि के नाम उसी शैली मे प्रकट किये।

हाथी तो हलकंता छोड़ा,
छोड़ा नलपत राय।
ताणा नगरी छोड़ के अरे
कहाँ विराजे आय ॥



२१९ : कविता

काव्य सुनने-समझने वाले क्या दुर्लभ होते है ?

हाँ; काव्य बनाना कठिन है–वन भी जाय तो सुनाना कठिन है और सुनाया भी जाय तो सुनकर उसका रस लेने वाले लोग दुर्लभ हो जाते है–

दुक्खं कीरई कव्वं,
कव्वम्मि कए पउंजणा दुक्खम् ।
संते पउंजमाणे,
सोयारा दुल्लहा होंति ॥

कोई दृष्टन्त ?

सुनिये–

राजस्थान का एक भाट घूमता-घामता पटियाले पहुँच गया। वहाँ जाट राजा का राज्य था । भाट ने उसके समीप पहुँचकर नाना प्रकार के काव्य सुनाये; परन्तु राजाने न कोई प्रसन्नता व्यक्त की, न पुरस्कार ही दिया । अन्त में यह दोहा बना कर सुनाया–

रेशम का टुकड़ा भला,
साबत भला न टाट ।
राजपूत राजा भला,
रहे जाट तो जाट ॥

यह सुनते ही जाट ने उसे सोने का कण्ठा उतार कर दे दिया जिससे राजस्थान में जाकर कहीं यह वदनामी न फैलाये कि जाट राजा कंजूस निकला ।

इतर दुःखशतानि यदृच्छया
वितर तानि सहे चतुरानन !
अरसिकेषु कवित्वनिवेदनम्
शिरसि मा लिख मा लिख मा लिख ॥

[हे विधाता ! दूसरे सैकड़ों दुःख मुझे दे देना । मैं उन्हें स्वेच्छा से सह लूंगा; परन्तु अरसिकों को काव्य सुनाना पड़े – ऐसा मेरे ललाट में मत लिखना–मत लिखना–मत लिखना ।]

२२० : काम

क्या कामदेव मुर्दे को भी मारता है ?

हाँ; दुवला, काना, लँगड़ा, वहरा, विना पूँछ वाला, घावों वाला, मवाद के गीले शरीर वाला, सैकड़ों कृमियो से युक्त शरीर वाला, भूखा, बूढ़ा तथा जिसके गले में मटके का गला लटका रहा है –ऐसा कुत्ता भी कुतिया का पीछा करता है। कामदेव घायल को भी मारता ही है–

कृशः काणः खञ्जः
श्रवणरहितः पुच्छविकलो,
व्रणी पूयक्लिन्नः
कृमिकुल शतैराचिततनु ।
क्षुधाक्षामो जीर्णः
पिठरककपालावृतगल.
शुनीमन्वेति श्वा
हतमपि निहन्त्येव मदनः ।।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

मियाँ-वीवी मे शादी हो गई, परन्तु दोनों अत्यन्त वूढे थे। वे समझ रहे थे कि साथी तो जवान होगा ही। दोनों पक्षों से यह वात छिपाई गई थी कि दोनों वर-वधू वूढे है। शादी के वाद मियाँजी ने अत्यन्त खुशी जाहिर करते हुए अपने बूढ़े होने की वात इन शब्दों में प्रकट की–

"इकदन्ता मीयाँ भला"

मर्द तो एक दाँत वाला भी अच्छा होता है। काम से पीड़ित होकर वह जवान स्त्री को भी प्रसन्न कर सकता है। उधर वीवी के मुँह में एक भी दाँत नही था। वह बोल उठी–

"हाड़ों का क्या लाड़?"

[हड्डियों से क्या प्यार ? सारे दाँत गिर भी जायँ तो चलेगा, मेरे मुँह में कहाँ है ?]

✱

२१९ : कविता

काव्य सुनने-समझने वाले क्या दुर्लभ होते हैं ?

हाँ; काव्य बनाना कठिन है–बन भी जाय तो सुनाना कठिन है और सुनाया भी जाय तो सुनकर उसका रस लेने वाले लोग दुर्लभ हो जाते है–

दुक्खं कीरई कव्वं,
कव्वम्मि कए पउंजणा दुक्खम् ।
संते पउंजमाणे,
सोयारा दुल्लहा होंति ॥

कोई दृष्टन्त ?

सुनिये–

राजस्थान का एक भाट घूमता-घामता पटियाले पहुँच गया। वहाँ जाट राजा का राज्य था। भाट ने उसके समीप पहुँचकर नाना प्रकार के काव्य सुनाये; परन्तु राजाने न कोई प्रसन्नता व्यक्त की, न पुरस्कार ही दिया। अन्त में यह दोहा बना कर सुनाया–

रेशम का टुकड़ा भला,
साबत भला न टाट।
राजपूत राजा भला,
रहे जाट तो जाट ॥

यह सुनते ही जाट ने उसे सोने का कण्ठा उतार कर दे दिया जिससे राजस्थान में जाकर कही यह बदनामी न फैलाये कि जाट राजा कंजूस निकला।

इतर दुःखशतानि यदृच्छया
वितर तानि सहे चतुरानन !
अरसिकेषु कवित्वनिवेदनम्
शिरसि मा लिख मा लिख मा लिख ॥

[हे विधाता ! दूसरे सैंकड़ों दुःख मुझे दे देना। मैं उन्हे स्वेच्छा से सह लूंगा; परन्तु अरसिकों को काव्य सुनाना पड़े – ऐसा मेरे ललाट में मत लिखना–मत लिखना–मत लिखना।]



क्या कामदेव मुर्दे को भी मारता है ?

हाँ; दुबला, काना, लँगड़ा, बहरा, बिना पूँछ वाला, घावों वाला, मवाद के गीले शरीर वाला, सैकड़ों कृमियों से युक्त शरीर वाला, भूखा, बूढा तथा जिसके गले में मटके का गला लटका रहा है –ऐसा कुत्ता भी कुतिया का पीछा करता है। कामदेव घायल को भी मारता ही है–

कृशः काणः खञ्जः
श्रवणरहितः पुच्छविकलो,
व्रणी पूयक्लिन्नः
कृमिकुल शतैराचिततनु ।
क्षुधाक्षामो जीर्णः
पिठरककपालावृतगलः
शुनीमन्वेति श्वा
हतमपि निहन्त्येव मदनः ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

मियाँ-बीवी मे शादी हो गई; परन्तु दोनों अत्यन्त बूढ़े थे। वे समझ रहे थे कि साथी तो जवान होगा ही। दोनों पक्षों से यह बात छिपाई गई थी कि दोनों वर-वधू बूढे है। शादी के बाद मियाँजी ने अत्यन्त खुशी जाहिर करते हुए अपने बूढ़े होने की बात इन शब्दों में प्रकट की–

"इकदन्ता मीयाँ भला"

मर्द तो एक दाँत वाला भी अच्छा होता है। काम से पीड़ित होकर वह जवान स्त्री को भी प्रसन्न कर सकता है। उधर बीवी के मुँह में एक भी दाँत नही था। वह बोल उठी–

"हाडों का क्या लाड़?"

[हड्डियों से क्या प्यार? सारे दाँत गिर भी जायँ तो चलेगा, मेरे मुंह में कहाँ है ?]

२२१ : कायरता

कायरता छिप नहीं सकती—क्या आप इससे सहमत है ?

हाँ; यदि कुत्ते को सोने का सुन्दर हार पहिना दिया जाय तो क्या वह सिंह के समान तेजस्वी बन जायगा ?

द्युति सैंहीं किं श्वा
धृतकनकमालोऽपि लभते ?

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

अच्छे वेतन के लालच में एक कुम्हार का बेटा भी सेना में भर्ती हो गया। 'सिर मुंड़ाते ही ओले पड़े' इस कहावत के अनुसार जिस टुकड़ी में वह भर्ती हुआ था, उसी को युद्ध में जाने का आदेश मिल गया।

कुम्हार की पत्नी उदास हो गई—यह सोचकर की मेरा बेटा अब शायद ही जीवित लौटे। सासू की उदासी देखकर बहू ने कहा—

बहुवर पूछे सासूजीने
क्यूं छो आज उदासी ?
म्हारा कन्तरो मने भरोसो
कुशल क्षेम घर आसी ॥
राड करंता लारे रेसी
वातां घणी वणासी।
म्हारो ननंदलड़ीरो वीरो
वेगो भागो आसी ॥

हुआ भी ऐसा ही, जैसा अनुमान था। बेटे को देखकर—

राजी हुई सासूजी बोल्या—
बात अगम की जांची।
थारो कन्त निवडियो ऐसो
थूं सांची छे सांची ॥

२२२ : कुटिलता

क्या सत्य छल से दूर होता है ?

हाँ; जो छल से लिपटा हुआ रहता है, वह सत्य नही हो सकता—

न तत्सत्यं यच्छलेनानुविद्धम् ।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

एक भूख-प्यास से व्याकुल ब्राह्मण जंगल मे गया। वहाँ से घास काट लाया। उसकी सीकों को चाकू से काटकर जमाया। फिर एक लाल कपड़े में उसे बाँधकर किसी सेठ के पास ले गया। सेठजी को उसने बताया कि बड़े परिश्रम से मैंने यह भागवत तैयार की है। यदि आप इसे खरीद लेगे तो बड़ी कृपा होगी।

सेठ ने उसका मूल्य जानना चाहा। ब्राह्मण ने कहा कि ज्ञान का कोई मूल्यांकन नही किया जा सकता। वैसे बारह सौ रुपये में आप यह प्रति खरीद सकते है। सेठजी ने बन्द लिफाफे में दो सौ रुपये के नोट रखकर उसे देते हुए कहा—"आपने जो मूल्य माँगा, उतनी ही राशि इसमें बन्द है, सिर्फ पहला अंक नही है।"

ब्राह्मण ने कहा—"कोई बात नहीं, इस ग्रन्थ में भी सिर्फ पहला अक्षर नहीं है।"

कुछ समय बाद सेठजी ने एक अच्छे विद्वान को बुलाकर भागवत सप्ताह बिठाया। जब ग्रन्थ खोला गया तो उसमें घास निकली। ब्राह्मण को बुलाया तो उसने स्पष्ट किया कि 'भागवत' का पहला अक्षर निकालने पर 'गवत' (घास) ही रहता है।

आर्जवं हि कुटिलेषु न नीतिः ।

[कुटिलों के साथ ऋजुता से व्यवहार नही किया जाता।]



२२३ : कुतर्क

क्या जगत भगवान का एक खिलौना है ?

हाँ; तुलसीदास जी ऐसा ही मानते है–

जग पेखन तुम पेखनिहारे ।
विधि हरि सभु नचावनहारे ॥
तेउ न जानहिं मरम तुम्हारा ।
और तुम्हहिं को जाननिहारा ?

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक जैनाचार्य का प्रवचन हो रहा था । कुछ लोग कुतर्कों से सभा में अपना अस्तित्व सिद्ध करने को सदा उत्कण्ठित रहते हैं । एक ऐसे ही आदमी ने खड़े होकर प्रवचन के बीच में ही प्रश्न किया– "खुदा की इच्छा के बिना पत्ता भी नहीं हिलता । इस सिद्धान्त से क्या आप सहमत है?"

अनेकान्त की भाषा में इसका उत्तर दिया गया कि इस सिद्धान्त में आंशिक सत्य है, परन्तु प्रश्नकर्ता को सन्तुष्ट तो होना था ही नही । वह कहने लगा कि यह सिद्धान्त पूर्ण सत्य है, आंशिक नही । कोई भी प्राणी या तो जिन्दा होगा या मुर्दा । वह आंशिक रूप से जिन्दा नहीं होता ।

जैनाचार्य ने उससे खड़े होने के लिए कहा और पूछा– "तुम किसकी इच्छा से खड़े हुए हो ?" उसने कहा–खुदा की ।" फिर एक पाँव ऊपर उठाने को कहा और वही प्रश्न किया । उत्तर भी वही मिला । फिर दूसरा पाँव उठाने का आदेश दिया । अपनी बात रखने के लिए उसने उछल कर दूसरा पाँव भी उठाया और धड़ाम से गिर कर हँसी का पात्र बना ।

विना विचारे यदि काम होगा ।
कभी न अच्छा परिणाम होगा ॥



२२४: कुतर्क

क्या अनुभव से तर्क का महत्व अधिक है ?

हाँ; अनुभव निजी होता है, तर्क सार्वजनिक। तर्क से ही सत्य का निर्णय होता है; परन्तु शर्त यह है कि वह सुतर्क हो, कुतर्क नही। शास्त्रकार कहते हैं–

अणता सुहेऊ अणंता कुहेऊ।

(सुतर्क अनन्त है और कुतर्क भी अनन्त है।)

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

सरिता कल-कल स्वर से वह रही थी। कुछ मित्र घूमते हुए उसके तट पर पहुँचे। वहाँ किसी ने कहा– "यह सरिता पहाड से निकल कर यहाँ आई है।"

दूसरा बोला–"गलत। पहाड़ में तो पत्थर होते है–"चट्टान होती है। यदि एक पत्थर को निचोड़कर आप उससे पानी की कुछ बूँदे भी निकाल दे तो मैं मान सकता हूँ कि आप की वात ठीक है।"

तीसरा बोला– "पहाड़ को पसीना आता है और वही नदी के रूप में वह निकलता है। यदि अपने छोटे से शरीर में ही पसीने के रेले निकल आते है तो फिर पहाड का शरीर, जो इतना विशाल होता है, नदी नही वहायेगा ?"

चौथा– "गलत। ठड मे शरीर पर पसीना नही आता, फिर भी नदी वरावर वहती दिखाई देती है।"

पाँचवे मित्र ने वैज्ञानिक दृष्टि से सरिता के उद्‌गम का वास्तविक कारण वताया। उससे सव सन्तुष्ट हो गये।

विचाराद् ज्ञायते तत्त्वम्
तत्त्वाद्विश्रान्तिरात्मनि।

[विचार से तत्त्वज्ञान होता है और तत्त्वज्ञान से आत्मा को विश्राम (सन्तोष) मिलता है।]

※

२२५ : कुनारी

क्या नारी की खुशी से घर खुश रहता है ?

हाँ; सादी का कथन है—उस मकान पर खुशी के दरवाजे बन्द कर दो, जिसे तुम औरत की बुलन्द आवाज से गूंजता सुनो।

Shut the door of pleasure on that house which you hear resounding with the loud voice of a woman

(शट दि डोर ऑफ प्लेजर औन दैट हाउस व्हिच यू हियर रिसाउण्डिग विथ दि लाउड वॉइस ऑफ ए वुमन)

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

सन्त तुकाराम की कर्कशा पत्नी ने घर के बाहर की दीवाल पर लगी खूँटी से एक रस्सी टाँग दी और उसके पास एक मूसल रख दिया। तुकाराम की अनुपस्थिति में घर आये साधु-सन्तों के पूछने पर उसने बताया कि वे आजकल निर्धनता से पागल हो गये हैं, इसलिए सभी आगन्तुकों को रस्सी से बाँधकर मूसल से पीटते हैं। जो एक बार मार खा लेता है, वह दुबारा नहीं आता। आप आराम कीजिये, वे आते ही होंगे। मैं रसोई तैयार कर देती हूँ तब तक। साधु-सन्त यह सुनकर वहाँ से भाग गये। थोड़ी देर बाद तुकाराम घर आये। उन्होंने सारी कथा सुनी। नारी ने उन साधुओं को भगाने की जो चाल चली थी, उसे व्यर्थ करने के लिए तुकाराम भी उसी दिशा में रस्सी-मूसल लेकर भागे। दूर से ही चिल्लाये—"महात्माओ! थोड़ी सी रसोई खाते जाइये!" वे समझे कि तुकाराम थोड़ी-सी मार खाने के लिए कह रहे हैं और रस्सी मूसल लेकर पीछा कर रहे हैं, इसलिए वे एकदम ओझल हो गये।

कुदारदारैश्च कुतो गृहे रतिः ?

[कर्कशा नारी हो तो घर में आनन्द कहाँ ?]



२२६ : कुपुत्र

क्या पुत्र का गुणवान होना आवश्यक है ?

हाँ; जो विद्वान और धार्मिक न हो–ऐसे पुत्र के उत्पन्न होने से क्या लाभ ?

कोऽर्थः पुत्रेण जातेन
यो न विद्वान्न धार्मिकः ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक पुरुष का पुत्र कुसंगति में पड़कर दुराचारी हो गया। घर-वाले और पूरे गाँव वाले उससे परेशान थे। आखिर सब ने मिलकर यह निर्णय किया कि उसे गाँव से बाहर निकाल दिया जाय। इसके लिए एक कागज पर प्रत्येक घर के मुखिया के हस्ताक्षर लिये गये। अन्त मे हस्ताक्षर लेने के लिए लोग उस पुरुष के घर गये। हस्ताक्षर के लिए उसने कलम उठाई भी, किन्तु उसका हाथ काँपने लगा; इस लिए कलम एक ओर रखकर उसने सबसे निवेदन किया कि मुझे दो महीने का समय और दीजिये। इस अवधि में यदि मैं पुत्र को नहीं सुधार सका तो इस पर हस्ताक्षर कर दूंगा। पिता की यह बात पास ही खडा पुत्र सुन रहा था। वह रोता हुआ पिताजी के चरणों में गिर कर बोल उठा–"मै बुरी आदतें छोड़ रहा हूँ। भविष्य में मेरी कोई शिकायत नही आयगी। क्षमा करें।"

निरुत्साहं निरानन्दम्
निर्वीर्यमरिनन्दनम।
मा स्म सीमन्तिनी काचि–
ज्जनयेत्पुत्रमी दृशम् ॥

[कोई स्त्री ऐसा पुत्र उत्पन्न न करे, जो उत्साह-रहित हो, अप्रसन्न रहना हो, कमजोर हो तथा शत्रुओं को खुश करने वाला हो (ये सब कुपुत्र के लक्षण है)।]

✱

२२७ : कुभार्या

क्या एक घर में दो नारियाँ हों तो वे झगड़ेंगी ?

हाँ; गङ्ग कवि ने कहा है–

दोय सिंह वन एक दोय गज खम्भे वन्धे ।
दोय खड्ग इक म्यान दोय राजा दल सन्धे ॥
दोय होयँ परधान अवस ही राज गँवावें ।
दोय होयँ घर नार नित्त उठ कलह मचावें ॥
रोगी एक ने वैद्य दो रोग न खोवे जाय मर ॥
'गङ्ग' कहे अकवर ! सनो दो दो भला न एक घर ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक सुनार की दो पत्नियाँ थीं। उन्होंने सेवा के लिए सुनार का शरीर वाँट लिया था। एक का दायाँ भाग था और दूसरी का वायां। एक दिन थका-माँदा सुनार वाहर से घर आकर लेट गया। एक औरत को पाँव दवाने का आदेश दिया। वह वायाँ पाँव दवाने लगी दूसरी औरत मूसल से ओखली में मिर्ची खाँड रही थी।

इधर एक पाँव में राहत मिल जाने पर सुनार ने उससे कहा कि जरा दायाँ पाँव भी दवा दो; लेकिन वह पाँव उसके हिस्से में नहीं था, इसलिए उँगली मोड़कर उस पर मार दी। छोटी वच्ची ने जाकर यह वात अपनी माँ से कह दी कि दूसरी माँ ने पिताजी के दाएँ पाँव में उँगली मार दी है। सुनते ही औरत को गुस्सा चढ आया। वह मुट्ठी भर मिर्ची और मूसल लेकर वहाँ पहुँच गई। पति की वाईं आँख मे मिर्ची फेंक दी और वाएँ पाँव में मूसल मार दिया। पति ने देखा कि पहली औरत भी चुप नहीं रही। उसने खुरपे से दाईं आँख फोड़ दी और दाएँ अंग को लाठी से वह पीटने लगी। वेचारे पतिदेव ने चिल्लाते-चिल्लाते दम तोड़ दिया।

वहु वानिच, वहु वेटियाँ, दो नारी भरतार ।
उसको क्या है मारना, वह मरता हर वार ॥



२२८ : कुलटा

क्या बुरी पत्नी की अपेक्षा पत्नी का न होना श्रेष्ठ है ?

हाँ; "वर न दारा न कुदारदारा।"

कोई दृष्टान्त ? सुनिये—

पति के सोने के वाद रात को एक स्त्री किसी परपुरुष से मिलने जाया करती थी। एक दिन पति को पता चल गया तो उसने पत्नी के चली जाने के वाद किवाड के भितर साँकल लगा दी। पत्नी जब लौटी तो किवाड को धक्का दिया। न खुलने पर वाहर की साँकल खटखटाई। पति ने डाँटा कि जहा तेरा प्यारा पुरुष है, वही चली जा, यहाँ तेरे लिए कोई जगह नही है।

इस पर पत्नी ने कहा कि यदि तुम किवाड नही खोलोगे तो मै इस पास वाले कुए मे डूव मरूँगी। पुलिस तुम्हे पकड़ेगी और फाँसी की सजा देगी। पति ने कहा कि अच्छा है, अगर तू डूव मरेगी तो मुझे फाँसी की सजा पाने मे भी खुशी ही होगी।

फिर स्त्री कुए के समीप गई। वहाँ कपडे धोने के लिए एक वडा-सा पत्थर पडा, उसे कुए मे डालकर वह अपने घर के पास छिप गई। उधर "धड़ाम" की ध्वनि सुनकर पति पत्नी के मरने की आशका से किवाड़ खोलकर कुए के पास दौड़ पड़ा। उधर औरत ने घर मे घुस कर किवाड़ वन्द कर दिए और भीतर से साँकल भी लगा दी। पति उसकी चालाकी समझ गया। घर के पास आकर उसने किवाड़ खोलने का आग्रह किया, परन्तु भीतर से उसी के समान स्वर मे डाँटती हुई स्त्री वोली कि जहाँ तुम्हारी प्यारी औरत है, वही जाओ। इस घर मे तुम्हारे लिए कोई जगह नही है। पुरुष ने कहा कि किवाड़ खोल दो। मैं तुम्हे माफ करता हूँ। किवाड़ खुलने पर वह भीतर गया और अपनी खाट पर पड़ा हुआ चिन्ता की आग में जल मरा।

कुदारदारैश्च गृहे कुतो रतिः ?

[कुलटा स्त्री हो तो घर मे सुख कहाँ ?]

✱

२२६ : कुलीनता

क्या कुलीन व्यक्ति शिष्ट होता है ?

हाँ; उसकी महिमा प्रशंसनीय होती है। कुल में जन्म लेने वाला ऐसा व्यक्ति धन्य है–

कुले कश्चिद्धन्यः प्रभवति नरः श्लाघ्यमहिमा।

कोई दृष्टान्त ? सुनिये–

कुछ लड़के चकरी घुमाने का खेल खेल रहे थे। वही कुछ दूर पर इमाम अबू हनीफा अपने शिष्यो को उपदेश दे रहे थे। उसी समय असावधानी के कारण चकरी घूमती हुई उन लोगो के बीच चली गई। खेल रुक गया। चकरी की जरूरत थी, परन्तु बड़े आदमियो के बीच जाकर लाये कौन ? सभी खिलाडी शरमा रहे थे। चकरी कैसे प्राप्त की जाय ? इसके लिए विचार विमर्श कर ही रहे थे कि उनमे से अकस्मात् एक बालक आगे आया। उसने कहा–"मै अभी जाकर एक मिनट मे चकरी ले आता हूँ।"

उसने कहे अनुसार ही किया भी। बड़े आदमियो के बीच जाकर चकरी उठा लाया। खेल फिर से पूर्ववत् प्रारम्भ हो गया।

यह सब दृश्य देखकर हनीफा ने कहा–"मुझे इस बालक की कुलीनता मे सन्देह है, क्योंकि सुशील सभ्य माता-पिता से उत्पन्न बालक इतना अशिष्ट, उच्छृखल, बेशर्म कभी नही हो सकता।"

तलाश करने पर पता चला कि वह बालक व्यभिचार से पैदा हुआ था।

उपचरितव्या सन्तो यद्यपि कथयन्ति नैकमुपदेशम्।
यास्तेषां स्वैरकथास्ता एव भवन्ति शास्त्राणि॥

[साधुओं की सेवा करनी चाहिए, यद्यपि वे अनेक प्रकार का उपदेश करते हैं। फिर भी सहजरूप मे जो कुछ कह देते है, वही (आगे चलकर भविष्य में अनुयायियो के लिए) शास्त्र बन जाता है।]



२३१ : कृपण

दान और भोग से रहित जिसके दिन बीतते हैं, क्या वह लुहार की धौकनी की तरह साँस लेते हुए भी जीवित नहीं है ?

हाँ; कहा गया है–

दानोपभोगरहिता
दिवसा यस्य यान्ति वै ।
स लौहकारभस्त्रेव
श्वसन्नपि न जीवति ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक सेठ वहुत बीमार हो गया । मित्रों और कुटुम्बियो ने चाहा कि उसका इलाज कराया जाय । सेठ ने पूछा कि चिकित्सा मे कितना खर्च बैठेगा ? मित्रों ने बताया–"चार या पाँच हजार रुपये में आप चगे हो जायेंगे ।" फिर पूछा कि मेरी दाह-क्रिया मे कितना खर्च आयगा ? बताया गया–"बीस या तीस रुपये ।" यह सुनकर सेठ ने कहा–"फिर इलाज की जरूरत नही । मुझे इस बीमारी से मरने हीं दीजिये । सस्ते में काम निपट जायगा ।"

न शान्तान्तस्तृष्णा धनलवणवारिव्यतिकरैः
क्षतच्छायः कायश्चिर विरसरुक्षाशनतया ।
अनिद्रा मन्दाग्निर्नृपसलिलचौरानलभयात्
कदर्याणां कष्टं स्फुटमधनकष्टादपि परम ॥

[धन रुपी खारे पानी से मन की तृष्णा (प्यास) शान्त नही हुई। लम्बे समय तक रसहीन रुखा भोजन करने से शरीर की शोभा नष्ट हो गई। राजा, जल, चोर और आग के डर से अनिद्रा और मन्दाग्नि का रोग लग गया । स्पष्ट ही निर्धनो की अपेक्षा कृपणों को कष्ट अधिक होता है।]



२३२ : कृपण

क्या कृपण लक्ष्मी का दान या भोग नही कर सकता ?

हॉ; नपुसक व्यक्ति जिस प्रकार स्त्री को हाथ से छूता है, वैसे ही कजूस भी लक्ष्मी का स्पर्शमात्र करता है–

न दातु नोपभोक्तु च,
शक्नोति कृपण: श्रियम् ।
किं तु स्पृशति हस्तेन,
नपुसक इव स्त्रियम् ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक आदमी किराये पर लिये अपने मकान को सदा उन्हें दिखाया करता था, जो उससे मिलने के लिये कही से आया करते थे ।

एक दिन किसी आगन्तुक को इसी प्रकार वह अपने मकान के विभिन्न कमरे दिखा रहा था कि सहसा एक खाली कमरे की ओर सकेत करते हुए कहा– "यह है, हमारे पूरे परिवार के लिए सगीत का कमरा ।"

खाली कमरा देखकर विस्मित आगन्तुक ने कहा– "इसमे वाद्य सगीत के लिए कोई वाद्य नही है ?"

कजूस– "क्या जरूरत ? यह तो हमारा वह कमरा है, जहाँ बैठकर हम पडौसी का सारा रेडियो-कार्यक्रम बहुत आसानी से सुनते है ।"

कृपणेन समो दाता,
न भूतो न भविष्यति ।
अस्पृशन्नेव वित्तानि
य परेभ्य: प्रयच्छति ॥

[कजूस के समान दानी न हुआ है, न होगा, जो धन को न छूकर उसको दूसरो के लिए दे देता है ।]

२३३ : कृपण

क्या कंजूस अज्ञानी होता है ?

हाँ; वह धन का अम्बार लगाता है; परन्तु जानता नहीं कि उसका उपभोग कौन करेगा।

He heapeth un riches, and knoweth not who shall gather them.

(ही हीपैथ अप रिचैज एण्ड नोएथ नोट हू शैल गैदर देम)

कोई दृष्टान्त ? सुनिये—

दो कंजूस आपस में बडे मित्र थे। उनमे से एक बीमार पडा। दूसरा उसका हाल-चाल जानने और सान्त्वना देने के लिए उसके घर गया। बीमारी गहरी थी, केवल औषध-सेवन से पूरा लाभ होने की सम्भावना नही है। कुछ दान-पुण्य भी करना चाहिये। ऐसा मित्र चाहता था।

मूँजी से कजूस यूँ कहे शान्ति झट होय।
दान करो निज हाथ से जो इच्छा हो सोय॥

इस पर मूँजी ने कहा कि यह बात तो मुझे पहले से ही मालूम है। मै वह दान कर चुका हूँ, जिसके लिए आप मुझे प्रेरित कर रहे है। कंजूस ने जानना चाहा कि आपने क्या-क्या कितना दान किया है तो उत्तर मिला—

दो दाना तो दाल का
सवा टका—भर चून।
एक टीपर्यो तेल को
तीन गांगड़ी लून॥
इतो दान निज हाथ से
तुरत फुरत कर दीन।
किन ही ने पूछ्यो नही
नरभव लाहो लीन॥



२३४ : कृपण

क्या कंजूस न स्वयं भोगता है और न दूसरों को ही भोगने देता है ?

हाँ; वह खेत में खड़े किये गये नकली पुरुष के समान होता है। कहा भी है–

कृपण दान देवे नही,
जीवित जस नहिं लेत।
जैसे अड़वो खेत को,
खावे न खावा देत ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

कही पर कोई दाता किसी याचक को कुछ दे रहा था। एक कजूस की नजर उस पर पड़ी। वह सोचने लगा कि कितने परिश्रम मे सम्पत्ति अर्जित होती है, यह अर्जित करने वाला ही समझ सकता है। उदारता के नाम पर धन को लुटा दिया जाय तो दिवाला निकल जाय। जो व्यक्ति माँग रहा है, वह भी अपना गौरव नष्ट कर रहा है, क्योंकि–

माँगन मरन समान है मत माँगो कोई भीख।
माँगन ते मरना भला यह सद्गुरु की सीख ॥

वह उदास हो अपने घर पहुँचा तो पत्नी ने पूछा–

कै तो गाँठ से गिर गयो कै काहू को दीन।
तिरिया पूछे प्रेमसूं क्यों पिय ! थया मलीन ॥

इसके उत्तर में कजूस ने कहा–

न तो गाँठ से कुछ गिरा
ना काहू को दीन।
देता देख्या और ने
तासौं भया मलीन ॥



२३५ : कंजूसी

क्या कंजूस अदूरदर्शी होता है ?

हाँ; वह दौलत का अम्बार लगाता जाता है, मगर नही जानता कि उसका उपयोग कौन करेगा।

He heapeth up riches and knoweth not who shall gather them. —Psalms.

(ही हीपेथ अप रिचेज एण्ड नोएथ नौट हू शैल गैदर दैम।)

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

किसी काम से शहर में गया एक आदमी रात हो जाने से अपने किसी सामाजिक बन्धु के घर ठहर गया। शहर वाले खिलाने-पिलाने में बहुत ही कंजूस होते है। गाँव वाले आदमी को यह मालूम नही था। शहर वाले ने शिष्टाचारवश आग्रह किया कि आप भोजन कर लीजिये। आसन लगाकर उसे चौके में बैठाया गया। उधर थाली परोसने से पहले सेठानी ने एक लोहे का चम्मच उठाकर उसका पिछला सिरा चूल्हे में रख दिया। ग्रामीण ने जब इसका कारण पूछा तो सेठानी ने कहा कि हमारे यहाँ चम्मच खूब लाल तपाकर मेहमान के ललाट पर लगाया जाता है और उसके बाद थाली परोसी जाती है। लाल तपे हुए चम्मच के निशान से यह पहिचान हो जाती है कि यह मेहमान हमारे ही घर का है, दूसरे घर का नहीं। यह सुनकर भयभीत ग्रामीण विना खाये-पिये ही वहाँ से उठकर रवाना हो गया। कजूसी जो न कराये सो थोड़ा।

"ते मूर्खतरा लोके, येषां धनमस्ति नास्ति च त्याग.।"

[वे लोग दुनिया में अधिक मूर्ख हैं, जिसके पास धन तो है, पर जो धन का त्याग नहीं करते।]



२३६ : क्रोध

क्या अधिक क्रोध करने वाला अन्धा होता है?

हाँ, वह आँखों वाला अन्धा होता है—

अतिरोषणश्चक्षुष्मानन्ध एव जनः ।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

एक तपस्वी ने अपने गुरुजी से कई दिनों के लम्बे उपवास के बाद पारणे की आज्ञा माँगी। गुरुजी ने कहा—"पतली कर !"

शिष्य ने दो दिन तक अनशन करने के वाद पुनः आज्ञा माँगी तो फिर भी वही उत्तर मिला। शिष्य हर दो दिन बाद इसी प्रकार आज्ञा मागने जाता और हर बार वही उत्तर मिलता। इसी क्रम में छह महीने बीत गये। शरीर वहुत ही शिथिल हो गया।

इतने पर भी जव गुरुजी ने पारणे की आज्ञा न देकर "पतली कर" ही कहा तो सहसा कुपित होकर शिष्य ने अपनी उँगली तोड कर गुरुजी के शरीर पर फेंकते हुए कहा— "अपनी देह इतनी पतली कर चुका हूँ, फिर भी आपको सन्तोष नही ?"

गुरुजी ने स्पष्ट किया—"वस, इसी क्रोध रूपी कषाय को पतली करने के लिए मैने कहा था, देह को नही।" कषाय से मुक्त होना ही मुक्ति है—"कषाय मुक्तिः किल मुक्तिरेव !" शिष्य समझ गया उसने क्रोध का त्याग कर दिया। तत्काल उसे कैवल्य प्राप्त हो गया।

भस्मीभवति रोषेण,
पुंसा धर्मात्मक वपुः ।

[रोष से पुरुषों का धर्मरूपी शरीर भस्म हो जाता है।]



२३७ : क्रोध

क्या क्रोध मे कर्तव्य नहीं सूझता ?

हाँ; इसीलिए कहा गया है कि क्रोध से अधोगति होती है–

अहे वयइ कोहेणं ।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक दिन पंडिताइन ने खीर बनाई । पंडितजी और उसका पुत्र खीर खाने के लिए बैठे । असावधानी से पुत्र की थाली मे कुछ अधिक खीर पड़ गई । इससे पडितजी को गुस्सा आ गया । वे झल्लाकर बोले–"अधिक खीर इसे क्यों परोसी ? तेरा पति यह है या मैं हूँ ?"

पुत्र बोला–"मुझे खीर अधिक मिलनी ही चाहिये । यह माँ आपकी है या मेरी ?"

पंडिताइन भी चिल्लाई–"मेरा बेटा कौन है ? यदि आप मेरे बेटे होते तो मैं आपको ही अधिक परोसती ।"

पुत्र और पत्नी की बात से पतिदेव को चुप ही रहना पड़ा। क्रोध मनुष्य को कितना विवेकशून्य बना देता है ? दुनिया में ऐसा कौन मूर्ख है, जो क्रोध नही करता ? क्रोध सभी कर सकते है; इसलिए वह सरल काम है । कठिन काम है, क्रोध को वश मे करना । क्रोध ऐसा जहर है, जो अपने को भी मारता है और दूसरों को भी । वह किसी विचारक के अनुसार मूर्खता से शुरू होता है और पछतावे पर खत्म ।

अपकारिषु कोपश्चेत्

कोपे कोपःकथं न ते ?

[यदि अपकारियों के प्रति तू क्रोध करता है तो क्रोध पर क्रोध क्यों नही करता ?]



२३८ : क्रोध

क्या क्रोध सद्‌गुणों का वैरी है ?

हाँ; जिसमें क्रोध होता है, वह व्यक्ति अपने सत्य, शील और विनय को स्वयं ही नष्ट कर डालता है–

कुद्धो सच्चं सीलं विणयं हणेज्ज।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

हरिकेशी को वात-वात पर गुस्सा करने की आदत थी। वह दिन भर मुँह फुलाये बैठा रहता। माता-पिता ने कभी उसे मुस्कान विखेरते नही देखा था। तंग आकर उन्होंने उसे घर से निकाल दिया कि ठोकरें खाकर कभी-न-कभी उसे अक्ल अवश्य आयगी।

वह आश्रय ढूंढ़ने के लिए पूरे शहर मे घूमता रहा; परन्तु अपने क्रोधी स्वभाव के कारण वह सब जगह से भगा दिया गया। आखिर उसने किसी दूसरे शहर में जाने का कार्यक्रम वनाया। चल पड़ा। कुछ ही दूरी पर उसने देखा कि दो-चार आदमी लाठी-पत्थर से किसी साँप को मारने दौड़े जा रहे है। वह भी वहाँ जा पहुँचा। उनमें से एक आदमी ने ध्यान से देखकर कहा कि यह तो दोमुँही है, जो निर्विष होती है। इसे मारने की जरूरत नही।

हरिकेशी ने सोचा कि जो जहरीला होता है, वही मार खाता है। क्रोध भी एक जहर है। उसी से जगह-जगह मेरा अपमान होता है। यदि मैं क्रोध छोड़ दूं तो सन्मान का पात्र वन सकता हूँ। विचार आते ही उसने अपने आपको सुधार लिया।

अपकारिषु चेत्कोपः कोपे कोपः कथं न ते ?

[यदि अपकारी पर तू गुस्सा करता है तो गुस्से पर गुस्सा क्यों नही करता ? (गुस्सा ही अपकारी है–दुष्ट है।)]

*

२३६ : क्रोध

क्या क्रोधी सर्वत्र पाये जाते हैं ?

हाँ; बिना कारण क्रोध करने वाले लोग असंख्य हैं, कारण होने पर क्रोध करने वाले संख्यात (जिनकी गिनती हो सकती है) है, किन्तु जो कारण होने पर भी क्रोध नहीं करते, उनकी संख्या पाँच या छह है (ऐसे लोग उंगलियों पर गिनने लायक है अर्थात् बहुत कम है।)–

नाऽकारणरुषां संख्या
संख्यता कारणक्रुधः।
कारणेऽपि न क्रुध्यन्ति
ये ते जगति पञ्चषाः ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

सन्त एकनाथ गुस्सा नहीं करते–ऐसी प्रसिद्धि के विरुद्ध था एक युवक। वह उन्हें गुस्सा दिलाने के लिए उनके घर जाकर उनकी गोद मे बैठ गया। वे स्नान करके पूजा करने बैठें थे। युवक ने हाथ-पांव तक नहीं धोये थे; फिर एकनाथ ने प्रेम से कहा – "भैया ! मिलने तो बहुत आते है, पर तुम्हारा प्रेम अद्भुत है।"

कुछ समय बाद भोजन की थाली परोसती हुई गिरिजाबाई (एकनाथ की पत्नी) की पीठ पर युवक चढ़ बैठा। एकनाथ ने कहा कि देखना बालक कही गिर न जाय। गिरिजाबाई ने उत्तर दिया– "मुझे हरि (पुत्र का नाम) को पीठ पर लादे हुए भी काम करने की आदत है ही; इसलिए इसे नहीं गिरने दूगी।" युवक इससे प्रभावित हो, क्षमा याचना कर चलता बना।

उवसमेण हणे कोहं।

[शान्त भाव से क्रोध को मार दो।]



२४० : क्रोध

क्या क्रोध वश में रखना ही सर्वोच्च शासन है ?

हाँ; The highest government is governing anger.

(दि हाइएस्ट गवर्नमेंट इज गवर्निंग ऐंगर।)

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

एक गाँव में एक जाट रहता था। एक दिन उसका अपनी पत्नी से झगड़ा हो गया। जाट दूसरे दिन देर से उठा और खेत पर नही गया। जाटनी ने सोचा कि घर मे बैठे रहने से तो खेती ही चौपट हो जायगी। किसी तरह जाट को खेत पर तो भेजना ही चाहिये; परन्तु झगडे के कारण बोल भी नही सकती। जो पहले बोलेगा, वह हारा हुआ माना जायेगा। तब क्या किया जाय ? आखिर उसने 'लोग' शब्द से सम्बोधित करके यों कहा—

"लोग चाल्या लावणी ए लोग क्यूँ नी जाय ?"

इस पर जाट ने भी जवाब मे कहा—

"लोग चाल्या खाय पीय ए कांई खाय जाय ?"

जाटनी ने फिर कहा—

"छीके पडी रावडी, उतार क्यूँ नी लेय ?"

तब जाट ने प्रेमसे उसकी ओर देखकर कहा—

"अब आपाँ बोल्या चाल्या, घाल क्यूँ नी देय ?"

जाटनी ने घाट परोस दी और जाट खा-पीकर खेत पर चला गया। गुस्से को इसी प्रकार वश मे रखने का प्रयास सबको करना चाहिये—

अपकारिषु कोपश्चेत्कोपे कोप. कथ न ते ?

(यदि अपकारी पर ही गुस्सा किया जाता है तो तू गुस्से पर गुस्सा क्यो नही करता ?)



२४१ : क्रोध

क्या अधिक गुस्सा करने वाला मनुष्य अन्धा है ?

हाँ; महाकवि वाण ने ऐसा ही कहा है—

अतिरोषणश्चक्षुष्मानन्ध एव जनः ।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

एक युवक पढ़ा-लिखा तो बहुत था; परन्तु उसे गुस्सा करने की आदत थी । विवाह के वाद की बात है । एक वार वह अपनी ससुराल गया । पत्नी पीहर थी । उसने पत्नी को भेजने के लिए ससुरजी से कहा ।

ससुरजी ने दिशाशूल, वार आदि की वाधा वताकर कहा कि हम अभी दो दिन तक उसे नही भेज सकते । तीसरे दिन आप भले ही ले जाना, हम रोकेगे नही । बेटी पराया धन है । ससुराल मे ही उसकी शोभा है····आदि। युवक नये विचारो का था। फलित ज्योतिष मे उसका कोई विश्वास नही था । उसने कहा, "कोई ग्रह बुरा नही होता, व्यक्ति स्वय बुरा होता है। कोई दिन खराब नही होता है। आदमी खुद खराब होता है। मै तो पत्नी को आज ही ले जाऊँगा। यदि आप आज नही भेजेगे तो मैं विना इसे साथ लिए अकेला ही चला जाऊँगा। इतना ही नही; दूसरा विवाह कर लूँगा और कभी फिर यहाँ पत्नी को लेने नही आऊँगा।"

ससुरजी ने कहा कि यदि आपने ऐसा किया तो हम समझ लेंगे, हमारी बेटी विधवा होगई। युवक को गुस्सा चढ आया। उसने कहा —"अब तो मैं उसे विधवा बनाकर ही छोडूंगा।" ऐसा कहकर वह उसी गाँव के कूए में गिर पड़ा और मर गया। ससुर की बेटी को विधवा होने से कोई नही वचा सका ।

कोहो पीइं पणासेइ ।

[क्रोध प्रेम को नष्ट कर देता है।]



क्या क्रोध में व्यक्ति अन्धा हो जाता है ?

हाँ; वह पुत्र, मित्र, गुरु और पत्नी सबको पीटने लगता है–

कोहंधा निहणति,
पुत्तं मित्तं गुरुं कलत्तं च ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक साधु किसी बगीचे में ठहरा हुआ था। वहाँ किसी अन्य व्यक्ति ने चुपचाप पके फल तोड़ लिये। माली ने साधु पर आशका की। उसे डडे से पीटने लगा। साधु इस परीषह को शान्ति से सहता रहा; परन्तु उसके शिष्यों से गुरुजी का यह अपमान सहा न गया। वे सब माली से झगड़ने और उसे बुरा-भला कहने लगे। ठीक उसी समय दिव्यवस्त्र धारी कुछ सज्जन बगीचे से बाहर निकलते हुए दिखाई दिये। साधु ने उनसे जाने का कारण पूछा तो वे बोले– "हम आपको वन्दन करने आये थे; परन्तु आपके शिष्यों का क्रोध देखकर हमारी श्रद्धा आपके प्रति घट गई; इसलिए हम बिना वन्दन किये ही लौट रहे है।"

शिष्यों के क्रोध ने गुरु को भी अयोग्य साबित कर दिया; यद्यपि गुरु योग्य ही थे। क्रोध ऐसी भयंकर आग है जो सबको जलाने का काम करती है–

कोहेण अप्पं डहई परं च
अत्थं च धम्मं च तहेव कामं।
तिव्वंपि वेरं पकरेन्ति कोहा
अधरं गइं वावि उवेंति कोहा॥

[क्रोध से आत्मा अपने को भी जलाती है और दूसरों को भी; क्रोध से अर्थ, धर्म और काम जलते है। तीव्र वैर का विस्तार होता है एवं आत्मा नीच गति को प्राप्त करती है।]



२४३ : क्रोध

क्या उपशम से क्रोध को जीतना चाहिये ?

हाँ; कहा है–

"उवसमेण हणे कोहं ।"

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

अमरीका के एक प्रोफेसर को गुस्सा करने की आदत थी। बात-बात पर उनका पारा गरम होकर आसमान तक चढ जाता था। उन्हें अपने क्रोध के दुष्परिणामों को देखकर बाद मे बहुत पश्चात्ताप होता था; परन्तु बेचारे अपनी आदत से मजबूर थे। उनकी परेशानी को देखकर उनके किसी हितैषी मित्र ने उन्हें क्रोध की आदत दूर करने की एक युक्ति बताई। उसके अनुसार प्रोफेसर साहब ने सौ लिफाफों का एक पैकेट लाकर अपने नौकर को दे दिया और कह दिया कि जब भी मुझे गुस्सा आ जाये, तुम उसी समय इनमें से एक खाली लिफाफा उठाकर मेरे सामने रख दिया करो।

नौकर ने मालिक के आदेश के आधार पर लिफाफा रखना शुरू कर दिया। लिफाफा देखते ही प्रोफेसर साहब को याद आ जाता कि कुछ गलती कर रहे हैं। गुस्सा कोई अच्छी आदत नही है। काम तो शान्ति रखने से भी बन सकता है; फिर गुस्सा करके अपने को और दूसरों को व्यर्थ ही उसकी आग में क्यों झुलसाया जाय।

धीरे-धीरे उनकी आदत सुधर गई।

"अतिरोषणश्चक्षुष्मानन्ध एव जनः ।"

[अति क्रोधी व्यक्ति आँख वाला अन्धा है। (यद्यपि चर्मचक्षु उसके खुले रहते हैं; फिर भी विवेकचक्षु नही खुलते।]



२४४ : क्रोध

क्या धर्मनाशक संसारवर्धक अनर्थमूलक क्रोध का त्याग ही कर्त्तव्य है ?

हाँ; कहा गया है—

क्रोधो मूलमनर्थानाम्,
क्रोधः ससारवर्धन ।
धर्मक्षयकर· क्रोध,
तस्मात्क्रोध विवर्जयेत् ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

एक महिला अपनी पञ्चवर्षीया पुत्री के साथ कही जा रही थी। पुत्री ने रंगविरंगे फूले हुए गुब्बारे (फुग्गे) देखकर उनमें से एक खरीदने के लिए पांच पैसे का एक सिक्का मांगा। माँ के पास पैसे छुट्टे नही थे और गुब्बारे वाला, पाँच पैसे के फुग्गे के लिए एक रुपये की चिल्लर (पिच्यानवे पैसे) देगा—ऐसी सम्भावना नही थी, इसलिए माँ ने कहा कि रुपये में से कोई दूसरा सामान पहले खरीद लेगे, जिसमें चिल्लर हाथ में आजाय, फिर फुग्गा दिला देगे। पुत्री समझी कि फुग्गा नहीं दिलवाने की यह भूमिका है, अत वह फुग्गे के लिए हठ पकड कर बैठ गई। बीच बाजार में ऐसा हठ करने के अपराध में माँ ने एक तमाचा जड दिया। इससे बच्ची सडक पर गिर गई और किसी की कार से दुर्घटनाग्रस्त होकर परलोक चली गई। यह क्रोध का ही भयकर दुष्परिणाम था। क्रोध की दवा किसी विचारक ने इस प्रकार बताई है—

"यदि गुस्सा आ जाय तो एक से दस तक गिनो और यदि तेज गुस्सा हो तो सौ तक !"

※

२४५ : क्रोध

क्या परिणाम पर विचार करने से क्रोध नष्ट हो जाता है ?

हाँ; इसीलिए किसी विचारक ने कहा है कि जब क्रोध उठे तब उसके नतीजों पर विचार करो–

"When anger rises, think of the consequences"

(व्हेन एंगर राइजेज, थिक ऑफ दि कंसांक्वेंसेज)

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक पंडितजी किसी मन्दिर में प्रवचन कर रहे थे। वे क्रोध से होने वाली हानियों का वर्णन करते हुए समझा रहे थे कि क्रोध करने वाला व्यक्ति चाण्डाल हो जाता है। धर्मात्मा को क्रोध से दूर रहना चाहिये।

प्रवचन के वाद पडितजी मन्दिर से उतर कर अपने घर की ओर चल पड़े। उन्हे देखकर भी सडक झाड़ने वाली मेहतरानी ने अपना काम वन्द नही किया। पडितजी की डॉट सुनकर उसने कहा कि सडक पर तो लोगों का आवागमन होता ही रहता है। यदि प्रत्येक व्यक्ति के लिए मै रुकूँ तो दिन भर में एक सड़क भी पूरी न झाड़ पाऊँ।

यह सुनकर पडितजी आग-वबूला हो गये। उन्होंने एक ईंट का टुकड़ा उस पर फेक कर कहा–"ओछी जात होकर ज्ञानियों के सामने मुँह खोलती है?" मेहतरानी ने पंडितजी का हाथ पकड़कर कहा– "प्राणनाथ ! घर चलिये, वहुत दिनो मे आपके दर्शन हुए। आप क्रोधी है और क्रोधी चाण्डाल होता है–ऐसा अभी आप ही कह रहे थे; इसलिए आप मेरे पति हो गये है।"

वड़ी मुश्किल से पंडितजी ने माफी माँगकर उससे छुट्टी पाई।

"रोप न रसना खोलिये।"

क्या अपराधियों या अपकार करने वालों पर ही क्रोध किया जाता है ?

हाँ; यदि ऐसा है तो क्रोध से बढकर दूसरा कोई अपकारी नही है। उसी पर क्रोध क्यों नही किया जाता ?

अपकारिणि चेत्कोपः
कोपे कोपः कथं न ते ?

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये--

एक बनजारे ने अपना पालतू कुत्ता अकाल के कारण किसी सेठ के पास गिरवी रख दिया। ब्याज सहित रुपये चुकाने पर ही कुत्ता वापस मिल सकता था।

उधर सेठ के घर डाका पड़ा। कुत्ता चुप रहा; क्योंकि सेठ के पास बचाव के लिए हथियार नही थे। डाकू धन लूटकर जंगल में ले गये। कुत्ते ने चुपचाप उनका पीछा किया। एक जगह गड्ढा खोदकर उन्होने धन गाड दिया। डाकुओ के चले जाने के बाद वह स्थान सूंघकर कुत्ता घर लौटा। सेठ की धोती पकड़कर खीचता हुआ सेठ को उसी स्थान पर ले गया। धन पूरा ज्यो का त्यो मिल गया। प्रसन्न होकर सेठ ने कुत्ते को उसके मालिक के पास जाने के लिए मुक्त कर दिया। एक चिट्ठी में पूरा वृत्तान्त लिखकर उसके गले में वह चिट्ठी बाँध दी। उधर बनजारा रुपये लेकर कुत्ते को छुड़ाने आ रहा था। कुत्ते को आते देखकर बनजारे ने तलवार से उसका गला काट दिया, यह सोचकर कि कुत्ता बिना छोड़े ही भाग आया होगा परन्तु जब चिट्ठी पढी, तब अपने क्रोध के लिए खूब पछताया और घटे भर तक रोता रहा।

क्रोधो मूलमनर्थानाम्।
[क्रोध अनर्थों का मूल (कारण) है।]

२४६ : गुण

क्या जैसा नाम होता है, वैसा ही गुण होता है ?

हां कहावत भी है–

यथा नाम तथागुणः ।

परन्तु व्यवहार में ऐसा नही देखा जाता ।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक आदमी का नाम था–ठनठनपाल । गाँव वाले उसकी औरत को "ठनठनपाल की औरत" कहकर पुकारा करते थे । यह नाम उसे बुरा लगता था । पतिदेव से उसने अपने मन का दर्द सुनाया । परन्तु वह विवश था । माँ-बाप द्वारा रखे गये नाम को वह बदलता कैसे ?

आखिर वह औरत घर छोड़कर निकल गई । रास्ते मे एक मुर्दे को लोग श्मशान में जलाने के लिए ले जा रहे थे । उसने पूछा तो पता चला कि मरे हुए व्यक्ति का नाम "अमरचन्द" था । आगे एक भिखारी मिला । उसने अपना नाम "धनपाल" बताया । उसे अत्यन्त आश्चर्य हो रहा था कि "अमर" भी मरता है और "धनपाल" भी रोटी मांगता है । नाम के अनुसार गुण क्यो नही होते ?

कुछ दूर जाने पर उसने देखा कि एक औरत सूखे गोबर के कंडे एकत्र कर रही थी । उसने हिम्मत करके उससे भी उसका नाम पूछ लिया । पता चला कि उसका नाम लक्ष्मीबाई है । यह सब देखकर वह अपने घर लौट आई । उसने मन मे सोचा–

अमर मरन्ता मैं सुण्या
भीखनमे धनपाल ।
लक्ष्मी तो छांणां चुनै
आछो ठनठनपाल ।।



क्या गुणवान ही सर्वत्र प्रशंसा पाता है ?

हाँ, रत्न चाहे मस्तक पर, गले में, भुजा में या पादपीठ पर रखा जाय, सब जगह सुशोभित ही होता हैं–

सर्वत्र गुणवानेव,
चकास्ति प्रथितो नरः ।
मणिर्मूर्ध्नि गले बाहौ,
पादपीठेऽपि शोभते ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

बीरबल के पुत्र से बादशाह ने पुछा–"आपके पिताजी के साथ आपकी कितनी मातायें सती हुई हैं ?"

पुत्र बोला–"जहाँपनाह ! मेरे पिताजी की मृत्यु होने पर मेरी तीन मातायें सती हो गयी और एक माता कुटुम्ब का पालन-पोषण करने लिए बची हुई है । सती होने वाली माताओं के नाम है–वीरता, उदारता और बुद्धिमत्ता; जो माता जीवित रह गई, उसका नाम है–प्रतिष्ठा (नेकनामी)"

बादशाह इस उत्तर से बहुत-बहुत प्रसन्न हुआ और बोल उठा–"आखिर है तो उसी का बेटा न ?"

गुणैरुत्तुङ्गतां याति,
नोच्चैरासनसंस्थितः ।
प्रासादशिखरस्थोऽपि,
काकः किं गरुडायते ?

[गुणो से ही मनुष्य प्रतिष्ठा पाता है, ऊँचे आसन पर बैठने मात्र से नही। महल के शिखर पर बैठने से क्या कौआ गरुड़ बन जाता है ? (नही बनता। इसी प्रकार गुणहीन व्यक्ति भी प्रतिष्ठित नही होता।)]



२५१ : गुणग्राहकता

दोषों की उपेक्षा करके केवल गुणों को ग्रहण करते रहने की प्रवृत्ति क्या प्रशंसनीय है ?

हाँ; तभी तो किसी भक्त ने भगवान् से प्रार्थना में यह भाव प्रकट किया है—

गुणग्रहण का भाव रहे नित
दृष्टि न दोषों पर जावे।।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

अमेरिका के राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन ने युद्ध सचिव के पद पर उस व्यक्ति को नियुक्त कर दिया, जो उनका विरोधी था। लोगों ने उन्हें यह याद दिलाया कि पिछले अनेक अवसरों पर उस व्यक्ति ने भाँड, गुरिल्ला आदि शब्दों का प्रयोग कर आपकी खिल्ली उडायी है—आपके व्यक्तित्व को गिराने की चेष्टा की है।

इस पर लिंकन ने उत्तर दिया— "यदि उसकी योग्यता राष्ट्र के लिए उपयोगी है तो मुझे अपने व्यक्तिगत आक्षेपों की उपेक्षा ही करनी होगी। वह लिंकन की बुराई करके भी राष्ट्रपति का तो परम सम्मान ही करेगा। मेरी निन्दा करके भी राष्ट्र की तो प्रशंसा ही करेगा अथवा ऐसे काम करेगा, जिनसे जगत में राष्ट्र की प्रशंसा हो।"

राष्ट्रभक्ति का दावा करने वालों में लिंकन जैसी गुणग्राहकता पायी जानी चाहिए—

गुणयुक्तोऽपि पूर्णोऽपि
कुम्भः कूपे निमज्जति।
तस्य भारसहो नास्ति
गुणकग्राहको यदि।।

[गुण (रस्सी) से युक्त हो, पूर्ण (पानी से भरा हुआ) हो; फिर भी यदि उसके भार को सहने वाला गुणग्राहक (रस्सी खींचने वाला) न हो तो वह कुम्भ (घड़ा) कुएँ में डूब जाता है।]

२५२ : गुणग्राहकता

जो लोग कट्टर होते हैं, क्या वे गुणग्राहक नहीं बन सकते ?

हाँ, ऐसे लोगों को उनकी कट्टरता गुणग्राहक नही बनने देती, वे पिताजी के कूएँ का खारा पानी भी चुपचाप पीते रहते है; किन्तु दूसरों के कुएँ के मीठे पानी से भी दूर रहते हैं–

तातस्य कूपोऽयमिति ब्रुवाणाः
क्षारं जलं कापुरुषाः पिबन्ति।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

कुछ व्यापारी धन कमाने के लिए अपने गाँव से निकलकर चल पड़े। मार्ग में लोहे के टुकड़े पड़े हुए मिले, सबने उठा लिये। कुछ दूर जाने पर उन्हें ताँबे के टुकड़े मिले। एक व्यापारी को छोड़कर शेष सबने ताँबे के टुकडों से गठरी भर ली, लोहे के टुकड़े वही फेक दिये। फिर आगे बढ़ने पर चाँदी के टुकड़े मिले तो ताँबे के टुकड़े वही डाल कर सबने अपनी-अपनी गठरियों मे चाँदी के टुकडे भर लिए, किन्तु लोहे वाले ने लोहे के टुकड़े नही फेंके। फिर कुछ दूरी तय करने पर क्रमशः सोने के और प्लेटिनम के टुकड़े मिले। सबने प्लेटिनम से पोटलियाँ भर ली और लोहे वाले को भी वैसा करने को सलाह दी; किन्तु उसका कहना था कि इतनी दूर से इतने दिनों तक जिस लोहे का भार मैं उठाये रहा हूँ; वही मुझे प्यारा है; उसे भला मैं कैसे छोड़ सकता हूँ ? अन्त में, सब व्यापारी अपने गाँव को लौट आये। लोहे के व्यापारी ने लोहा बेचकर उससे प्राप्त धन में ही सन्तोष किया। प्लेटिनम को अपनाने वाले बहुत जल्दी करोड़पति बनकर भारी से भारी उद्योग खोलने लगे। ऐसे परम्परामोही कट्टरपन्थियों के लिए ही यह कहावत बनी है– "एक बार गधे की पूंछ पकड़ी सो पकड़ी! दुलत्ती खाकर भी उसे छोड़े कौन ?"

२५३ : गुणग्राहकता

क्या गुणीजन भी कष्ट पाते हैं ?

हाँ; यदि गुण ग्रहण करने वाला–गुणों की प्रशंसा करने वाला न हो तो गुणी भी कष्ट पाते हैं। गुण (रस्सी) का ग्राहक (पकड़ने वाला) न हो तो भरा हुआ गुणयुक्त (रस्सी वाला) घड़ा भी कुएँ में डूब ही जाता है :

गुणयुक्तोऽपि पूर्णोऽपि
कुम्भः कूपे निमज्जति।
तस्य भारसहो नास्ति
गुणकग्राहको यदि॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक दिन की बात है, श्रीकृष्ण कहीं जा रहे थे। रास्ते में एक सड़ियल कुत्ता बैठा था। उसके शरीर से तीव्र बदबू निकल रही थी। साथ वाले सभी अन्य लोग नाक-भौंह सिकोड़ते हुए जल्दी-जल्दी वहाँ से आगे बढ़ लिये; परन्तु श्रीकृष्ण कुछ देर उसकी ओर देखते रहे और फिर शान्ति से आगे बढ़े। उन्होंने कुत्ते के प्रति घृणा का भाव बिल्कुल प्रदर्शित नहीं किया।

इससे चकित होकर जब साथियों ने कारण पूछा तो श्रीकृष्ण ने गम्भीरता से उत्तर दिया – "मैं देख रहा था कि उस कुत्ते के दाँत कितने स्वच्छ, सफेद और चमकीले है। कितना अच्छा होता यदि मेरे दाँत भी वैसे ही होते !" इसे कहते है – गुणग्राहकता, जो गुणो का प्रेमी होता है, वह सर्वत्र गुण ही देखता है, दोष नहीं। उसकी दृष्टि निर्मल होती है। एक कवि के शब्दों मे वह सोचता है–

गुणग्रहण का भाव रहे नित, दृष्टि न दोषों पर जावे।

२५४ : गुणग्राहकता

क्या सज्जन सद्‌गुण ही देखते हैं ?

हां; उनकी दृष्टि दोषों पर नहीं जाती । उनकी भावना इन पक्तियो मे व्यक्त हुई है—

गुणग्रहण का भाव रहे नित
दृष्टि न दोषों पर जावे ।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

माली खाली टोकरी लेकर फूल चुनने के लिए मैदान में उगे हुए कुछ पौधों के समीप गया । कुछ देर तक चमेली, मोगरा, गैंदा, कनेर आदि के फूल तोड़-तोड़कर वह उस टोकरी में डालता रहा कि सहसा उसे हँसते हुए गुलाबी चेहरे दिखायी दिये । माली ने उनसे अपना सम्पर्क साधा । वे गुलाब थे । एक गुलाब से पूछा— "क्या आप मुझे हँसने का कारण बताने का कष्ट करेंगे ?"

"क्यों नही ?" गुलाब ने कहा – "किन्तु पहले आपको मेरे एक प्रश्न का उत्तर देना होगा ।" माली बोला – "अच्छी बात है पूछिये क्या प्रश्न है आपका ?"

फूल – "आप इस फुलवारी में आकर फूल ही क्यों चुनते है ? कांटे क्यो नही ?" माली— "इसलिए कि ये फूल जिसके लिए चुने जाते है, वह मनुष्य केवल फूलों से प्यार करता है, कांटों से नही ।"

इस पर गुलाब ने पूछा— "यदि ऐसा है तो मनुष्य दूसरे मनुष्यों के जीवन से कांटे (दोष) ही क्यों चुनता है ? फूल (गुण) क्यों नही ?"

माली इस प्रश्न से निरुत्तर हो गया और तभी उसे गुलाब के हंसने का कारण भी समझ में आ गया ।

गुणाः पूजास्थानं
गुणिषु न च लिंगं न च वयः ।।

[गुण ही पूज्य होते है, गुणियों का न लिंग देखा जाता है न उनकी अवस्था ही देखी जाती है ।]

२५५ : गुणवान्

यदि कोई गुणी का यथायोग्य सम्मान न करे तो क्या यह सम्मान करने वाले की ही अयोग्यता का परिचायक नही है ?

हाँ; किसी ने यह तथ्य एक अन्योक्ति के माध्यम से प्रकट करते हुए कहा है – हे समुद्र ! तू रत्नों को नीचे और तिनकों को ऊपर धारण करता है – यह तेरा ही दोष है (इससे रत्न का कुछ नही बिगड़ता) रत्न-रत्न ही रहेगा और तिनका-तिनका !

अधः करोषि रत्नानि
मूर्ध्ना धारयसे तृणम् ।
दोषस्तवैव जलधे !
रत्नं रत्नं तृणं तृणम् ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

बादशाह जहाँगीर पण्डितराज जगन्नाथ के कवित्व पर मुग्ध थे । अन्य दरबारी उनसे ईर्ष्या रखते थे । एक दिन उन्होंने प्लान बनाकर राज सभा में उनके लिए कोई समुचित स्थान रिक्त नही छोड़ा, जिससे वे अपमानित हों । पंडितराज दूर से ही यह भाँप गये और जहाँ जूते खोले जाते थे वही बैठ गये । बादशाह दौड़े हुए उनके पास गये और फिर आग्रहपूर्वक उन्हें उच्च स्थान पर बिठाया । पण्डितराज बोले–

पुरो वा पश्चाद्वा वयमुपविशामः क्षितिभुजाम्
ततः किं नश्छिन्नं वचनरचनाक्रीतजगताम् ।
अगारे कान्तारे कुचकलशहारे मृगदृशाम्
मणेस्तुल्यं मूल्यं सहज सुभगस्य द्युतिमतः ॥

[हम राजाओं के आगे बैठें या पीछे, कविता से जगत् को वश में करने वाले हम लोगों का क्या बिगड़ जायेगा ? सहज सुन्दर चमकीले रत्न का मूल्य समान ही रहता है, भले ही वह घर मे रहे, जंगल में रहे या स्त्रियों के स्तन पर लटकने वाले हार में ।]

२५६ : गुप्तचर

गुप्तचर क्या ज्ञान के साधन हैं ?

हाँ, पशु गन्ध से, पण्डित शास्त्र से, राजा लोग गुप्तचर से और अन्य सब लोग आँखों से जानते हैं–

जानन्ति पशवो गन्धाद्,
वेदाज्जानन्ति पण्डिताः ।
चाराज्जानन्ति राजान–
श्चक्षुर्भ्यामितरे जना. ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

महाराज विक्रमादित्य के सामने एक ही अपराध में पकडे गये चार व्यक्ति लाये गये, किन्तु महाराज ने उनकी योग्यता के अनुसार प्रत्येक को अलग-अलग दण्ड दिया। एक को अपने पास बुलाकर धीरे मे कह दिया– "ऐसा काम तुम्हे शोभा नही देता।" दूसरे को डाँट दिया। तीसरे के मस्तक पर जूता रखकर छोड़ दिया और चौथे का मुँह काला करके उसे गधे पर विठाकर सारे शहर घुमवाया।

फिर गुप्तचरो को चारों के पीछे छोड दिया। शाम को उनसे ज्ञात हुआ कि पहला इतना लज्जित हुआ कि विष खाकर उसने आत्महत्या कर ली। दूसरे ने सदा के लिए शहर छोड़ दिया। तीसरा घर मे ही छिप गया। उसका सकल्प है कि साल भर तक वह लोग को मुँह नही दिखायेगा। चौथे ने गर्म पानी से मुँह धोकर खाना खाया। अब वह घूम रहा है, मानो कुछ हुआ ही न हो। सभासदों ने यह सब सुनकर समझ लिया कि दण्ड व्यक्ति की योग्यता के अनुसार देना चाहिए।

चारचक्षुर्महीभर्त्तुर्यस्य नास्त्यन्ध एव स. ।

[जिस राजा के पास गुप्तचर रूपी आँख नही है, वह अन्धा ही है।]



२५७ : गुरु

क्या गुरु वही है, जो अज्ञानरूपी अन्धकार का नाश कर देता है?

हाँ; 'गु' का अर्थ अँधेरा है और 'रु' का अर्थ–नाशक। जैसा कि कहा है–

'गु' शद्वस्त्वन्धकारः स्याद्,
'रु' शद्वस्तन्निवारकः।
अन्धकारनिरोधत्वाद्,
गुरुरित्यभिधीयते ॥

कोई दृष्टान्त?

सुनिये–

चार पण्डित थे। प्रवचनों का धन्धा करते थे। उन्होने एक गड़रिये से कहा कि तुम्हें हम 'गुरु' या 'शिष्य' बनाना चाहते है। शिष्य बनोगे तो सबकी सेवा करनी पड़ेगी। सबकी आज्ञाओं का पालन करना पड़ेगा और 'गुरु' बनोगे तो सब तुम्हारी सेवा करेंगे, किन्तु शर्त यह रहेगी कि तुम्हें मौन रहना पड़ेगा; क्योकि तुम पढे-लिखे नहीं हो। गड़रियें ने कहा कि मौन रह लूँगा, परन्तु बनूँगा गुरु ही। पण्डितों ने भगवा कपड़े पहिना दिये। जहाँ भी वे जाते, वहाँ यही कहते कि हमारे गुरुजी का अभी मौनव्रत चल रहा है; इसलिए प्रवचन एव चर्चा का भार गुरुजी ने हम पर डाल रखा है। एक दिन पण्डित लोग भ्रमण के लिए बाहर गये हुए थे कि तभी जिज्ञासुओ के मण्डल ने वहाँ आकर उपदेश सुनने की इच्छा प्रकट की। गुरुजी बोले–"तर्र तक"। इतने में पण्डित लोग आ गये। उन्होंने इस शद्व की व्याख्या करते हुए कहा कि जीवन-भर तक अच्छे कार्य करने वाला ही संसार सागर को तैर सकता है।

फिर कुछ दिन बाद जंगल में ले जाकर गुरुजी की खूब मरम्मत की कि वे बोले ही क्यों? गुरुजी बोले–

दे घुम्मा लातांसूं मार्यो, आछी कीधी कुन्दी।
यह लो अपनी झोली-झंडी, यह लो अपनी तुम्बी ॥



क्या अच्छे जीवन के लिए मनुष्य गुरु का ऋणी है ?

हाँ; किसी विचारक ने स्पष्ट शब्दों में यह स्वीकार किया है कि जीवित रहने के लिए मैं अपने पिता का ऋणी हूँ; परन्तु अच्छी तरह जीने के लिए अपने गुरु का— I am indebted to my father for living but to my teacher for living well. (आय एम इन्डेटेड टु माय फादर फॉर लिविंग बट टु माय टीचर फॉर लिविंग वेल।)

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

एक बगला पानी में से मछली मुंह मे पकड कर उड़ा; किन्तु मछली उसके मुंह से छूट गयी। वह तात्काल गिरती हुई मछली को गिरने से पहले ही मुंह में फिर से पकड़ कर उड़ गया। थोड़ी ही दूर पर एक गड़रिया यह दृष्य देख रहा था। वह भी अपनी लकड़ी को हाथ से छोड़कर जमीन पर गिरने से पहले ही पकड़ने का अभ्यास करने लगा। धीरे-धीरे तलवार और भाला भी वह इसी प्रकार पकडने मे सिद्धहस्त हो गया। गाँव मे उसकी विचित्र कला से खूब प्रसिद्धि हो गयी। भाला उछाल कर उसे जीभ पर झेलने की कला दिखाने के लिए एक बार वहाँ के राजा ने उसे निमन्त्रित किया। कला देखने के वाद राजा ने उससे उसके गुरु का नाम पूछा। गड़रिये ने कहा की मेरा कोई गुरु नही है। अपनी कला मैंने स्वयं ही सीखी है। राजा जानता था कि गुरु के विना ज्ञान नही हो सकता। उसने दुवारा कला दिखाने का आदेश दिया, किन्तु अपने गुरु बगुले का नाम न लेने के कारण इस बार भाला जीभ पर झेलते ही आर-पार निकल गया। उसके प्राण पखेरु उड़ गये।

एकमेवाक्षरं यस्तु, गुरुः शिष्यं प्रबोधयेत्।]

[शिष्य को एक अक्षर का ज्ञान देने वाला भी 'गुरु'

२५९ गुरु

क्या विनीत शिष्य आज्ञापालक होता है ?

हां; वह आज्ञा का पालन करता है—गुरु की उपासना करता है और गुरु के इंगित—आकार को समझ कर काम करता है—

आणानिद्देसकरे
गुरुणमुववायकारए ।
इंगियागारसंपन्ने
से विणीए त्ति वुच्चइ ॥

कोई दृष्टान्त ? सुनिये—

पाण्डव अपने गुरु द्रोणाचार्य से धनुर्विद्या सीख रहे थे। एक दिन वे गुरुजी के साथ धनुर्विद्या का अभ्यास करने के लिए किसी जंगल में पहुँचे। उनके साथ एक पालतू कुत्ता भी था, जो एक भील को देखकर भौंकने लगा। भील ने शब्दवेधी बाण फेंककर उस कुत्ते का मुँह भर दिया। कुत्ते को इस अवस्था में देखकर अर्जुन ने गुरुदेव से कहा—"आपसे मुझे अद्वितीय धनुर्धर होने का वरदान मिला था, फिर यह कौन भील है, जो इस कला में मुझसे भी आगे निकल गया?"

गुरु द्रोण ने उस भील से पूछा—"तेरे गुरु का नाम क्या है ?"

भील ने कहा—"द्रोणाचार्य ही मेरे गुरु है जिनकी मिट्टी मे बनी मूर्ति से मैंने यह कला सीखी है।"

द्रोण—"अगर तू मेरा शिष्य है तो गुरु-दक्षिणा में अपने दाहिने हाथ का अँगूठा दे दे।"

विनीत शिष्य एकलव्य (यही उस भील का नाम था) ने तत्काल अँगूठा काट कर दे दिया। इस प्रकार अर्जुन अद्वितीय धनुर्धर हो गया। गुरु भी इस प्रकार पक्षपातवश—

"छल से माँग लिया करते हैं,
अंगूठे का दान ॥"



क्या अज्ञानान्धकार को मिटाने वाला गुरु है ?

हाँ ! 'गु' का अर्थ अंधेरा है और 'रु' का अर्थ—नाशक । इसलिए जो (अज्ञानरूपी) अन्धकार को नष्ट करता है, वह 'गुरु' है—

'गु' शब्दस्त्वन्धकारः स्याद्,
'रु' शब्दस्तन्निवारकः ।
अन्धकारनिरोधित्वाद्,
'गुरु' रित्यभिधीयते ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

स्वामी दयानन्द सरस्वती के जीवन की यह घटना है । उन्होंने एक दिन आश्रम का कचरा निकाला और एक टोकरी में भर लिया फिर किसी दूसरे काम में लग गये, टोकरी वहीं पड़ी रह गयी । कुछ समय बाद वयोवृद्ध गुरुजी आये, उन्हें आँखों से कम दिखना था, ध्यान नहीं रहा और इधर से उधर जाते हुए वे उस टोकरी से टकरा गये और गिर पड़े ।

अपने शिष्य के इस प्रमाद पर क्षुब्ध होकर गुरुजी ने लाठी से दयानन्द जी को खूब पीटा । दयानन्द जी अत्यन्त शान्ति से गुरुदेव के प्रहार सहते और अपनी भूल के लिए बारबार क्षमा माँगते रहे । कहते है, लाठी की चोट का चिन्ह उनकी पीठ पर जीवन-भर बना रहा । पूछने पर बड़े गर्व से कहा करते थे कि यह गुरुजी का प्रसाद है ।

शिष्य को सुधारने के लिए गुरु को क्षुब्ध भी होना पड़ता परन्तु इस क्षोभ मे प्रेम और वात्सल्य भरा रहता है, द्वेष नहीं—

गुरु कुम्हार सिख कुम्भ है,
गढ़-गढ़ काढ़ै खोट ।
अन्दर हाथ सहार दै
ऊपर मारे चोट ॥

२६१ : गुरु

क्या गुरु की सेवा से ही विद्या प्राप्त होती है ?

हाँ; कहा है–"(हे शिष्य!) तू गुरु को प्रणाम करके, उनके सामने बार- बार अपनी जिज्ञासाएँ रखकर और सेवा करके ज्ञान प्राप्त कर, तत्वदर्शी ज्ञानी तुझे उपदेश करेंगे।"

तद्विद्धि प्रणिपातेन, परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानम्, ज्ञानिनस्तत्वदर्शिनः ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक थे गुरुजी, अपने एक शिष्य के साथ वे किसी जगल में पेड़ के नीचे ठहरे। वहाँ रात हो जाने पर उन्होंने शिष्य से सो जाने के लिए कहा और स्वयं जागते हुए बैठे रहे। थोड़ी देर बाद शिष्य को निद्रा आ गयी। तभी एक साँप शिष्य के शरीर की ओर आता दिखायी दिया। गुरु के पूछने पर उसने कहा कि पूर्वभव में इसने मेरा खून पिया था; इसलिए आज मैं भी इसका खून पीकर वैर का बदला लूंगा। खून भी गले का ही चाहिए। गुरु ने सोचा कि साँप के दंश से शिष्य की मृत्यु हो जायेगी। इसे भी खून की जरूरत है, प्राणों की नहीं। गुरु ने साँप को दूर रहने का आदेश देकर शिष्य की छाती पर आसन जमाया। छुरी से शिष्य के गले का खून निकाल कर साँप को पिलाया। वह सन्तुष्ट होकर लौट गया। इधर प्रातःकाल जब गुरु ने पूछा कि रात को छुरी से खून निकालने पर तुम्हारी नींद अवश्य खुली होगी, उस समय तुम्हारे मन मे क्या विचार आये ? शिष्य ने कहा–"जो कुछ आप करेंगे, वह मेरी भलाई के लिए ही होगा–ऐसा सोचकर मैं पुनः सो गया।"

गुरु शुश्रूषया विद्या ॥

[गुरु की सेवा से विद्या प्राप्त होती है।]



क्या विवेक से ही कुगुरु का भण्डाफोड़ किया जा सकता है ?

हाँ; सत्येश्वर गीता में लिखा है–

विछा हुआ है जगत मे
कुगुरुजनों का जाल।
उसे तोड़ने के लिए,
ले विवेक करवाल।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक निर्धन युवक कोई नौकरी और काम-धधे के न मिलने से परेशान होकर किसी गाँव में चला गया। वहाँ अपनी वाक्पटुता से सारे गाँव का गुरू बन गया धन्धा जम गया और श्रद्धावश लोगों ने उसे रहने के लिए एक मठ वनाकर सौंप दिया। एक दिन उस गाँव की एक महिला पीहर गयी। वहाँ दूसरे धर्मगुरू के प्रवचन सुनने का उसे अवसर मिला। लौटकर जव वह पुन: अपने ससुराल में आयी, तब तक उसके मन में एक शक पैदा हो गयी कि आत्मा यदि शुद्ध है तो वह सवसे पहले कव और क्यों अशुद्ध हुई ? गाँव के गुरू से उसने इस प्रश्न का समाधान चाहा। किन्तु इस अनुभवहीन युवक को इस प्रश्न का उत्तर नहीं आता था ; इसलिए वह "संशयात्मा विनश्यति" [जो आत्मा के विषय मे संशय करता है, वह नष्ट हो जाता है] ऐसी धमकी देने लगा और "पर धर्मो भयावह." [पराया धर्म भंयकर होता है] ऐसा कहकर डराने लगा; किन्तु महिला ने असन्तुष्ट होकर उसके द्वारा दी हुई माला लौटा दी। गाँव के दूसरे लोगों पर इस घटना का असर होगा ही–इस आशंका से युवक रातों रात वहाँ से भाग गया।

"गुरू विन मुक्ति न पाइय भाई !"

२६३ : गुरु

क्या बुद्धिमानों को यह अधिकार है कि वे दूसरों को उचित शिक्षा दें?

हाँ; कहा है–

"The intelligent have a right over the ignorant, namely, the right of instructing them."

(दि इन्टैलिजेंट हैव ए राइट ओवर दि इग्नोरेंट, नेमली, दि राइट ऑफ इन्स्ट्रक्टिग दैम)

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक बुद्धिमान पढ़ा-लिखा निर्धन युवक था। एक सेठ ने इस शर्त पर उसे कन्यादान करना स्वीकार किया कि वह धर्मपरिवर्तन करके उस (सेठ) के गुरु को अपना गुरु बनाये। युवक को विवाहित होने की इच्छा थी। प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। विवाह के दिन नियमानुसार नहा-धोकर नये वस्त्र पहिने और गुरुजी को प्रणाम करके उनसे गुरुमन्त्र माँगा, गुरुजी ने कान में गुरुमन्त्र दे दिया। युवक ने पूछा कि इस मन्त्र के जप से क्या लाभ होगा? गुरु ने कहा –"स्वर्ग मिलेगा!" युवक ने पूछा– "क्या सचमुच मिलेगा?" गुरु ने कहा– "अरे, इसके जप से तो वैकुण्ठ और कैलास तक मिल जाते हैं।" युवक ने गुरुजी से कहा– "मैं इस मन्त्र को पाने की खुशी में आपको दक्षिणा में दिल्ली देता हूँ।" गुरु ने कहा– "दिल्ली क्या तेरे बाप की है?" इस पर उसी स्वर में युवक ने हँसी दबा कर कहा– "तो क्या वैकुण्ठ और कैलास तेरे बाप के हैं?" सुनने वाले ठहाका मारकर हँसने लगे।

गुरु लोभी सिख लालची
दोनूं खेलें दाँव।
जाई बेठा बापड़ा
बी पत्थररी नाव ॥



२६५ : गौरव

क्या मनुष्यों को अपना गौरव सबसे अधिक प्रिय लगता है ?

हाँ; तभी तो किसी के कहा है—

राहे खुद्दारी से मर कर
भी भटक सकते नहीं।
टूट तो सकते हैं हम
लेकिन लचक सकते नहीं॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

एक शेखजी थे—बड़े ही स्वाभिमानी। आत्मगौरव की भावना उनकी रग-रग में समाई हुई थी।

एक बार कॉलिज का कोई छात्र उनसे मिलने आया। उसने अपना विजिटिंग कार्ड (परिचय पत्र) चपरासी के साथ शेखजी के पास भेजा। परिचय पत्र उस समय छपवाया गया था, वह इन्टर-मीजिएट था; इसलिए यही विशेषण उसके नाम के आगे छपा था; परन्तु अब वह बी० ए० पास कर चुका था; इसलिए उसने 'इण्टर-मीजिएट' शब्द काटकर लाल स्याही से उस पर 'बी० ए०' लिख दिया।

शेखजी ने परिचय पत्र पढ़ा। उस पर बी० ए० लिखा देखा। उन्होंने स्वयं कोई परीक्षा उत्तीर्ण नहीं कर रखी थी; इसलिए परिचय पत्र के पीछे ही "बीबी पास" लिखकर उसे युवक के पास भिजवा दिया। इस घटना का वर्णन किसी शायर ने इन शब्दों मे किया है—

शेखजी घर से न निकले और लिखकर दे दिया।
आप "बी०ए० पास" हैं तो वन्दा "बीबी पास" है॥

*

२६६ : गौरव

क्या आप यह सिद्ध कर सकते हैं कि दान से गौरव मिलता है, संग्रह से नही ?

हाँ; वादल ऊपर रहते हैं और समुद्र नीचे–

गौरवं प्राप्यते दानान्न तु वित्तस्य सञ्चयात् ।
स्थितिरुच्चै. पयोदानां, पयोधीनामधःस्थिति ।।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

अनोखा कुँवर ने उस इत्रविक्रेता मे सारा इत्र खरीदकर अपने घोडे के शरीर पर चुपड़ दिया, जो उदयपुर के राजमहल मे विक्री न होने से उदास होकर दिल्ली जा रहा था।

क्रुद्ध महाराणा ने कुँवर से इसका कारण पूछा तो कुँवर ने कहा– "मैंने आपका अपमान करने के लिए इत्र नही खरीदा; किन्तु मेवाड़ के और आपके गौरव की रक्षा के लिया खरीदा है। यदि मैं ऐसा न करता तो इत्र वाला दिल्ली जाकर वादशाह के सामने यही कहता कि मेवाड़ के महाराणा बड़े कजूस होते हैं। मैं इतने दूर से आशा लेकर गया; परन्तु वे जरा-सा भी इत्र नहीं खरीद सके।"

महाराणा को यह सुनकर प्रसन्नता हुई। दण्ड के बदले कुँवर को उन्होने खजाने से बहुत-सा धन पुरस्कार रूप में दिलवाया।

सरस्वती स्थिता वक्त्रे,
लक्ष्मीर्वेश्मनि ते स्थिता।
कीर्तिः किं कुपिता राजन् !
या देशान्तरं गता ।।

[हे राजन् ! तुम्हारे मुंह में सरस्वती है और घर मे लक्ष्मी; परन्तु कीर्ति क्या कुपित हो गयी है, जो अन्य देशों म चली गयी।]

२६७ : गौरव

सम्मान्य व्यक्ति को अपयश मृत्यु से भी क्या अधिक कष्टप्रद होता है ?

हाँ; गीता में कहा है—

सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

किसी शहर में सेठ रामलालजी का रसोइया शाक-भाजी खरीदने के लिए सब्जी मार्केट में गया। वहाँ उसने एक कूंजड़े के पास भिण्डी की शाक देखी। भिण्डियों की नई मौसम होने से वह मँहगी भी थीं और एक ही जगह मिल रही थी। वह सौदा तय कर ही रहा था कि उसी शहर के दूसरे सेठ श्यामलाल का रसोइया भी उधर से निकला, उसे भी वह शाक खरीदने की इच्छा हुई। उसने चिल्लाकर कहा—"हट जाओ, यह शाक मैं खरीदूंगा"

"पहले मैं आया हूँ, इसलिए मैं खरीदूंगा।"

"मार्केट में पहले पीछे आने का कोई महत्व नहीं, धन का महत्व है, जो अधिक मूल्य दे सके, वही माल का अधिकारी हो सकता है।"

"मैं इस भिण्डी के सौ रुपये दे सकता हूँ।"

"मैं दो सौ रुपये दे सकता हूँ !

"मैं तीन सौ रुपये दे सकता हूँ।"

श्यामलाल का रसोइया चुप हो गया। रामलाल के रसोइये ने सब्जी खरीद ली। बहुत ही स्वादिष्ट बनाकर सेठजी को परोसी। सेठजी से शाक की प्रशंसा सुनकर रसोइये ने कहा कि यह शाक किस प्रकार तीन सौ रुपये की लागत से बनी है। सेठजी ने अपने गौरव की रक्षा करने वाले रसोइये को प्रसन्न होकर अपने गले का हार पुरस्कार में दे दिया।

गौरवं प्राप्यते दानात्।

[देने से ही गौरव प्राप्त होता है।]

२६८ : गौरव

क्या दान से ही गौरव प्राप्त होता है ?

हाँ; जल का संग्रह रखने वाले समुद्र नीचे रहते हैं और जल का दान करने वाले बादल ऊपर रहते हैं–

गौरव प्राप्यते दानान्न तु वित्तस्य सञ्चयात् ।
स्थितिरुच्चैः पयोदानाम्, पयोधीनामधःस्थितिः ।।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक धनी आदमी से मिलने के लिए एक बार उसका कोई मित्र उसके घर आया। कुशल प्रश्न के बाद सहज ही उसने एक प्रश्न किया–"आपका दाहिना हाथ बड़ा महत्वपूर्ण है। हर काम में पहले वही उठता है–चाहे लेखन हो या स्नान, सफाई हो या दान; फिर क्या कारण है कि आपने सोने की यह रत्नजटित अँगूठी दाहिने हाथ की उँगली को न पहिना कर बाएँ हाथ की उँगली को पहिनायी है ?"

धनी आदमी ने कहा–"दाहिना हाथ बड़ा है; इसीलिए तो उसने स्वयं अँगूठी न पहिन कर छोटे हाथ को पहिनायी है, छोटे हाथ ने भी इसी नियम के अनुसार बड़ी उँगली और अँगूठे को छोड़कर छोटी उँगली को अँगूठी पहिनायी है, जो छोटों का ध्यान रखता है, वही बड़ा है; बड़ों का बड़प्पन छोटों के अस्तित्व पर ही निर्भर है; इसलिए बड़े छोटों को दान करते है।"

किसिणिज्जन्ति लयन्ता, उदहिजलं जलहरा पयत्तेणं ।
धवलीहुन्ति हु देन्ता, देन्तलयन्तन्तरं पेच्छ ।।

[सावधानीपूर्वक समुद्र का पानी लेते हुए बादल काले हो जाते है और देते हुए सफेद हो जाते हैं, देखिए, देने और लेने वालों कितना अन्तर होता है ?)

२६६ : गौरव

क्या पेट ही गौरव को नष्ट करता है ?

हाँ; तभी तो एक दोहे में कविवर 'रहीम' ने बहुत अच्छे ढंग से यह बात समझायी है—

'रहिमन' भाखत पेट सों
क्यों न भयो तू पीठ।
भूखे मान डिगावही
भरे विगारत दीठ ॥

कोई दृष्टान्त ? सुनिये—

मेवाड़ का एक भाट भूख की ज्वाला को शान्त करने के लिए मुगल सम्राट् अकबर के दरबार में पहुँचा। वहाँ बादशाह को सलाम करने से पहले उसने अपने मस्तक से पगड़ी उतार कर बगल में दबा ली।

यह देखकर अकबर ने कहा—"क्या आप नहीं जानते कि पगड़ी उतार कर सलाम करना कितना बड़ा गुनाह है ?"

भाट ने उत्तर में कहा—"जानता हूँ। किन्तु आदत से मजबूर हूँ। यह पगड़ी महाराणा प्रताप की दी हुई है, जब वे अत्यन्त कष्ट झेलकर भी आपके सामने नहीं झुके तो उनकी दी हुई पगड़ी कैसे झुक सकती है ? हमारा सिर तो हमारे पेट का गुलाम है। जहाँ रोटी का टुकड़ा मिला, वहीं झुक जाता है।"

भाट की बात सुनकर बादशाह इस बात से चकित हो गया कि साधारण भाट भी जिसके गौरव की सुरक्षा का पूरा ध्यान रखते हैं। वह महाराणा प्रताप कितना महान है !

विपुलविलसल्लज्जावल्लीवितानकुठारिका
जठरपिठरी दुष्पूरेयं करोति विडम्बनाम् ॥

[विशाल सुशोभित लज्जारूपी लतावितान को काटने वाली पेटरूपी यह दुष्पूर मटकी विडम्बना करती है।]

२७० : घमण्ड

क्या अत्यन्त तुच्छ प्राणी को अत्यन्त विराट् अहंकार होता है ?

हाँ; कहा है वाल्टेयर ने–

The infinitely little have a pride infinitely great.

(दि इन्फिनिटली लिटिल हेव ए प्राइड इन्फिनिटली ग्रेट)

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक घर में सासू से वहू की प्रायः प्रतिदिन बोलाचाली हो जाती थी। उसके वाद रूठकर वह बहू पर वकझक करती हुई घर से वाहर निकलकर बैठ जाती थी। भोजन के समय वहू सासू को मनाने जाती थी। इसके द्वारा सासू मुहल्ले वालों के सामने यह प्रकट करना चाहती थी कि घर में मेरी कितनी इज्जत है। एक दिन पति परदेश गया था। सासू अपनी आदत के अनुसार रूठकर वाहर बैठ गई। वहू उस दिन जान बूझकर मनाने नही गयी। भोजन वनाया और खा-पीकर दूसरा काम करने लगी। उधर सासू के पेट में चूहे दौड़ने लगे। वह सुवह से शाम तक बैठी रही। शाम को भी भोजन का समय हो गया, फिर भी जब वह मनाने नही आयी और मुहल्ले वाले भी उससे वाहर बैठने का कारण पूछ-पूछकर उसे लज्जित करने लगे तव उसके लिए वहाँ बैठे रहना कठिन हो गया। वह सोच रही थी कि एक वार किसी तरह मैं घर के भीतर पहुँच जाऊँ; फिर भोजन तो स्वय कर लूंगी। उसी समय चरने गयी भैंस अपनी पाड़ी के साथ लौट आयी। वह घर में घुस गई। भैंस के वाद पाडी घुसने लगी कि सासू ने उसकी पूंछ पकड़ कर–"रहने दे पाडी ! मुझे क्यो अपने साथ ले जा रही है ?" ऐसा कहते हुए घर में प्रवेश किया।

मानं म्लाने कुतः सुखम् ?

[अभिमान या सम्मान के नष्ट होने पर सुख कहाँ?]



२७१ : चतुर

क्या चतुर वही है, जो बोलने की कला जानता हो?

हाँ; कहा भी गया है–

हारिबेको मूल एक आतुरी है रनमाझ।
चातुरी को मूल एक बात कहि जानिबो॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक बार बीरबल ने कह दिया कि बनिये बहुत चतुर होते हैं तो अकबर ने इसका सबूत पेश करने का हुक्म दिया।

बीरबल ने तत्काल चार बनियों को बुलवाया और बादशाह के सामने ही मूंग के कुछ दाने फर्श पर रखकर बनियों से पूछा कि इस अन्न का नाम क्या है?

पहला– "यह मोठ नही लगता।"

दूसरा– "और उड़द भी नही मालूम होता।"

तीसरा– "काली मिर्च भी ऐसी नही होती।"

चौथा– "है तो कोई परिचित वस्तु; परन्तु नाम याद नही आ रहा है।"

बीरबल– "क्या मूंग है?"

बनिये– "हाँ, हाँ, वही।"

बीरबल– "वही क्या?"

बनिये– "जो आपने कहा था।"

बीरबल– "मैंने क्या कहा था?"

बनिये– "वह तो हम भूल गये।"

बीरबल– "आप मूंग का नाम लेने में डरते क्यों हैं?"

बनिये– "शायद बादशाह इस नाम से चिढ़ते हों और हमें ऐसी अतिपरिचित वस्तु का नाम लेने को मजबूर कर किसी षड्यन्त्र में न फँसाया जा रहा हो–इस आशंका से हमने नाम नहीं लिया।"

बादशाह को इससे बनियों की चतुराई का सबूत मिल गया।

"अक्लमंद को इशारा काफी॥



क्या यश चतुराई से मिलता है ?

हाँ; यशस्वी पुरुष में यही एक विशेषता होती है; अन्यथा शरीर तो सबका समान ही होता है–

श्रावण नयन अरु नासिका, है सबके एक ठौर ।
कहिबो सुनिबो समुझिबो, चतुरन को कुछ और ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

ठंड के दिनों में अकबर की घोषणा सुनकर कि जो भी नदी में रात-भर खड़ा रहेगा, उसे हजार रुपये का पुरस्कार दिया जयेगा, एक गरीब आदमी खडा रहकर अपना पुरस्कार पाने के लिए बादशाह के सामने पहुँचा । पहरेदारों ने बताया कि रात भर महल के ऊपर टिमटिमाते दीपक को देखता रहा है । "तुम्हे दीपक की गर्मी का लाभ मिल गया था ." ऐसा कहकर विना पुरस्कार दिये ही उसे विदा कर दिया गया । उस आदमी ने अपना दुखडा बीरवल को कह सुनाया । बीरवल ने उसकी सहायता करने का आश्वासस दिया ।

उस दिन दरबार मे बीरवल की उपस्थिति न देखकर बादशाह ने उसे बीमार समझकर उसके घर में कदम रखा । घर के आँगन में एक बाँस गडा था । उसके सिरे पर एक हडिया रखी थी, जमीन पर आग जल रही थी । बीरवल ने कहा कि यह खिचडी पक जाय, फिर मै उसे परोसकर आपको भी खिलाऊँगा ।

बादशाह–"लेकिन जमीन की आग हडिया तक पहुँचेगी कैसे ?"

बीरवल–"वैसे ही जैसे महल के दीपक की आग नदी में खड़े मनुष्य तक जा पहुँचती है ।"

इस उत्तर से अपनी भूल समझकर बादशाह ने उस आदमी को दो हजार रुपये का पुरस्कार दे दिया ।

चतुरनी चार घड़ी ने मूरखनो जमारो ।

२७३ : चतुराई

क्या हँसी उड़ाना बुरी बात है ?

हाँ; दुर्गुण सबमें होते हैं ; इसलिए किसी की हँसी नहीं उड़ानी चाहिए—

लंछन चंद में ताप दिनंद में
 चदन माहि फणिद को वासो ।
पडित निर्धन है जू धनी शठ
 नार महाहठ को घर वासो ॥
हेम हिमाचल खारो है वारिधि
 केतकि कटक कोटि को वासो ।
देख 'धरम्मसी' है सबकूं दुःख
 कोऊ करो मत काहू को हासो ॥

वैसे हँसी किये जाने पर भी चतुर व्यक्ति चुटकियो में वातावरण को सभाल सकते हैं ।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

महाराज कुमारपाल की राजसभा में बड़े-बड़े दार्शनिकों की उपस्थिति थी । महामनीषी श्री हेमचन्द्राचार्य भी वहाँ जा पहुँचे । जैन साधु के वेष के अनुकूल डंडा और कम्बल उन्होंने धारण कर रखी थी। उनके इस वेष को देखकर किसी विद्वान् ने उनकी हँसी उड़ाते हुए कहा—

आगतो हेमगोपालो दण्डकम्बलमुद्वहन् ।

[ग्वाला हेम डण्डा और कम्बल लेकर आ गया है ।]

चतुर हेमचन्द्राचार्य ने उत्तर दिया—

षड्दर्शनपशुप्रायां—
 श्चारयन् जैनवाटिके ॥

[जैन धर्म के अनेकान्तोद्यान मे षड्दर्शन रूपी पशुओं को चराता हुआ ।]



२७५ : चतुराई

साधुता पाये विना साधु कहलाना क्या बुरा है ?

हाँ; बहुत बुरा—

A bad man is worse when he pretends to be saint

(ए बेड मैन इज वर्स व्हेन ही प्रीटेन्ड्स टु बी सेन्ट)

कोई दृष्टान्त ? सुनिये—

चार चोर साधुवेष में थोड़ी-थोड़ी दूर पर बैठे थे। उधर से उसी मार्ग पर एक सेठ गुजर रहा था। पहले चोर ने उसे देखकर "दामोदर ! दामोदर !" कहा। आशय यह था कि इस आदमी के पेट पर रुपयों नौली बँधी है।

दूसरे चोर ने "हर ! हर ! महादेव !" कहा। मतलब यह कि उस धन का अपहरण करो और सबको बराबर बाँट दो।

तीसरे ने जिज्ञासा प्रकट की—"कृष्ण ! कृष्ण !"—यह लूटने का कार्य किस जगह किया जाय ?

चौथे ने कहा—"मधुवन ! मधुवन !" अर्थात् मीठा बोल कर जंगल में लूटो।

सेठ चतुर था। उनकी सांकेतित भाषा के आशय को समझकर उसने हाथ-जोड़कर कहा—"बड़े भाग्य से आज मुझे आप जैसे महत्माओं के दर्शन हुए है, यदि आप मेरा घर पवित्र करें तो मैं भरपूर स्वागत करूँगा और सेवा में मुट्ठी-मुट्ठी भर मोहरें प्रत्येक को समर्पित करूँग।"

चोरों ने प्रस्ताव मान लिया। सेठ उन्हें घर पर ले गया। उन्हे एक कमरे में बिठाकर, स्वागत की तैयारी के वहाने वाहर आकर कमरे की सॉकल लगा दी और फिर पुलिस को वुलाकल चोरों को पकड़वा दिया।

Cunning proceeds from want of capacity.

(कनिग प्रोसीड्स फ्रोम वाट ऑफ कपैसिटी।

[धूर्तता पायीवही जाती है, जहाँ योग्यता का अभाव हो।] ❋

क्या विना सोचे काम करने वाला पछताता है ?

हाँ; विना विचारे जो करे, सो पाछे पछिताय ।
काम बिगारैं आपुनो, जग में होत हँसाय ।

कोई दृष्टान्त ? सुनिये–

बुद्धिमती बहू के इन्कार करने पर भी एक सेठ ने राजा को भोजन के लिए निमन्त्रित किया। सेठानी परोसने लगी तो राजा उसके रूप पर आसक्त होकर उसे हथियाने का उपाय सोचने लगा। राजमहल मे लौटने पर सचिव ने सलाह दी कि सेठजी को बुलाकर उन्हें वचन में बाँधना चाहिये, इससे कार्य-सिद्धि हो सकती है।

सेठ जी बुलवाये गये। सचिव ने कहा–"सेठ जी ! राजा को मूर्ख, चतुर, कपटी और नमक हराम के दर्शन कल शाम तक आप करायेंगे। यदि नहीं करा पाये तो आपको अपने घर की उत्तम वस्तु भेंट करनी होगी।"

सेठ जी घर लौट आये। उन्हें उदास देखकर बहू ने इस उदासी का कारण पूछकर जान लिया, फिर कहा–"आप चिन्ता न करें, राजा के कुत्ते उस सचिव का यह सारा षड्यन्त्र है, जो मेरे रहते सफल नही हो सकेगा। मैं माताजी की रक्षा करुँगी। कल राज सभा मे आपके साथ चलकर राजा को समझा दूँगी।"

दूसरे दिन अभयदान का वचन लेकर राज सभा में बहू ने स्पष्ट शब्दों मे अपेक्षित चारो व्यक्तियों की ओर यों संकेत किया–

मूरख म्हारो ससुर है, घर मे चातुर हूँ।
कपटी थारो सचिव है, नमक हरामी तूँ।

[मेरे ससुर ने अच्छी सलाह नही मानी, अत. मूर्ख है–मैंने सासू को बचाया, अत. चतुर हूँ–उल्टी सलाह देने वाला सचिव कपटी है और जिसका नमक खाया, उसकी स्त्री पर बुरी नजर डालने वाला तू नमक हराम है।]



२७७ : चतुराई

क्या योग्यता के अभाव से धूर्तता जन्म लेती है ?

हाँ; Cunning proceeds frcm want of capacity (कनिंग प्रोसीड्स फ्रॉम वान्ट ऑफ केपेसिटी)

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये--

एक धनवान् आदमी किसी काम से दूसरे शहर गया था। घर पर उसकी माँ और पत्नी रह गयी। पड़ौस के ही एक चोर ने इस अवसर का लाभ उठाने की ठान ली। मुँह पर साफा लपेट कर वह शाम के समय ही घर में घुसकर अनाज की कोठी के पीछे छिपा रहा। रात हुई, किवाड़ वन्द करके सासू-वहू अपने-अपने पलंग पर लेट गई। कुछ देर वाद चोर प्रकट हुआ। वहू ने उसे देख लिया; फिर भी न देखने का डौल करते हुए उसने सासू से कहा कि अम्माजी ! आजकल चोर वहुत घूम रहे हैं, मौका देखकर वे घर मे घुस जाते हैं और घर वालों को नींद आयी नही कि सव गहने उड़ा ले जाते हैं। गहनों में वजन कम होता है और उन्हे बेचने पर मूल्य अधिक मिलता है; इसलिए घर में गहनों पर उनकी नजर रहती है।

सासू ने पूछा कि तूने अपने घर के गहने कहाँ रखे हैं? इस पर चतुर वहू ने जवाव दिया कि मैंने घर के सारे गहने एक काले कपड़े में बाँधकर उसकी पोटली नीचे वगीचे के एक पेड़ की शाखा पर लटका दी है; जिससे किसी को शंका ही न हो। यह सुनते ही चोर घर से निकलकर उस पेड़ के पास पहुँचा। वहाँ मधुमक्खी के छत्ते को गहनो की पोटली समझकर पकड़ लिया। मक्खियों के काटने पर वह धड़ाम से जमीन पर गिर पड़ा। सासू वहू की चतुराई पर प्रसन्न हुई। किवाड़ वन्दकर वे आराम से सो गई।

"शठे शाठ्यं समाचरेत् ॥"

(धूर्त के साथ धूर्तता का व्यवहार करना चाहिए।)

२७८ : चतुराई

क्या बुद्धिमत्ता कामधेनु होती है।

हाँ; कहा है–

शुद्धा हि बुद्धिः किल कामधेनुः ॥

कोई दृष्टान्त ? सुनिये–

एक राजपूत था। वह ससुराल गया। वहाँ से पत्नी को अपने साथ लेकर अपने गाँव को लौट रहा था। रास्ते में एक डाकू दिखाई दिया। पति घवरा गया। वह मुकावला करने के मूड में नही था। ऐसी अवस्था मे उसके पौरुष को जागृत करने की दृष्टि से उसे पत्नी ने यों समझाया–

कायर मत हो कुन्त जी !
धनुष-वाण लो हाथ।
वन में वैरी जीत लो
रहे चौगुनी वात ॥

राजपूत ने भाग्यवादी उत्तर देते हुए पत्नी से यों कहा–

मत छेड़े मुझ पापिनी।
वैठी रह चुपचाप।
लिख्यो लेख ललाट में
टाल्यो टलै न आप ॥

यह कहकर पति ने डर के मारे काँपते हुए अपना मस्तक पत्नी की गोद में रख दिया। फिर आँखे वन्द करके अपने दुःख को भुलाने की चेष्टा करने लगा। पत्नी ने सोचा कि जरा-सी गफलत में धन भी जायगा और इज्जत भी। वह वहुत चतुर थी। उसने गम्भीर स्वर में कहा–

रे वीरा वन वासिया ! अठे चल्यों मत आव।
कोप चढ्यो मुझ पियुभणी, रखे करेलो घाव ॥

यह सुनते ही डाकू भाग गया।

२७९ : चतुराई

क्या चतुर ही पहेलियों का उत्तर दे पाते हैं ?

हाँ; यही कारण है कि संस्कृत की पहेलियों मे कहा जाता है–"यो जानाति स पण्डितः ।"

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक राजकुमारी ने हजारों पहेलियों के उत्तर याद कर रखे थे। कोई भी पहेली वह सुनती तो तत्काल उसका उत्तर उसे सूझ जाता। उसके लिए एक भी पहेली नई नहीं रह गयी थी। उसने सकल्प प्रकट किया कि जो युवक उसे पहेले में निरुत्तर कर देगा, उसी को वह अपना जीवन साथी स्वीकार करेगी। अनेक युवकों के निराश लौटने के वाद एक युवक ने तीन पहेलियाँ नयी बानकर पूछीं –

श्याम वर्ण पर कृष्ण नहि, चौमुख ब्रह्मा नाय।
वाहन जको वृषभ है, महादेव तो नाय ॥
षट्पद पर भौंरा नही, तीन नेत्र नहि ईश।
दो जिह्वा फणिपति नही, चार कान दो शीश ॥
पाँव अठारह शीश नौ, ता विच लोचन एक ॥
कै तो दोके तीन हों, या फिर दो का एक ॥

राजकन्या ने निरुत्तर होकर वरमाला उसे पहिना दी। युवक ने तीनों पहेलियों का उत्तर क्रमशः इस प्रकार दिया–

(१) बैल पर पानी से भरी पखाल है। इसका रंग काला है। मुँह चार हैं (दो ऊपर-दो नीचे) बैल पर रखी जती है। (२) एक काना आदमी घोड़े पर सवार है। (३) आठ अन्धे और एक काना। युवक की माँ नही थी। निरुत्तर होने पर वह लज्जित होकर मर जाता (दो का एक केवल पिता); किन्तु कन्या के निरुत्तर होने पर वह विवाहित हो जायगा (दो के तीन बन जायेंगे।)



क्या कारण के अज्ञान से ही चमत्कार मालूम होता है ?

हाँ; "कारणाज्ञानतश्चित्ते चमत्कारो हि जायते ॥"

कोई दृष्टान्त ? सुनिये—

घूमते हुए दो काबुली वालों ने नगर के सब्जी मार्केट में पहली वार एक बड़ा फल देखकर उसका जब परिचय पूछा तो उन विदेशियो से अपना उल्लू सीधा करने के लिए कूंजड़े ने कद्दू की ओर संकेत करते हुए कहा कि यह तो घोडी का अण्डा है, एक दो दिन बाद इससे बच्चा निकलकर बडा हो जायेगा, वह तेजी से दौड़ेगा। इसका मूल्य केवल पचास रुपये है। इस पर बैठकर पूरे भारत मे आप लोग भ्रमण कर सकेगे। यात्रियों ने सस्ती सवारी मिलने की संभावना से कद्दू खरीद लिया।

फिर दूसरे नगर मे जाने के लिए वहाँ से निकल पड़े। रास्ते मे एक ऊँची चट्टान पर कद्दू रखकर दोनों शौच के लिए बैठे। हवा चली, कद्दू नीचे गिरकर फूट गया। पास की एक झाडी से उसी समय एक खरगोश निकलकर भागा। यात्रियों ने समझा कि अडे से घोडा निकल गया है। वे उसे पकड़ने का उपाय सोच ही रहे थे कि एक हिरन दौड़ता हुआ सामने से निकल गया। उन्होने समझा कि घोडा बडा होकर भाग गया है। अपनी असावधानी के लिए पछताते हुए वे आगे बढ गये। दूसरे नगर मे रहने वालो को उन्होंने यह दुर्घटना सुनायी। लोगो ने कहा कि घोड़ी अडे नही दिया करती। किसी कूंजड़े ने आपको ठग लिया है; परन्तु यात्रियों ने उनका विश्वास नही किया; क्योंकि वे अपनी आँखो से अडे को फूटते, बच्चे को निकलते और बडा होकर भागते देख चुके थे। किसी भी विचित्र घटना को देखकर वास्तविक कारण की खोज किये विना चमत्कृत होने वाले ऐसे ही अज्ञ होते है।

नाकारण भवेत्कार्य नान्यकारणकारणम् ।
अन्यथा न व्यवस्था स्यात्कार्यकारणयो. क्वचित् ॥

[विना कारण के कार्य नही होता और अन्य कारण से भी कार्य नही होता। कार्य कारण की व्यवस्था कभी अन्यथा नही होती।] ❋

२८१ : चरित्र

क्या चरित्र से ही मनुष्य का परिचय मिलता है ?

हाँ; वह कुलीन है या कुलहीन, वीर है या कोरी शेखी मारने वाला, पवित्र है या अपवित्र — इसका पता उसके चरित्र से ही लगता है—

कुलीनमकुलीनं वा
वीरं पुरुषमानिनम् ।
चरित्रमेव व्याख्याति
शुचिं वा यदि वाऽशुचिम् ।।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

एक ओझा था—बड़ा आलसी, अपनी झौपड़ी को भी वह ठीक नहीं कर पाया था । झाड़-फूंक द्वारा लोगों का झूठा-सच्चा इलाज करना ही उसकी आजीविका का एकमात्र साधन था ।

एक दिन बिच्छू का डंक लगने से तड़पता हुआ एक आदमी आया। आस-पास के कुछ आदमी, बच्चे और औरतें भी तमाशा देखने वहाँ आकर बैठ गयी थी । झाड़-फूंक शुरू हुई । ओझा बोला— "आकाश बाँध, पाताल बाँध, सात समुद्र बाँध, तीन लोक बाँध····"

यह सुनते ही एक औरत ने (जो रसोई करते-करते हाथ में चिमटा लेकर वहाँ आ बैठी थी) कहा— "पहले अपनी झौपड़ी तो बाँध !"

आकाश-पाताल की बातें करने वाले को अपनी झोपड़ी का ध्यान ही नहीं । चरित्र की शुरुआत अपने घर से ही होनी चाहिए । दूसरों को उपदेश देने से पहले अपने जीवन को वैसा बनाना चाहिए ।

"पर उपदेश कुशल बहुतेरे ।
जे आचरहिं ते नर न घनेरे ।।



क्या चरित्र ही उत्तम वस्तु है?

हाँ; शंकराचार्य कहते हैं—

किमुत्तमं ? सच्चरितं यदस्ति ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

एक कलाकार मुट्ठी बन्द किये सभा में पहुँचा। सभासदों ने पूछा कि मुट्ठी में क्या है? प्रत्येक के पूछने पर सबको अलग अलग उत्तर मिला। कलाकार ने क्रमशः प्रत्येक को अलग-अलग बताया कि उसकी मुट्ठी में हाथी, घोड़ा, ऊँट, गधा, सूरज, चाँद आदि हैं। इस विचित्र उत्तर से श्रोताओं का कौतुक और भी बढ़ गया। उसने मुट्ठी खोली तो उसमें स्याही की एक टिकिया थी। उसने उसे एक दवात में डालकर थोड़ा-सा जल मिलाया और फिर तूलिका से कागज पर उन सब वस्तुओं के चित्र बना दिये। इससे सबका कुतूहल शान्त हो गया।

इसी प्रकार ज्ञान की सूखी टिकीया में श्रद्धा का जल मिलाइये। फिर शुद्ध हृदय के स्वच्छ कागज पर बुद्धि की तूलिका से चरित्र के चित्र बनाकर अभीष्ट सुख प्राप्त कीजिये।

चरित्र से ही ज्ञान सार्थक होता है। जैसा कि आचार्यों ने कहा है।

जहा खरो चंदणभारवाही
भारस्स भागी न हु चंदणस्स।
एवं खु नाणी चरणेण हीणो
भारस्स भागी न हु सोग्गईए ॥

[जैसे चन्दन की लकडी का बोझा ढोने वाला गधा उसकी शीतलता का आनन्द नही भोग सकता, वैसे ही चरित्र से रहित ज्ञानी ज्ञान का भार उठाता है; उसे सद्गति नही मिलती (ज्ञान के साथ चरित्र आवश्यक है)]

२८३ : चिकित्सा

क्या शरीर रोगों का घर है?

हाँ; कहा है–

शरीरं व्याधिमन्दिरम् ।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

रोग सिर्फ शरीर में ही नहीं होते, मन में भी होते है । पागलपन एक मानसिक रोग है । उसका इलाज भी मानसिक ही होता है, जिसे मनोवैज्ञानिक चिकित्सा कहते हैं ।

एक आदमी ने रात को सपने में एक ऊँचा रूई का पहाड़ देखा । आश्चर्य में डूबकर वह चिल्ला उठा–"कौन धुनेगा ? कौन कातेगा ? बुनेगा कौन ?" घर वालो ने उसे जगाय भी; किन्तु वार-वार उसे वह रूई का पहाड़ याद आ जाता और जाग्रत अवस्था में भी वह इसी प्रकार वड़वड़ा उठता । लोग उसे पागल कहने लगे । पड़ौसियों की सलाह से एक वार उसे पकड़कर घर वाले, शहर में ले गये । वहाँ मनोवैज्ञानिक डाक्टर ने उसके रोग को समझा । वह जब चिल्लाया–"कौन धुनेगा ? कौन कातेगा ? वुनेगा कौन ?" तभी डाक्टर ने विश्वास के साथ उससे कहा–"अरे, वह तो जल गया ।" पागल ने कहा–"क्या रूई का पहाड़ जल गया ? आपने उसे जलते हुए देखा है ?" डाक्टर ने कहा–"हाँ-हाँ, मैं देखा है । वह तो राख का ढेर बन गया और बरसात के पानी में उसकी राख भी वह गयी ।" यह सुनते ही रोगी स्वस्थ हो गया ।

अज्ञाननाशिनी प्रज्ञा ।

[बुद्धि अज्ञान का नाश करने वाली है ।]



२८४ : चिकित्सा

क्या रोग प्राणी का पीछा करता है ?

हाँ; रोग ही नही, बल्कि बुढापा और मरण भी उसका पीछा कर रहे है; इसलिए सबको ज्ञानी सलाह देते हैं कि सोओ मत; जागना चाहिए; जहाँ भागने का अवसर हो, वहाँ विश्राम कैसा ?

मा सुयह जग्गिअव्वं
पलाइयव्वम्मि कीस वीसमह ?
तिण्णि जणा अणुलग्गा,
रोगो अ जरा अ मच्चू अ ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक सगर्भा स्त्री को छींक आयी। इससे गर्भ में रहे हुए बच्चे की मुट्ठी खुली, जब मुट्ठी बन्द हुई तो उसमे कोई ऐसी चीज फँस गई जिससे माँ को भयकर पीड़ा होने लगी। थोड़ी ही देर में पीड़ा असह्य होने से वह बेहोश हो गई। उसे मृत समझकर घर के कुटुम्बी रोने लगे। एक अनुभवी पड़ौसी ने उसकी स्थिति को समझ लिया। फिर चिकित्सा के लिए अपनी मुट्ठी में एक पिस्तौल पकड़ कर उस बेहोश माता के कान के पास एक धडाका किया। धड़ाके की आवाज के डर से बच्चे की मुट्ठी खुल गयी और माता होश में आ गयी, स्वस्थ हो गयी। मौके की इस सूझ से माँ की चिकित्सा हो गयी; अन्यथा उसकी प्राण-रक्षा असम्भव ही थी।

कर्मणा बध्यते जन्तु–
विद्यया तु प्रमुच्यते ॥

[कर्म से ही (इस संसार में) प्राणी बँधता है (दुःख उठाता है) और विद्या से मुक्त हो जाता है।]

२८५ : चिन्तन

क्या ज्ञान चिन्तन का फल है ?

हाँ; समय पर अध्ययन करने के वाद अकेले वैठकर चिन्तन करना चाहिए–

कालेण य अहिज्जित्ता
तओ झाइज्ज एगगो ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक मन्दबुद्धि शिष्य को गुरुजी ने यह मन्त्र दिया–"मा रुष मा तुष" (तू न प्रसन्न हो, न नाराज)। इसमें घमण्ड और गुस्से का त्याग करने की प्रेरणा भरी थी; परन्तु शिष्य इतना छोटा वाक्य भी याद नहीं रख सका। वह रटने लगा 'माषतुष'। कुछ समय बाद उसका नाम ही माषतुषमुनि पड़ गया। माषतुप के अर्थ पर चिन्तन करते-करते उसे केवलज्ञान प्राप्त हो गया। उस शब्द का अर्थ होता है–उड़द का छिलका। मुनी सोचने लगा कि चेतन और तन में भी वही अन्तर है जो उड़द और उसके छिलके में। जैसे छिलके के भीतर उड़द छिपा है वैसे ही तन के भीतर चेतन–शरीर के भीतर आत्मा छिपा है आदि।

वलं बुद्धिश्च तेजश्च
प्रतिपत्तिः क्रियाफलम्।
फलन्त्येतानि सर्वाणि,
विचारेणैव धीमताम् ॥

[बल, बुद्धि, तेज ज्ञान, क्रियाफल–ये सब बुद्धिमानों के विचार द्वारा ही सफल होते है (विचार की शक्ति ही समस्त कार्यो की सफलता का कारण है)।]



२८७ : चिन्ता

एक बिन्दु (स्वर रहित नकार) के अतिरिक्त भी क्या चिता और चिन्ता में कुछ अन्तर है ?

हाँ; चिता निर्जीव को जलाती है और चिन्ता सजीव को–

चिता चिन्तासमा प्रोक्ता,
बिन्दुमात्रविशेषतः ।
चिता दहति निर्जीवम्,
चिन्ता जीवितमप्यहो ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

चीन के शासक कैदियों को ऐसे जल से भरे मिट्टी के मटके के नीचे बिठाते थे, जिनसे पानी की एक-एक बूंद टपकती रहती थी। अन्त में, वे बूंद कैदियों को हथौड़ों की तरह लगती और वे बूंदों के निरन्तर आघात से पागल हो जाते थे। चिन्ता भी टपकने वाली उन बूंदों की तरह मनुष्य को पागल बनाने वाली है। एक सवाद है–

चिन्तो ! दुर्बलतास्ति कि तव सखी
यत्सार्धमेवेक्ष्यते ?
नैवं किंतु ममास्ति विश्वविजयी
दुःखाभिधो नन्दनः ।
तस्यैषा रमणीति वल्लभतरा
जाता मदीया स्नुषा
[illegible]चितपरायणमन्वहमतो
[illegible] नो याति दूरं क्वचित् ॥

["हे चिते ! क्या दुर्बलता तेरी सहेली है, जो सदा तेरे साथ दीखती है?" "नहीं, किंतु दुःख नामक मेरा जो विश्वविजयी पुत्र है उसकी यह प्रिय पत्नी होने से मेरी पुत्रवधू है। यह सासू की (मेरी) भक्ति में तत्पर रहने वाली है, इसलिए मुझसे दूर कभी नहीं जाती ! चिंता व्यक्ति को दुर्बल बना देती है)।]

२८८ : चिन्ता

क्या जीवित प्राणी को चिन्ता नही करनी चाहिए;

हाँ; कहा है–

मुर्दे को भी मिलत है,
लकड़ी कपड़ा आग।
जीवित हो चिन्ता करे,
ताको बड़ो अभाग॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

महायुद्ध के दिनों में चर्चिल को अठारह घंटे प्रतिदिन कार्यव्यस्त रहना पड़ता था, क्योंकि बहुत-से कार्यों की जिम्मेदारियाँ उन पर थी। सबको वे कुशलतापूर्वक वहन करने में लगे रहते थे।

किसी ने हँसमुख चर्चिल से प्रश्न किया– "इतना कार्यभार सिर पर रहते भी आप प्रसन्नचित कैसे रह लेते है? क्या आपको कभी कोई चिन्ता नहीं होती ?" इस पर चर्चिल ने उत्तर दिया– "मेरे पास इतना समय ही कहाँ है कि मैं चिन्ता करूँ ?"

चिन्ता स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त हानिकर है। वह खून को जलाती है। प्रसन्नता की हत्या कर देती है और मित्रों को दूर भगा देती है। वह सौन्दर्य, शक्ति और विद्या का संहार कर देती है–

चितया नश्यते रूपम्,
चितया नश्यते बलम्।
चितया नश्यते ज्ञानम्
व्याधिर्भवति चितया॥

(चिन्ता से रूप, बल और ज्ञान नष्ट हो जाता है, और रोग की उत्पत्ति हो जाती है।)

✻

२८९ : चिन्ता

ईंधन से अग्नि की तरह क्या चिन्तन से चिन्ता बढ़ती है ? हाँ; कहा भी है–

> चिन्तनेनैधते चिन्ता
> विन्धनेनैव पावकः।।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एच धनाढ्य सेठ ने जूता सीते हुए एक चमार के भजन से प्रसन्न होकर उसे पचास रुपये इनाम दिये। चमार रोज कमाता और रोज खाता था पचास रुपये एकदम मिलने से उन्हें सँभालने की चिन्ता उसके सिर पर सवार हो गयी। दिन में दो-तीन बार रुपये गिनकर देखता कि वे पूरे पचास है भी या नहीं। चोरी के डर से रात को उसे नीद भी नही आयी। दिन को झोंके (ऊँघ के झटके) आने से काम भी विगड़ने लगा। पूरी मस्ती न होने से उसके भजनों मे उतनी मधुरता भी न रही। इन सब परेशानियों का कारण पचास रुपयो की पूँजी ही है–ऐसा समझकर चमार उस सेठ के घर जाकर पचास रुपये लौटा आया, जिससे इनका वे और कही दान में उपयोग कर सके।

इधर चमार निश्चित होकर फिर मस्ती मे झूम-झूम कर अपना काम करते हुए भजन गाने लगा। उसके स्वर में पूर्ववत् मधुरता और आकर्षण उत्पन्न हो हो गया। एक कवि ने चिन्ता छोड़ने की प्रेरणा देते कहा है–

> मुर्दे को भी मिलत है,
> लकड़ी कपड़ा आग।
> जीवित हो चिन्ता करे,
> ताको बड़ो अभाग।।



२६० : चोरी

क्या चोर केवल धन चाहता है ?

हाँ; कहावत है राजस्थानी में–

"गँडकाँ ने चाहीजे अन । चोराँ ने चाहीजे धन ॥"

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

किसी कारखाने में से एक व्यक्ति ने कोई माल चुरा लिया। मालिक को दस व्यक्तियों पर शंका हुई; लेकिन चोर उनमे से कोई एक ही था।

उसने दसों आदमियो से पूछा कि असली चोर का नाम वता दोगे तो केवल उसी को नौकरी से हटाया जायगा, अन्यथा सवको अलग कर दिया जायेगा। उन्होने नौकरी छूटने के भय से असली चोर ढूंढ़ निकालने का प्रयास किया; किन्तु वह प्रयास असफल रहा।

अन्त मे मामला कचहरी ले जाया गया। दसों आदमी कचहरी मे पेश किये गये। न्यायाधीश महोदय ने कहा कि मै कल असली चोर का पता लगा लूंगा। फिर उन्होंने प्रत्येक चोर को एक-एक वाँस दे दिया। सभी वाँस समान लम्बाई के थे। चोरों से कहा गया कि कल आप अपना-अपना वाँस अपने साथ लेकर अदालत मे आयें। जो असली चोर होगा, उसका वाँस दो सेन्टीमीटर लम्व हो जायगा। चोर चले गये। रात को असली चोर ने अपना वाँस दो सेन्टीमीटर छोटा कर दिया, जिससे कि लम्वा होकर वह फिर दूसरे वाँसों के वरावर हो जाय; परन्तु न्यायाधीश ने दूसरे दिन उपस्थित होने पर छोटे वाँस वाले को पकड़ लिया कि यही चोर है। उसे दण्ड दिया गया।

दावी दूबी ना रहे, रूई लपेटी आग ॥



२९१ : छल

क्या अयोग्य व्यक्ति ही छल करते हैं ?

हाँ; बेंजामिन फ्रेंकलिन के अनुसार छल वहीं पाया जाता है, जहाँ योग्यता में कमी हो–

Cunning proceeds from want of capacity.

(कनिंग प्रोसीड्स फ्रॉम वान्ट ऑफ केपेसिटी।)

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक गाँव में एक बहुत धनवान सेठ रहता था। अनेक पुत्रों के वाद उसके घर में एक कन्या ने जन्म लिया। कन्या का नाम कञ्चन-कुमारी रखा गया; क्योंकि वह सोने के समान ही सुन्दर थी। एक मात्र पुत्री होने से सभी कुटुम्बी उससे प्यार करते थे। उसका स्वभाव भी अच्छा था। विनय और सेवा उसके विशेष गुण थे। दुर्गुण उसके जीवन में नही था, न मन में हो था; परन्तु तन में जरूर एक दोष था। वह काणी थी।

धीरे-धीरे वह विवाह के योग्य हुई। माता-पिता ने योग्य वर की तलाश में कोई कसर उठा नहीं रखी; परन्तु ज्यों ही उसके कानेपन की बात का पता लगता, सगाई छूट जाती। एक युवक उससे विवाह को तैयार हो गया। उससे कन्या के कानेपन की बात छिपायी गयी थी। फेरे के समय मारे खुशी के माँ गीत गाने लगी–

आछी ब्याही कंचन काण !
हरख्यो हमारो जीवन प्राण ॥

यह सुनकर दूल्हा भी अपने लूलेपन को प्रकट कर गाने लगा–

क्या हरखे तू मन में गेली[1]।
टूटो हाथ देख ले पेली[2] ॥

*

१ गेली=मूरख। २ पेली=पहले।

२९२ : छल

क्या अपना छल कभी अपने को भी छल जाता है ?

हाँ; ऐसे ही अवसरों के लिये यह कहावत प्रसिद्ध हुई है–

"मियाँ की जूती मियाँ के सिर।"

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

किसी हत्यारे को फाँसी की सजा मिलने वाली थी। उसने वकील की शरण ग्रहण की। उसने पाँच हजार रुपये फीस ठहरायी। पाँच सौ रुपये अग्रिम दे दिये।

वकील ने उसे समझा दिया कि कचहरी में तुमसे कोई कुछ भी पूछे, तुम "बैं" के सिवाय कुछ मत बोलना। दूसरे दिन न्यायाधीश महोदय के सामने जब पूछा गया कि क्या तुमने उसका वध किया था तो हत्यारा "बैं" कहकर चुप हो गया।

जज–"अरे सुनता भी है ?"

हत्यारा–"बैं"।

जज–"क्या पागल हो गया है ?"

हत्यारा–"बैं"।

जज ने हत्यारे को पागल समझकर छोड़ दिया। इधर वकील को अपनी चाल मे सफलता मिल जाने की खुशी थी; उधर हत्यारे को अपनी जान बचने की। वकील रात को हत्यारे के घर पहुँचा। उसने अपनी शेष फीस साढे चार हजार रुपये माँगे तो उत्तर में हत्यारे ने उसी गुरु मन्त्र का उपयोग किया–"बैं"। वकील ने कहा–"मूर्ख! यह कचहरी नही, घर है! यहाँ तो ढंग से बात कर।"

इस पर उसने कहा–"बैं"। वह सोच रहा था–

मेरी फाँसी स्पष्ट, जब इस "बैं" ने टाल दी।
नही मिटेगा कष्ट, क्या इस "बैं" से फीस का ?

२९३ : छल

क्या वित्त (धन) की अपेक्षा वृत्त (चरित्र) का महत्व अधिक होता है ?

हाँ; क्योंकि जिसका धन गया, उसका कुछ भी नहीं गया; परन्तु जिसका चरित्र गया, वह तो मर ही गया। इसलिए वृत्त (चरित्र) की सावधानीपूर्वक रक्षा करनी चाहिए। वित्त (धन) तो आता-जाता रहता है–

अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः।
वृत्तं यत्नेन संरक्षेद् वित्तमायाति याति च ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

किसी गाँव में रहने वाले दो मित्र धन कमाने के लिए दूर देश में गये, एक का नाम था रूपसेन और दूसरे का वामदेव।

कुछ महिने में पर्याप्त धन-संग्रह हो जाने पर वे अपने गाँव की ओर चल पड़े। रास्तें मे रूपसेन की नीयत वदल गयी। वामदेव को मार कर सारा धन अकेले हड़पने की दुर्भावना उसमें जागृत हो गयी। उसने म्यान से तलवार निकाल्कर उस पर प्रहार कर दिया। मरने से पहले वामदेव ने कहा कि धन भले ही तुम ले लो; परन्तु "वा-रू-ली-आ" ये चार अक्षर मेरी पत्नी से जाकर कह देना। रूपसेन ने सारा धन अपने घर रख लिया। मित्रपत्नी से जाकर कह दिया कि रास्ते में बीमार होने से वामदेव मर गये। मरते समय "वा-रू-ली-आ" ये चार अक्षर कह गये है। रूपसेन ऐसा कहकर घर चला गया। उधर पत्नी ने मन्त्री से वृत्तान्त जा सुनाया। मन्त्री ने रूपसेन की पिटायी करवायी। उसने पाँच सौ मोहरें वामदेव की पत्नी को दिलवा दी क्योंकि उन चार अक्षरों का अर्थ मन्त्रीजी को समझ में आ गया था।

वामदेव को मारकर, रूपसेन अति नीच।
लीधी मोहरें पाँच सौ; आवत वन के बीच ॥



किसी सेठ के घर मे एक नीम का पेड़ था। प्रतिदिन एक कौआ वहाँ आता और एक हड्डी का टुकड़ा मुँह में दबाकर उस पेड़ पर बैठा रहता, फिर उड़ने से पहले टुकड़ा वही डालकर चला जाता। सेठजी का घर निरामिषभोजी था, सभी घर वाले हड्डी के उन टुकड़ों से घृणा करते थे।

एक दिन कौए को नीम पर बैठा देखकर सेठजी ने अपने नौकर से कहा कि घर के भीतर एक कोने में तलवार रखी है, उसे उठा लाओ। आज जान से मारकर मैं इस कौए की बीमारी मिटा डालता हूँ। नौकर संकेत समझ गया और तलवार के बदले तीर-कमान उठा लाया। उधर कौआ निश्चिन्त होकर बैठा था कि सेठजी तलवार से मेरा वध नहीं कर सकते, इतने में कौए के पेट पर तीर लगा और वह जमीन पर गिर पड़ा फिर बोला—

वचन बदलता तैं मुओ
कौआ मुआ न जान।
मंगवाई तलवार थी
लाया तीर कमान॥

२६५ : जप

क्या यज्ञों में जपयज्ञ श्रेष्ठ है ?

हाँ; गीता में श्रीकृष्ण ने अपनी विभूतियों का वर्णन करते हुए अपने को जपयज्ञ रूप बताया है–

यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक सेठजी का नाम था–मोतीलाल। वे अपनी पत्नी के साथ कोई धार्मिक प्रवचन सुनने गये। उसमें नाम का महत्व बताया गया था और कहा गया था कि नाम स्मरण से या भगवान के नाम की माला फिराने से क्या लाभ होता है। प्रवचन सुनकर घर आये।

पत्नी ने सोचा– "नारी के लिए तो पति ही परमेश्वर है; तब क्यों न मैं अपने पतिदेव के नाम की ही माला फिराऊँ ?" और इस विचार का अमल करने के लिए वह प्रतिदिन एक घण्टा पतिदेव के नाम की माला फिराने लगी। एक दिन की बात है, कि मोतीलाल जी बीमार पड़ गये, उन्हें प्यास लगी, वे "पानी-पानी" चिल्ला रहे थे; किन्तु पत्नी उस समय माला फिरा रही थी–"मोतीलाल मोतीलाल" का जप कर रही थी। सेठ ने प्यास के मारे छटपटाकर दम तोड़ दिया; परन्तु पानी पिलाने के लिए वह नहीं उठी।

प्रभु की आज्ञा का पालन न करके उनके नाम का जप करने वाले भक्त भी ऐसे ही होते हैं–सर्वथा अविवेकी !

अपरा तीर्थकृत्सेवा, तदाज्ञापालनं परम् ।
आज्ञाराद्धा विराद्धा च, शिवाय च भवाय च ॥

(तीर्थंकर की सेवा की अपेक्षा उनकी आज्ञा का पालन करना श्रेष्ठ है। आज्ञा की आराधना से मुक्ति और विराधना से संसार की प्राप्ति होती है।)



२९६ : जातिभेद

क्या मनुष्य-मनुष्य के बीच कोई जाति-भेद दिखायी नही देता ?

हाँ; तपस्या की विशेषता तो प्रत्यक्ष दिखायी देती है कि अमुक तपस्वी है, अमुक नही, परन्तु जाति-भेद नही दिखायी देता–

सक्खं खु दीसइ तवो विसेसो,
न दीसइ जाइविसेस कोई ॥

कोई दृष्टान्त ?

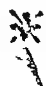
सुनिये–

छह वर्ष की कठोर तपस्या से शरीर के अत्यन्त क्षीण हो जाने के कारण एक वार शाक्य मुनि मूर्च्छित होकर मार्ग मे गिर पडे थे। उनकी दशा पर तरस खाकर गड़रिये के एक वालक ने केले के पत्तों मे उनका शरीर ढक दिया। फिर वकरी के स्तन से दूध निकालकर मुनिजी के मुँह में डाला। बेहोशी दूर होने पर मुनि ने उस वालक से एक लोटा भर दूध माँगा।

वालक ने कहा कि मैं अछूत हूँ। मेरे लोटे के स्पर्श से आप-आप वित्र हो जायँगे। इस पर शाक्य मुनि ने उसे समझाया–"बेटा! सव आदमियों का रक्त लाल है–सव मनुष्य की आँखों से खारे आँसू निकलते है–मूत्र और विष्ठा से भी किसी की जाति भिन्न नही मालूम होती। जो व्यक्ति दूसरों की सहायता करता है, वही कुलीन है, पवित्र है। ललाट पर तिलक और गले मे जनेऊ लेकर कोई व्यक्ति जन्म नही लेता, इसलिए तुम अपने को हीन मत समझो।"

वालक ने लोटे मे दूध भरकर उन्हे पीने को दे दिया–

जाति न पूछो साधु की
पूछ लीजिये ज्ञान।
मोल करो तलवार का
पड़ा रहन दो म्यान ॥



२९७ : ज्योतिष

क्या ज्योतिषी राजा से भी बड़ा होता है ?

हाँ; एक ज्योतिषी ने कहा है कि चतुरंग (गज,अश्व, रथ, पदाति) के बल वा । राजा जगत को वश में करता है; किन्तु मैं पंचाग के बलवाला हूँ और आकाश को वश मे करता हूँ—

चतुरङ्गबलो राजा,
जगती वशमानयेत् ।
अह पञ्चाङ्गबलवान्,
आकाश वशमानये ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

एक ज्योतिषी ने दाल-वाटी बनायी। वाटियों को घी मे डुबो-डुबो कर वह एक थाल में जमा रहा था कि उधर से एक चारण आ निकला। वह बोला—

"जोशी जगदातार,
जीमाडीने जीमसी ॥"

ज्योतिषी ने उत्तर दिया—

"ऊवरसी अंगार,
पण वाट्याँ उबरे नही ।"

आशय यह था कि मुझे भूख बहुत तेज है; इसलिए सारी वाटियाँ खा जाऊँगा। बचने पर ही आपको दे सकूँगा; किन्तु यहाँ तो सिर्फ अगारे ही बचेंगे। इस पर चारण ने डराते हुए कहा—

"अपनी दृष्टि अपार,
जीमे सो जीवे नहीं ॥"

यह सुनकर निर्भयतापूर्वक वाटियों पर हाथ साफ करते हुए ज्योतिषी ने उत्तर दिया—

"मरसी माँगणहार,
जोशी ने जोखिम नही ॥"



२६८ : झूठ

क्या झूठ छिपाने से कभी नहीं छिपता ?

हाँ; आग रूई में नहीं छिप सकती–

झूठ छिपायाँ ना छिपे, छिपे तो मोटा भाग ।
दाबी दूबी ना रहे, रूई लपेटी आग ।।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक राजा ने किसी पण्डित को समस्या दी–"तन्तू कहा करन्त" । उस पर विचार करता हुआ वह घर आया । पण्डिताइन अधिक चतुर थी । उसने चट से उसकी पूर्ति कर दी । दूसरे दिन राजदरवार में पण्डित जी ने वह पूर्ति सुना दी । फिर राजा ने दो समस्याएँ और दी "किस मुख घालूं खीर ?" और "बिरला देख्या कोय" । पण्डिताइन ने इनकी भी पूर्तियाँ तैयार कर दी । वे तीनो प्रतियाँ क्रमशः इस प्रकार हैं–

साठ वर्ष के वाद में
जे नर वनते कन्त ।
वह बूढ़ा वह बालिका
"तन्तू कहा करन्त ?"
बालक रावण जनमियों
दशमुख एक शरीर ।
माता मन में चिन्तवे,
"किस मुख घालूं खीर ।।"
सात समुन्दर मै फिरी,
सब जग लीनो जोय ।
साधु सती औ शूरमा,
"बिरला देख्या कोय ।।"

अन्तिम पूर्ति में "फिरी" शब्द से पोल खुल गई । राजा ने समझ लिया कि पूर्तियाँ पंडिताइन की वनायी हुई है ।

२९९ : झूठ

क्या झूठ बोलने वाले से भगवान् और इन्सान दोनों घृणा करते है ?

हॉं; A lying spirit is hateful both to God and man (ए लाइंग स्पिरिट इज हेटफुल बोथ टु गॉड एण्ड मैन ।)

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

सन्त कबीर ने एक पगड़ी बुनकर तैयार की । खर्च और मेहनताना मिलाकर वह छह रुपये में बेची जा सकती थी । उसे लेकर वे बाजार में एक जगह खड़े हो गये । लोग आते । पगड़ी देखकर भाव पूछते । कबीर उन्हें छह रूपये बताते । वे यह कहकर चल देते कि पगड़ी तो चार रुपये की है, परन्तु हम अधिक से अधिक पॉंच रुपये दे सकते हैं ।

अखिर कबीरदास निराश होकर घर लौट आये । पिताजो को उदास देखकर पुत्री ने उसका कारण पूछा और जान लिया कि वास्तविक मूल्य में कोई पगड़ी खरीदने को तैयार नही है । उसने पिताजी से कहा—"आप चिन्ता मत कीजिए । मैं अभी इसे बेच आती हूँ।" वह पगड़ी लेकर बाजार में पहुँची और नौ रुपये में उसे बेच आयी । महात्मा कबीर ने पूछा कि तुमने नौ रुपये में कैसे पगड़ी बेची । उसने बताया कि मैंने इसका मूल्य बारह रुपये कहा । इस पर एक ग्राहक ने कहा कि पगड़ी तो आठ रुपये की है; परन्तु मैं इसे नौ रुपये मे ले लूंगा । मैंने नौ रुपये लेकर पगड़ी दे दी । उसी समय कबीर ने कहा—

सत्य गया पाताल में
झूठ रहा जग छाय ।
छह रुपये की पागड़ी
नौ रुपयों में जाय ॥



क्या दूसरों को ठगना अच्छी बात नही है ?

हाँ; 'कबिर' ने कहा—

'कबिरा' नें आप ठगाइये, और न ठगिये कोय ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

एक सुन्दरी ने किसी डॉक्टर को सौ रुपये का एक नोट थमाते हुए कहा—"मेरे पति का दिमाग खराब हो गया है। उनका इलाज आपको करना है। जब उन्हे दौरा आता है, वे किसी से भी रुपये माँगने लगते है। आप इनमे से पचास रुपये उन्हे दे दे और शेप पचास रुपये आप अपनी फीस और दवाओ के समझ ले।"

फिर एक नये ताँगे में बैठकर किसी बड़े सर्राफ की दूकान पर गयी। वहाँ से दो हजार रुपयो के गहने खरीद कर बोली—"मेरे पति एक डॉक्टर है। आप अपना आदमी भेज दे या स्वय मेरे साथ चले। तत्काल रुपया दिलवा दूँगी।" सर्राफ ने आदमी ताँगे मे बिठा दिया। वहाँ आदमी को सामने की बेंच पर बैठने का सकेत करके औरत ने डॉक्टर के कान मे धीरे से कहा कि इन्ही के दिमाग का इलाज करना है। आदमी ने समझा कि "इन्हे दो हजार रूपये दे दे" ऐसा कहा होगा। इसके बाद औरत बाहर निकल कर गहनों के साथ रफू-चक्कर हो गयी।

उधर आदमी ने रुपये माँगे तो डॉक्टर ने कहा—रुपये भी मिल जायेंगे। पहले इलाज तो करने दो। आदमी—"मै तो केवल रुपये लेने आया हूँ, इलाज कराने नहीं। वह आपकी पत्नी किधर गयी ?" डॉक्टर—"अरे! वह तो आपकी पत्नी थी।" आदमी रोता हुआ पैदल ही दूकान पर लौट आया। सर्राफ ने समझ लिया कि आज ठगी हो गयी।

आप ठगं सुख होत है, और ठगे दु:ख होय ॥

३०१ : ठगी

क्या संसार बहुत विचित्र है ?

हाँ; "संसारोऽयमतीव विचित्र: ॥"

कोई दृष्टान्त ? सुनिये—

अलग-अलग दो गाँवों रहने वाले दो ठग किसी शहर में आमने-सामने हो गये। एक के पास एक तलवार थी और दूसरे के पास एक मटकी में घी था। एक ने कहा कि मैं अपनी तलवार बेचकर घी खरीदने आया हूँ। दूसरे ने भी कहा कि मैं अपना घी बेचकर एक तलवार खरीदने आया हूँ।

यह सुनकर एक ने कहा—"तब तो अच्छा है, यदि तुम्हें कोई आपत्ति न हो तो हम वस्तुएँ आपस में ही बदल लें।"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया। वस्तुएँ आपस मे वदल ली गयीं। कुछ दूर जाने पर तलाश की गयी तो पता चला कि तलवार काठ की है और मटकी में भी गोबर भरा है, सिर्फ ऊपर-ऊपर थोड़ा सा घी भर दिया गया है। तत्काल दोनों एक-दूसरे को ढूंढ़ने के लिए उसी शहर मे चल पड़े। मुलाकात हुई। दोनों ने परस्पर प्रशसा की और कहा कि अब इस शहर में हम दोनों को मिलकर अपना काम शुरू करना चाहिए। दोनों सहमत हो गये। उन्हें भूख लगी थी। सवसे पहले वे एक हलवाई की दूकान पर गये। एक ने दस रूपये की मिठाई तुलवाई और वही वैठकर खाने भी लगा। दूसरे ने भी उतना ही माल तुलवाया और लेकर विना मूल्य दिये ही जाने लगा। पूछने पर उसने कहा— "मैं दस का नोट दे चुका हूँ; इसे भीतर वाला आदमी जानता है।" भीतर वाले ने कहा— "जैसे इससे दस का नोट लेकर तुम भूल गये, वैसे कही मेरा दिया हुआ नोट मत भूल जाना।" इस पर लोग इकट्ठे हो गये। दोनों वहाँ से खिसक गये।

गुल शोर बगूला आग धुआँ और कीचड़ पानी मिट्टी है।
हम देख चुके इस दुनिया को यह तो धोखे की टट्टी है॥



३०२ : ठगी

क्या ठगी करने वाला घृणा करने योग्य है ?

हाँ, महाकवि होमर ने कहा था—उस आदमी से मुझे वैसी ही घृणा है जैसी नरक द्वार से। जिस (आदमी) के वाहरी शद्व उसके भीतरी विचारों को छिपाते है।

For that man is detested by me as the gates of hell, whose outward words conceal his inmost thoughts.

(फॉर दैट मैन इज डेटेस्टेड वाइ मी एज द गेट्स ऑफ हेल, हूज आउटवर्ड वर्ड्स कन्सील हिज इन्मोस्ट थौट्स)

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

सुन्दर नई पोशाख धारण किये हुए युवक किसी बड़ी पान की दूकान पर गया। पचास पैसे वाला पान लगवाया। उसे मुँह में रखकर कुछ मिनटो तक उसका आनन्द लिया। फिर आर्डर दिया कि आप ऐसे ही पान पचास और लगा दीजिए। मै थोड़ी देर वाद आकर ले जाऊँगा। तम्बोली ने आर्डर के अनुसार पान लगाना शुरु कर दिया।

उधर उस युवक ने सामने की लाइन पर जूते की एक दूकान देखी। वह दूकान के अन्दर पहुँचा। कई तरह के जोड़े देखे। अन्त में, साठ रुपये वाला एक अप-टु-डेट जोड़ा पचास रुपये में ठहरा कर दूकानदार से कहा कि आप मेरे साथ अपना आदमी भेज दीजिए, मैं सामने वाली दूकान से रुपये दिलवा देता हूँ।

आदमी के साथ युवक उस पान की दूकान पर फिर से पहुँचा। वहाँ पान वाले से कहा – "वे पचासों आप इस आदमी को दे दीजियेगा।" यह कहते ही वह स्वयं वहाँ से रवाना हो गया। प्रकार जूते वाला ठगी का शिकार हो गया।

'कविरा' आप ठगाइये, और न ठगिए कोय॥

३०३ : ठगी

क्या हमें दूसरों को कभी ठगने की कोशिश नहीं करनी चाहिए?

हाँ; कबीर साहब सबको यही सलाह दे गये हैं–

'कबिरा' आप ठगाइये, और न ठगिये कोय ।
आप ठगे सुख होत है, और ठगे दुःख होय ।।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

महात्मा बुद्ध अपने एक पूर्वभव में खिलौने बेचने का धन्धा किया करते थे। एक बार वे किसी फेरी वाले के साथ किसी गाव में खिलौने बेचने गये। वहां एक बुढिया अपनी छोटी बच्ची के साथ रहती थी। घर के और सब आदमी मर चुके थे। यद्यपि यह घर गाँव में सबसे अधिक पैसे वाला था; परन्तु आज एक भी पैसा उसमें नहीं रहा। बुढ़िया कभी कुछ तो कभी कुछ वस्तुएँ बेचकर किसी तरह बच्ची का पालन कर रही थी। फेरीवाले के हाथ मे हाथी देख कर बच्ची ने उसे लेने की जिद की। बुढ़िया ने घर मे से एक सोने की थाली निकाल कर दे दी। बच्ची उसे हाथी के बदले देने लगी तो फेरी वाले के मन में लोभ जगा। उसने कहा कि थाली नकली है। ऐसी एक थाली और हो तो दोनों के बदले हाथी दे सकता हूँ। ऐसा कहकर वह आगे बढ़ गया। फिर बुद्ध वहां पहुँचे। उन्हे भी बच्ची ने वही थाली दिखायी। बुद्ध ने कहा कि इसके बदले मेरे सारे खिलौने और एक हजार रुपये मिल सकते हैं। बुढ़िया ने इस ईमानदारी के लिए उन्हें आशीर्वाद दिया और थाली के बदले खिलौने और रुपये ले लिये। बुद्ध चले गये। फेरीवाला फिर से आया और थाली के बदले छोटा हाथी देने लगा; किन्तु बुढ़िया के मुँह से पिछला वृत्तान्त सुनकर पछताता हुआ लौट गया।

सरल जनों की सरलगति, वक्रजनों की वक्र।
सीधा जाता तीर ज्यों, चक्कर खाता चक्र ।।



३०४ : ढोंग

क्या ढोंगी जीवन कष्टमय होता है ?

हाँ; ढोंग छोड़ने पर ही कष्ट मिट सकता है। बगुले की अपेक्षा लोग कौए को अधिक पसन्द करते हैं–

तन उजला मन साँवला,
बगुला कपटी भेख।
यासूँ तो कागा भला,
बाहर भीतर एक।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक विधुर कसाई ने अपने को ब्राह्मण बताकर एक तेलन के साथ विवाह कर लिया। वह अपने को विधवा ब्राह्मणी बता रही थी। मन मे दोनों सोचने लगे कि शादी हुई तो कोई बात नही, पर किसी का धर्म भ्रष्ट क्यों किया जाय। परिणामस्वरूप दोनों अलग-अलग चूल्हे पर भोजन बनाने लगे।

कुछ समय बाद जो पुत्र हुआ, उसका नाम रखा गया–धनसुख। बड़ा हुआ तो उसका विवाह भी किसी वेश्या पुत्री से हो गया जो अपने को ब्राह्मण-पुत्री के रूप में प्रकट कर रही थी। इनका भी चौका चूल्हा अलग-अलग बनाया गया।

इस प्रकार एक ही घर मे चार जनो के अलग-अलग चार चौके-चूल्हे बनाने का रहस्य क्या है–सो जानने का धनसुख ने अथक प्रयास किया। रहस्य ज्ञात होते ही मूसल हाथ में उठाकर उसे घुमाता हुआ नाच-नाच कर बोलने लगा–

"माता तेलन बाप कसाई। बेटे के घर वेश्या आई।
मूसल लेकर धनसुख नाचे। चौका एक करो रे भाई॥



३०५ : तपस्या

क्या तपस्या से तेजस्विता प्रकट होती है ?

हाँ; कहते हैं—

तपस्तनोति तेजांसि ।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

एक राजा हाथी-पर सवार होकर घूमने के बाद अपने महल को लौटा तो जहाँ तक हाथी जा सकता था, वहाँ तक हाथी पर बैठा रहा। फिर घोड़े पर सवार हुआ। फिर जहाँ से घोड़े की गति रुक गयी, वहाँ घोड़े से उतरकर पालकी में बैठा। फिर पालकी से उतर कर अपने पलॅग पर लेट गया। वहाँ दासियाँ राजा के पॉव दबाने लगीं। दो दासियाँ उस पर पंखा झलने लगी। राजा को आराम से नींद आ गयी।

कुछ समय बाद एक दासी ने दूसरी से प्रश्न किया—

हाथी चढ़ घोड़े चढ़्या,
घोड़े चढ़ सुख पाव।
कदका थाक्या हे सखी !
अबै दबावै पाँव ?

दोहे के द्वारा राजा के पॉव दबवाने का कारण पूछा गया था। जो थकता है वही अपने पाँव दबवाता है। राजा तो हाथी पर और फिर घोड़े पर चढ़कर और उसके बाद पालकी पर चढ़कर उतरा है, थकने का कोई प्रसंग ही नहीं दीखता। दूसरी दासी ने पूर्वजन्मकृत तप की ओर संकेत करते हुए उत्तर दिया—

भू सूत्या भूखा मर्या,
सह्या घणा सी ताप।
जदका थाक्या हे सखी !
अबै दबावै पाँव ॥



२०६ : तपस्या

क्या ब्रह्मचर्य और तप से देवों ने मृत्यु को मार डाला अर्थात् उन्होंने क्या इन दो गुणों से ही अमरत्व प्राप्त किया है ?

हाँ; कहते है—

"ब्रह्मचर्येण तपसा
देवा मत्युमुमाघ्नत ॥"

कोई दृष्टान्त ? सुनिये—

एक सुन्दर के मस्तक पर पानी का भरा हुआ मटका देखकर एक युवक ने उसके भाग्य की प्रशंसा की—"हम चाहते हुए भी जिस रमणी के सुन्दर शरीर का स्पर्श नही कर सकते, उसी रमणी के रेशम के समान कोमल सघन काले केशों पर आसन जमाकर बैठने वाले हे मटके ! तेरा जीवन धन्य है।"

इस पर मटके ने युवक से कहा—यह सब तपस्या का फल है। क्योकि—

पहले तो हम कुल तज्यो,
रासभ हुए सवार।
कूट-पीट सीधो कियो,
दियो चाक पर डार ॥
शीश काट भू पै धर्यो,
सही शीत अरु धूप।
तोक अवाड़े थिर कियो,
निकल्यो रूप अनूप ॥
धनी ग्राहक दोनों मिले,
लीन्हा ठोक बजाय।
इतना संकट मैं सह्या,
चढा शीश पर आय ॥"

युवक समझ गया कि तपस्या के बिना जीवन में कही सफलता नही मिल सकती।



३०७ : तपस्या

क्या तपस्या से देह-शुद्धि होती है ?

हाँ; तपस्या से जो देह शुद्ध हो जाती है, वह कभी मैली नहीं होती–

तपसा च कृतः शुद्धो देहो न स्यान्मलीमसः ॥

कोई दृष्टान्त ? सुनिये–

एक दिन एक नाविक अपनी नाव को नदी में इस पार से उस पार ले जा रहा था। नाव में कई यात्री बैठे थे। सब नदी की लहरों को देखने का आनन्द ले रहे थे कि सहसा उनकी दृष्टि एक ऐसे तपस्वी पर पड़ी, जो पानी की सतह पर इस प्रकार चल रहा था, मानो वह भूतल हो। यह दृश्य उन सबने अपने जीवन में पहली बार ही देखा था।

नाविक ने उन सबकी ओर से तपस्वीजी को प्रश्न किया– "आपको यह सिद्धि कितने वर्षो मे कैसे प्राप्त हुई ?"

तपस्वी–"बारह वर्षों तक कठोर तप के द्वारा मुझे यह सिद्धि मिल पायी है।"

नाविक–"तब तो आप बहुत घाटे में रहे। खोदा पहाड़ निकली चुहिया !"

तपस्वी–"सो कैसे ?"

नाविर–"सो ऐसे कि बारह वर्ष परिश्रम करने का फल दस पैसे के बराबर ही रहा। ये यात्री दस-दस पैसों मे आराम से नाव में बैठकर नदी पार कर रहे हैं। दस पैसों के लिए आपने अपने जीवन के अमूल्य बारह वर्ष व्यर्थ खो दिये।"

तपस्वी लज्जित होकर चला गया।

महावीर स्वामी ने कहा है कि तपस्या केवल कर्मनिर्जरा के लिए होनी चाहिए और किसी के लिए नहीं–

"नन्नत्थ निज्जरट्ठाए तवमहिट्ठेज्जा ॥" *

क्या तप से तेजस्विता बढ़ती है ?

हां; कहा भी गया है—

तपस्तनोति तेजांसि ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

कोयले ने किसी साधु को साष्टाग नमस्कार करके पूछा—"यदि आपके समीप आने वालों के जीवन की कालिमाएँ धुलती रही है तो क्या मेरे शरीर की भी कालिमा धुल सकेगी ?"

साधु—"वत्स ! सुयोग्य व्यक्ति के लिए कुछ भी असम्भव नही है। तुम्हारी कालिमा भी धुल सकती है, परन्तु वहाँ सोड़ा-साबुन से कुछ नही होगा। तुम्हे आग मे कूदना होगा—तपस्या करनी होगी। क्या तुम इसके लिए तैयार हो ?"

"क्यो नहीं ?" कोयले ने कहा और तत्काल आग के ढेर मे कूद पड़ा। देखते ही देखते उसकी कालिमा समाप्त हो गयी। उसका रग उदीयमान भगवान भास्कर की तरह लाल हो गया। अब उसके शरीर के किसी भी अंश में चिराग लेकर ढूंढ़ने पर भी कालिमा का अस्तित्व नही रहा था।

मनुष्य भी तपस्या के द्वारा इसी प्रकार महान् तेजस्वी बन सकता है; परन्तु उसमे विवेक होना चाहिए। कैसा ? कहा है—

सो हु तवो कायव्वो,
जेण मणोऽमंगलं न चिन्तेइ।
जेण न इंदियहाणी,
जेण य जोगा न हायन्ति ॥

[तप वही (उतना ही) करना चाहिए, जिससे मन अमंगल न सोचे (मन में घबराहट न हो; उत्साह बना रहे) जिससे इन्द्रियों की हानि न हो और जिससे योग (तन-मन-वचन) क्षीण न हों।]

३०९ : तृष्णा

क्या तृष्णा ही मनुष्य को दरिद्र बनाती है ?

हाँ; तृष्णारहित गरीब भी अमीर है और तृष्णा वाला अमीर भी गरीब। जिसने तृष्णा का त्याग कर दिया, वह न अमीर है और न गरीब—

तृष्णा येन परित्यक्ता, को दरिद्रः क ईश्वरः ?

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

सन् १९१९ ई० में विख्यात भारतीय इन्जीनियर श्री. एम० विश्वेश्वरैया विश्वभ्रमण करते हुए शिकागो गये थे। वहाँ किसी खास विषय पर एक लेख तैयार करने के लिए आठ डालर पारिश्रमिक ठहराकर किसी लेखक को कार्य सौंपा गया। निश्चित पते पर निश्चित दिनांक को निश्चित समय पर एक महिला सेक्रेटरी द्वारा उन्हें लेख प्राप्त हुआ। उसे पढ़कर वे इतने प्रसन्न हुए कि आठ के बदले नौ डालर दे आये।

लेखक को जब मालूम हुआ, तब तत्काल वह उन्हें ढूंढ़ने चल पड़ा। एक होटल में वे मिले। लेखक ने एक डालर लौटा दिया। विश्वेश्वरैया ने कहा कि आपकी लेखन कला पर खुश होकर मैंने एक डालर पारितोषिक के रूप में दिया है; किन्तु लेखक ने उत्तर में कहा—"आप दे सकते हैं; परन्तु मैं ले नही सकता, ठहराये गये पारिश्रमिक से अधिक लेने का मुझे कोई अधिकार नही। यदि मै इसी प्रकार पारितोषिक ग्रहण करता रहूँ तो मेरी मानसिक अस्वस्थता मुझे चैन से नही बैठने देगी।"

सच है, तृष्णा पर विजय पाने वाले ही बुद्धिमान है—

मेहावी अप्पणो गिद्धिमुद्धरे ॥

(बुद्धिमान् वही है, जो अपनी तृष्णा को नष्ट करे।)



३१० : तृष्णा

क्या काली रात की तरह तृष्णा आँख वालों को भी अन्धा बनाती है ?

हाँ! आँखिन आछत आँधरो, जीव करै बहुभाँति ।
धीरन धीरज बिन करे, तृष्णा कृष्णा राति ॥

कोई दृष्टान्त ? सुनिये–

किसी साधु की कुटिया में धन की एक मटकी गाड़ कर एक सेठ तीर्थयात्रा को गया था। साधु का मन धन पर ललचा गया। धन हड़पने के लिए उसने अपनी कुटिया का द्वार उलटी दिशा में बना दिया। दाढ़ी कटवा ली। अपनी एक आँख भी फोड़ ली, जिससे सेठ उसे पहिचान न सके। यात्रा से लौटकर धन की माँग करने पर साधु ने चिल्लाकर सेठ से कहा–"कौन सा धन ? साधुओं को धन से क्या मतलब ? मेरे पास तुम्हारा कोई धन नही है।"

साधु के बदले रग-ढंग देखकर यद्यपि उसे धन मिलने की आशा न रही; फिर भी एक वेश्या को सौ रुपये देकर उसके सामने अपनी समस्या रखी।

वेश्या ने धन दिलाने के लिए एक उपाय किया। एक सन्दूक ईंटों से भरवाया। उसे दासी से उठवाकर उसी साधु की कुटिया में पहुँचाया और स्वय भी वहाँ पहुँचकर साधुजी से विनयपूर्वक कहा कि आप इस सन्दूक को अपनी कुटिया मे रहने दें। मैं अभी तीर्थ-यात्रा को जा रही हूँ, लौटकर इसे ले जाऊँगी। ठीक उसी समय पूर्व योजनानुसार सेठ ने वहाँ आकर अपना धन माँगा। साधु ने कहा कि धन की मटकी वही गडी है, जहाँ तुमने गाड़ी थी। सेठ ने खोदकर निकाल ली और वह अपने घर चला गया। साधु ने सोचा कि अभी धन नहीं लौटाया तो हजारो के पीछे लाखों का धन हाथ से निकल जायेगा। वेश्या के चले जाने पर उसने जब सन्दूक खोली तो उसमें की ईंटे देखकर अपना सिर पीट लिया। किसी ने कह दिया–

नीति बिगाड़ी बावल्या ! नहीं भाग
धन वाले को धन गया, आँख मुफ्त

३११ : तृष्णा

क्या तृष्णा समुद्र के पानी की तरह है, जिसे कोई व्यक्ति जितना अधिक पीता है, उतनी ही अधिक प्यास का अनुभव करता है ?

हाँ; Ambition like salt water makes one the more thirsty, the more one drinks. (एम्बीशन लाइक साल्ट वाटर मेक्स वन दि मोर थर्स्टी, दि मोर वन ड्रिंक्स।)

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

महारानी पिंगला के दुश्चरित्र से विरक्त होकर महाराज भर्तृहरि संन्यासी बन गये थे। देश-देशान्तर में भ्रमण करते हुए एक बार वे अपनी राजधानी में चले आये। चाँदनी रात थी, सब लोग सो गये थे, भर्तृहरि ने प्रजा का हालचाल जानने के लिए नगर मे पर्यटन प्रारम्भ कर दिया। रास्ते में एक जगह लाल रग की छोटी-सी बूंद पड़ी थी, जो चन्द्रिका से चमचमा रही थी। भर्तृहरि ने सोचा कि यह कोई माणिक्य है। किसी नागरिक के हाथ से गिर पड़ा होगा। इसे क्यों न उठाकर किसी योग्य पात्र को दे दूं।

विचार कार्य के रूप में परिणत हुआ, भर्तृहरि ने उसे उठाने की कोशिश की तो हाथ लाल-लाल हो गया। मालूम हुआ कि वह पान की पीक थी। भर्तृहरि को मन-ही-मन बहुत ग्लानि हुई। इतने बड़े राज्य सिंहासन को ठोकर मार कर भी एक माणिक्य उठाने की तृष्णा रह गई। धिक्कार है ऐसे मन को ! संन्यासी के लिए तो सारा धन धूल है।

कनक तजा कान्ता तजी,
तजा सचिव का साथ।
धिक् मन ! धोखे लाल के,
रखा पीक पर हाथ॥



३१२ : तृष्णा

क्या तृष्णा काली रात के समान है ?

हाँ, वह आँख रहते भी जीव को अन्धा कर देती है और धैर्यशालियों को अधीर बना देती है–

आँखिन आछत आँधरो, जीव करै बहु भाँति।
धीरन धीरज बिन करे, तृष्णा कृष्णा राति।।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक साधारण मनुष्य को साधु बनने की इच्छा हुई। उसने सोचा-किसी निर्धन को अपना धन देकर साधु दीक्षा ले ली जाय।

एक दिन राजा उसके घर के सामने मे होकर निकल रहा था कि उस गृहस्थ ने अपना सारा धन राजा को दे दिया। राजा ने कहा– "मुझे धन देने की अपेक्षा किसी निर्धन को देना था न ?"

गृहस्थ ने कहा– "मुझे तो आप ही सबसे अधिक निर्धन मालूम हो रहे है; क्योकि निर्धन वह नही है, जिसके पास अमुक वस्तु का अभाव है; किन्तु वास्तव मे निर्धन वही है, जो अधिक चाहता है, जो अपनी वर्तमान सम्पत्ति से असन्तुष्ट है, जो दूसरों की सम्पत्ति छल-बल से हथियाने का प्रयास करता है, जिसके हृदय में तृष्णा पिशाचिनी का ताण्डव नृत्य होता रहता है।"

जो दस बीस पचास भये
  सत होय हजार तु लाख मँगेगी।
कोटि अरब्ब खरब्ब असख्य
  धरापति होने की चाह जगेगी।।
स्वर्ग-पाताल का राज्य करूँ
  तृष्णा मन मे अति ही उमगेगी।
'सुदर' एक सतोष बिना शठ!
  तेरी तो भूख कभीं न मिटेगी।।



३१३ : तृष्णा

क्या तृष्णा छूटने पर धनवान्-दरिद्र का कोई भेद नहीं रहता ?

हाँ; कहा है–

तृष्णा येन परित्यक्ता,
को दरिद्रः क ईश्वरः[1] ?

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

हठीसिंह पटेल सुबह के समय पश्चिम दिशा में कहीं चले जा रहे थे। उनकी काली-काली परछायी को आगे-आगे भागते देखकर उसे पकड़ने के लिए वे भागने लगे जितनी तेजी से वे भागते, परछायी भी उतनी ही तेजी से भागने लगती। आखिर वे पसीने से गीले हो गये; किन्तु जब उन्हे परछाई को पकड़ने में कोई सफलता नही मिल रही थी, तभी स्वामी सहजानन्द ने दयावश उसे रोका तो परछायी भी रुक गयी मानो यह सुनने के लिए कि गुरुजी मुझे पकड़ने के लिए अब कौन-सा उपाय सुझाते हैं। गुरुजी ने पटेल का मुँह सूर्य की ओर कर दिया। फिर भागने का आदेश दिया तो पीछे मुड़कर देखने पर हठीसिंह को पता चला कि परछायीं स्वयं मेरे पीछे-पीछे भागती चली आ रही है।

तृष्णा भी परछाई के समान है। यदि उसकी पूर्ति का प्रयास किया गया तो असफलता ही पल्ले पड़ेगी। इसके विपरीत यदि उसकी उपेक्षा की गयी तो वह आपका अनुसरण करेगी।

स तु भवति दरिद्रो
यस्य तृष्णा विशाला ॥

(जिसकी तृष्णा विशाल हो, वही निर्धन है।)

✲

१ ईश्वर-धनवान्।

३१४ : तेजस्वी

क्या क्षमाशील तेजस्वी के साथ कर्कशता का व्यवहार नही करना चाहिए ?

हाँ; अधिक घिसने पर चन्दन से भी अग्नि उत्पन्न हो जाती है।

तेजस्विनि क्षमोपेते
नाति कार्कश्यमाचरेत् ।
अति निर्मन्थनादग्नि-
श्चन्दनादपि जायते ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

शत्रुओं से लोहा लेते हुए वीरवर दुर्गादास ने एक बार लोगों से यह सुना कि उनके गाँव मे बहुत से घर गिर गये है। दुर्गादास अपनी बूढ़ी माता और पत्नी का हालचाल जानने के लिए घोड़े पर सवार होकर घर लौटे। माँ ने यह समझा कि दुर्गादास कायरतावश शत्रुओं को पीठ दिखाकर आया है। दुर्गादास ने घोड़े पर बैठे-बैठे ही जल माँगा, जिससे उसे पीकर फिर से युद्ध-क्षेत्र में प्रस्थान किया जा सके; परंतु माँ ने वहू से कहा कि जल्दी कुछ भोजन तैयार कर दे। पत्नी ने घर के भीतर जाकर हलुआ बनाना शुरू किया। खुरपे की आवाज बाहर सुनाई दे रही थी। माँ ने तत्काल एक व्यंग बाण छोड़ा– "अरी बहू ! पुत्र युद्ध में शत्रुओं के हथियारों की खनक सुनकर घर आया और तू यहाँ भी लोहे की खनक सुनाने लगी ? अब मेरा बच्चा कहाँ जायेगा ?"

बाण ठीक निशाने पर बैठा। बिना पानी पिये ही दुर्गादास घर से रवाना हो गये और पूर्वनिश्चित दुर्ग को जीतकर ही लौटे। चरणों मे गिरते दुर्गादास को पुचकार कर माँ ने कहा– "अब तूने मेरे दूध की लाज रखी है।"

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः ॥
[उद्यमी श्रेष्ठपुरुष के पास लक्ष्मी आती है।]



२१५ : त्याग

क्या त्याग से ही सुयश मिलता है ?

हाँ; धन और जीवन का नाश निश्चित रूप से होता है, तब दूसरों की रक्षा के निमित्त बुद्धिमान लोग इसका त्याग करें तो अच्छा है—

धनानि जीवितं चैव,
परार्थं प्राज्ञ उत्सृजेत्।
तन्निमित्तो वरं त्यागो,
विनाशे नियते सति ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

धारा नगरी के एक राजा ने साढ़े चार सौ नव-दम्पतियों को एक किले में कैद कर रखा था। किसी ज्योतिषी ने उसे बताया था कि उतने दम्पतियों के रक्त से स्नान करने पर आपकी बीमारी मिट जायेगी। किले के संरक्षक शेरसिंह को दया आ गयी। उसने अपनी माता से कहा— "माँ! मैं ऐसे व्यापार की अनुमति चाहता हूँ, जिसमे एक की हानि और। नौ सौ का नफा हो। मेरे प्राण जायेंगे; परन्तु नौ सौ स्त्री-पुरुषो के प्राण बच जायँगे।"

माता ने उदारतापूर्वक प्रसन्नता के साथ वैसा करने की अनुमति दे दी। शेरसिंह ने पिछले द्वार से रात को सभी निरपराध दम्पतियों को छोड़ दिया। वे भागकर दूसरे शहर में जा बसे।

खबर पाते ही राजा ने शेरसिंह को पकड़ने के लिए जिन सैनिकों को भेजा, उनसे वीरतापूर्वक लड़ते हुए उसने वीरगति प्राप्त की। युद्ध-क्षेत्र में जहाँ शेरसिंह का सिर गिरा था, वहाँ हिन्दुओं ने और जहाँ धड़ गिरा था, वहाँ मुसलमानों ने स्मारक बना लिया। आज भी उसे "वन्दी छोड़ महाराज" के नाम से कृतज्ञतापूर्वक सब लोग याद करते हैं।

परहित सरिस धरम नहिं भाई ॥



३१६ : त्याग

क्या साधु-दर्शन का फल तत्काल मिलता है ?

हाँ; साधु तीर्थ रूप होते हैं, तीर्थ का फल तो देर से समय आने पर मिलता है; किन्तु सत्सग का फल शीघ्र मिल जाता है–

साधूनां दर्शनं पुण्यम्,
तीर्थभूता हि साधवः ।
कालेन फलते तीर्थम्,
सद्यः साधुसमागमः ।।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक आदमी किसी साधु का प्रवचन सुनने गया। उसमे त्याग के महत्व पर प्रकाश डाला गया था। उसने लौकी की शाक का त्याग कर दिया घर आकर पत्नी से कहा कि मैं लौकी का त्याग कर चुका हूँ, मेरे लिए दूसरी सब्जी बना देना। पत्नी ने कहा कि इन साधूड़ों के चक्कर में जो जाता है, वह लौकी का त्याग करते-करते एक दिन पत्नी का भी त्याग कर देता है, । मेरे घर में ऐसी बातें नही चलेगी। पति भी गुस्से में आ गया। पत्नी ने जलती लकड़ी उठा ली। मार के डर से पतिदेव भूखे ही भागे। नदी के तट पर रेती मे खड्डा करके उसमें सिर नीचा कर लेट गये, रात बीतने से पहले चोर आये, धन का बँट वारा करके चार गाँठे बनायी। इधर पतिदेव सपने मे पत्नी का विकराल रूप देखकर बड़बडाये–"खा लूंगा" । चोरों ने इसे भूत की आवाज समझी। धन छोड़कर वे भाग गये। पति भगदड से जागकर चारो धन की गाँठे उठाकर घर ले आया, बोला–"यह त्याग का फल है।" पत्नी बोली–

ऐसा सौगन जरुर करना । धन की गाँठे घर मे धरना ।।
त्याग करुँगी मैं भी नाथ । चला करुँगी तुमरे साथ ।।

✱

३१७ : त्याग

क्या त्याग से आदर प्राप्त होता है ?

हाँ; त्याग ही एक मात्र प्रशंसनीय है; अन्य गुणों के ढेर से भी क्या ? त्याग से ही जगत् में पशु, पत्थर और पेड़ पूजे जाते हैं–

त्याग एको गुणः श्लाघ्यः, किमन्यैः, गुणराशिभिः ।
त्यागाज्जगति पूज्यन्ते, पशुपाषाणपादपः ।।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक बार मिथिलानरेश नमिराज के शरीर में दाह ज्वर हुआ। वैद्यों ने इसके लिए चन्दन का लेप करने की सलाह दी। पति-सेवा का पुण्य लूटने के लिये अन्तःपुर की सभी एक हजार रानियों ने चन्दन घिसना आरम्भ किया तो दो हजार हाथो में पहनी हुई कुल आठ हजार सोने की चूड़ियों के बजने की ध्वनि से नरेश की शान्ति भंग होने लगी। उनकी अशान्ति बढ़ने लगी।

मन्त्री ने अन्तःपुर में सूचना भिजवा दी तो सभी रानियों ने एक एक चूड़ी प्रत्येक हाथ में रखकर शेष चूड़ियाँ उतार दी। आवाज बिलकुल बन्द हो जाने से आशंका हुई कि कहीं चन्दन की घिसाई तो बन्द नहीं हो गई है।

मन्त्री ने स्पष्ट किया कि चन्दन घिसा जाने पर भी आवाज क्यों बन्द है। स्पष्टीकरण सुनकर नरेश की विचारधारा में परिवर्तन हो गया। वे समझ गये कि शान्ति एकता में है, अनेकता में नहीं। उन्होंने व्याधि मिटने के बाद अनेकता के त्याग का संकल्प भी लिया। दाह ज्वर शान्त हो जाने पर वे साधु-जीवन अपनाकर तप करने लगे।

त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् ।।

(त्याग के बाद शान्ति प्राप्त होती है।)



३१८ : त्याग

क्या परोपकार के लिए त्याग आवश्यक है ?

हाँ; वादल प्रयत्नपूर्वक समुद्र के जल को ग्रहण करते हुए काले बन जाते है और उसी जल का त्याग करते हुए श्वेत। ग्रहण करने वाले और त्याग करने वाले के अन्तर को देखिये–

किसिणिज्जन्ति लयन्ता,
उदहिजलं जलहरा पयत्तेणं।
धवलीहुंति हु देन्ता,
देन्त-लयनन्तरं पेच्छ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक किसान के घर में गेहूँ का एक वोरा भरा पड़ा था; फिर भी वह मारे भूख के तड़प-तड़प कर मर गया। लोगो ने उसे कंजूस समझा और मूर्ख भी; परन्तु वह महान त्यागी था। यह रहस्य तव प्रकट हुआ जव राजपुरुष उस बोरे को उठाने लगे। वोरे के नीचे किसान के हाथ की लिखी एक चिट्ठी मिली। उसमें लिखा था– "अभी अकाल का समय है। यदि मैं इस बोरे के अनाज को खा जाता तो अगली फसल मे वोने के लिए किसी के पास एक दाना नही रहता। सभी किसानो को बीज के लिए भरपूर अनाज मिल सके–इसी दृष्टि से मैं भूखा रहा और अव भूख न सह सकने के कारण अपने प्राण छोड़ रहा हूँ। सव सुखी रहे।" यह सुनकर सव लोग उसकी प्रशंसा करने लगे। उसे त्याग से शान्ति मिल गयी थी।

त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्॥
(त्याग के वाद शान्ति प्राप्त होती है।)



३१९ : त्याग

क्या प्रार्थना में हाथ जोड़ने की अपेक्षा उदारता में उन्हें खोलना अधिक अच्छा है ?

हाँ! To fold the hands in prayer is well, but to open them in charity is better.

(टु फोल्ड दि हेंड्स इन प्रेयर इज वेल, बट टु ओपन देम इन चैरिटी इज बेटर)

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

भर्तृहरि राज्य का त्याग कर संन्यासी बन गये। एक बार उन्हे संन्यासी जीवन में ऐसा अवसर भी मिला, जब लगातार पाँच दिनो तक भूखा रहना पड़ा। भूख से व्याकुल होकर वे श्मशान मे गये। वहाँ एक शव जल रहा था और आटे के तीन पिण्ड भी पास ही कही पड़े थे। भर्तृहरि ने चिता में उन पिण्डों को सेंककर खाने का निश्चय किया। बाटी की तरह वे तीनों पिण्डों को सेक ही रहे थे कि उधर शंकरजी ने उन्हे प्रणाम किया। पार्वती ने पूछा कि देवाधिदेव होकर भी आप किसी मनुष्य को क्यों प्रणाम कर रहे हैं ? शकर जी ने कहा कि मैं किसी मनुष्य के शरीर को नहीं, उसके गुणों को प्रणाम करता हूँ। भर्तृहरि का त्याग महान् है। उनकी उदारता प्रशंसनीय है। यदि तुम देखना चाहो तो चलो मैं प्रत्यक्ष उनकी उदारता का परिचय तुम्हें करा दूं। ऐसा कहकर शकरजी भर्तृहरि के पीछे आकर खड़े हो गये। बोले–"भिक्षां देहि"।

यह सुनते ही भर्तृहरि ने तीनों बाटियाँ पीछे की ओर बढा दी और उधर मुड़कर देखा तक नही कि आखिर यह मांगने वाला कौन है। पार्वती उनके त्याग को देखकर अत्यन्त प्रभावित हुई।

दातुं शक्नोति यो वित्तं,
स शूरः स च पण्डितः॥

(जो धन का त्याग कर सकता है, वही वीर है—वही विद्वान है।)



"आदमी को दान लेने से रोकना ही सर्वोत्तम दान है और उसे ऐसा मार्ग दिखाना–इस योग्य बना देना कि भिक्षा की आवश्यकता ही न रहे; वही सर्वोत्तम भिक्षा है।"–क्या आप इससे सहमत है?

हाँ; तालमुद ने यही कहा था–The noblest charity is to prevent a man from acepting charity, and the best alms are to show and to enable a man to distence with alms. (दि नोवलेस्ट चैरिटी इज टु प्रिवेन्ट ए मैन फ्रोम एक्सेप्टिग चैरिटी; एण्ड दि बेस्ट आम्स आर टु शो एण्ड टु एनेवल ए मैन टु डिस्पेन्स विद् आम्स.)

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक तपस्विनी श्राविका के घर गोचरी के लिए कोई तपस्वी साधु आया। अन्न-जल दान करने के वाद ज्यों ही झोली उठाकर साधु घर से वाहर निकला, त्यों ही घर में सोने-चाँदी के टुकड़ों की वर्षा हुई। पडौस मे एक वेश्या का मन भी धन पाने को लुभाया। उसने वैसा ही करना चाहा, परन्तु नियमानुकूल शुद्ध आहार मिलने की आशा न रहने से कोई साधु गोचरी के लिए आने को तैयार न हुआ। अन्त में उसने एक भॉड को पकड़ा। उसे साधु वेश पहिनाकर अपने घर गोचरी लेने आने का आग्रह किया। भाड साधु वेप धारण करके आ गया। वेश्या ने खूव आदर-सत्कार के साथ वहुमूल्य आहार का दान किया, परन्तु धन नही वरसा। वह निराश होकर आसमान की ओर ताकने लगी, तभी नकली साधु वोला–

वह साधु वह श्राविका, तू वेश्या मैं भॉड।
थारा म्हारा भाग्य से, पत्थर पड़सी रॉड॥

३२१ : त्याग

क्या त्याग से ही आदर मिलता है?

हाँ; त्याग से संसार में पशुओं, पत्थरों और पेड़ों की पूजा होती है–

त्यागाज्जगति पूज्यन्ते पशुपाषाणपादपाः ।।

कोई दृष्टान्त ? सुनिये–

एक जाट को उसकी पत्नी बार-बार छोड़ जाने की धमकी दिया करती थी। यद्यपि जाट उसकी फ़रमाइशें पूरी कर दिया करता था; परन्तु वह नई-नई फरमाइशें प्रस्तुत करती रहती थी। आखिर परेशान होकर जाट ने एक चाल चली। उसने कहा कि जाना हो तो खुशी से चली जा; किन्तु मेरे गहने यहीं छोड जा। जाटनी ने गहने खोल कर सौंप दिये। फिर जाट ने कहा कि अब तो तू हमेशा के लिए मुझे छोडकर जा रही है। इसलिए एक घड़ा पानी भर दे। बाद में तो मैं खुद भरता रहूँगा। जाटनी घड़ा उठाकर पानी भरने चली गयी।

उधर जाट एक लट्ठ लेकर चौराहे पर खड़ा हो गया। ज्यों ही वह पानी का घड़ा सिर पर रखकर लौटी, त्यों ही जाट ने घड़े पर लाठी का प्रहार किया। घड़ा फूट गया। जाटनी के कपड़े गीले हो गये। जाट ने कहा–"निकल घर से ! तू मेरे घर में रहने योग्य नहीं है।" जाटनी चली गयी। लोगों ने सोचा कि जाटनी में ही जरूर कोई दोष होगा, जिससे उसे घर से बाहर निकाला गया। जाट का दूसरा सम्बन्ध हो गया। नई जाटनी अनुकूल निकली। जीवन सुख से बीतने लगा।

इच्छा पहली जाटनी है, जो नई-नई फरमाइशें करके जीव को परेशान करती रहती है। उसका त्याग करके मुक्ति से विवाह करने वाला जीवरूपी जाट सुखी हो सकता है।

चाह गई चिन्ता मिटी, मनुआ बेपरवाह।
जिसको कछू न चाहिये, सो ही शाहन्शाह ।।



३२२ : त्याग

क्या त्याग से शान्ति मिलती है?

हाँ; गीता कहती है–

त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् ।।

कोई दृष्टान्त? सुनिये–

दूब पर ओस की एक बूंद चमक रही थी। पास ही एक हीरा भी पड़ा था। बूंद भी हीरे की तरह चमचमा रही थी। एक पतिंगे ने समीप आकर हीरे से पूछा–"क्या ये आप के सम्बन्धी है?"

हीरे ने कहा–"छि: कहाँ बूंद और कहाँ मैं? दोनों के मूल्य में जमीन-आसमान का अन्तर है।" कुछ ही समय बाद एक प्यासा पक्षी आया। उसने हीरे पर चोंच मारी। यह देखकर ओस की बूंद बोली–"पक्षी भैया! वह अनमोल हीरा है; किन्तु दूसरो की प्यास बुझाना उसके बस की बात नही है। वह चिरजीवी है और मेरा जीवन क्षणिक है, फिर भी दूसरों की प्यास बुझाने मे अपने जीवन का बलिदान भी करना पड़े तो मुझे खुशी ही होगी। मेरे पास आओ, तुम्हारी इच्छा यहाँ पूर्ण होगी।"

पक्षी ने हीरे का त्याग किया। वह ओसबिन्दु के समीप आया। उसकी आशा के अनुरूप प्यास कम हुई। बूंद के बलिदान से उसका सूखा कण्ठ गीला हो गया।

पद्माकरं दिनकरो विकचं करोति
चन्द्रो विकासयति कैरवचक्रवालम् ।
नाभ्यर्थितो जलधरोऽपि जलं ददाति
सन्तः स्वयं परहितेषु कृताभियोगाः ।।

[सूर्य कमलों के समूह को विकसित करता है। चन्द्र कुमुदों के समुदाय को विकसित करता है। बिना माँगे मेघ भी जल प्रदान किया करता है (इन तीन उदाहरणों से सिद्ध होता है कि) जो साधु (सज्जन) होते है वे स्वय ही परोपकार में लगे रहते हैं।]

३२३ : त्याग

क्या त्याग ही धनाढ्यता है ?

हाँ; एक जर्मन कहावत के अनुसार उदारता (दानशीलता) स्वयं को धनवान् बनाती हैं और तृष्णा स्वयं निर्धनता को संकलित करती है–

Charity gives itself rich, covetousness hoards itself poor.

(चैरिटी गिव्ज इटसेल्फ रिच; कोवेटसनेस होड्स इटसेल्फ पुअर)

कोई दृष्टान्त ? सुनिये–

नदी ने कूप से कहा–"कितना संकुचित है तुम्हारा पेट ? वरसात के पानी को एकत्र कर उसे अपने पास सग्रहीत किये रहते हो। जरा भी इधर-उधर नहीं वहने देते। मुझे देखो मैं निरन्तर वहती रहती हूँ।"

कूप ने उत्तर दिया–"बहिन ! सग्रह करने में तो तुम भी किसी से पीछे नहीं हो। स्वच्छन्द विहरने वाले झरनो का जल अपने उदर में समाविष्ट कर तुम पुष्ट होती हो, परन्तु मेरे और तुम्हारे सग्रह में अन्तर है। मैं अपना जल आस-पास के सूखे खेतों की सिंचाई मे लगाता हूँ; परन्तु तुम अपना सारा जल एक विशाल खारे समुद्र मे डालती रहती हो, जहाँ उसकी कोई उपयोगिता नही। जल का त्याग तुम भी करती हो, मैं भी करता हूँ; परन्तु तुम्हारा त्याग अनुपयोगी है, मेरा उपयोगी।"

श्रोत्रं श्रुतेनैव न कुण्डलेन
दानेन पाणिर्न तु कङ्कणेन।
विभाति कायः खलु सज्जनानाम्
परोपकारेण न चन्दनेन॥

(कान की शोभा शास्त्रों के सुनने से है, कुण्डल से नहीं। हाथ की शोभा दान से है, कंगन से नही। सज्जनों का शरीर परोपकार से ही शोभा पाता है, चन्दन से नहीं।)



क्या सज्जन संकटों में भी अपना स्वभाव नही छोड़ता ?

हॉं; जो स्वभाव नही छोडता, वही शुद्ध है, कुलीन है, धैर्यशाली है, प्रशंसनीय है । सूर्य के किरणसमूह से तप्त वर्फ (पिघलकर) अपना शरीर छोड़ देता है; परन्तु शीतलता को नही छोडता–

शुद्ध स एव कुलजश्च स एव धीरः
श्लाघ्यो विपत्स्वपि न मुञ्चसि यः स्वभावम् ।
तप्तं यथा दिनकरस्यमरीचिजालै–
देह त्यजेदपि हिमं न तु शीतलत्वम् ।।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

जपान मे वालक जब स्कूल मे जाना प्रारम्भ करता है, तव अध्यापक उससे इस आशय की बातचीत करता है–

"तुम्हारा शरीर किससे टिकता है ?"

"अन्न मे ।"

"किस देश के अन्न से ?"

"जापान के ।"

"यदि जापान से अन्न न मिले तो तुम जी सकते हो ?

"नही, बिलकुल नही ।"

"जव तुम्हारा शरीर जापान के अन्न पर टिका है, तो क्या जापान को यह अधिकार नही कि जव उसे आवश्यकता हो, तुम्हारा शरीर मॉंग ले ?"

"हॉं साहव ! उसे ऐसा पूरा अधिकार है । हम भी उसकी रक्षा के लिए अपने शरीर को हँसते-हँसते त्याग करने को तैयार हैं ।"

इस प्रकार वचपन से ही जापानियों को त्याग के लिए तत्पर रहने की शिक्षा दी जाती है, जिसे वे प्राणपण से निभाते हैं ।

अङ्गीकृत सुकृतिन. परिपालयन्ति ।।

[सज्जन स्वीकृत कार्य को अच्छी तरह करते हैं ।]

*

३२५ : त्याग

क्य पति के विना पत्नी का जीवन सूना है ?

हाँ; बेताल कवि कहते है–

शशि विन सूनी रैन, ज्ञान विन हिरदो सूनो।
कुल सूनो विन पूत, पत्र विन तरुवर सूनो॥
गज सूनो बिन दन्त, सलिल विन सागर सूनो।
द्विज सूनो विन वेद, वास विन पुहुप जु सूनो॥
हरिनाम भजन बिन सन्त, अरु घटा शून्य बिन दामिनी।
बेताल कहे विक्रम सुनो, पति बिन सूनी कामिनी॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

कर्णसिह को युद्ध में विष बुझा वाण लगा। मूर्च्छित पति को सुरक्षित स्थान पर पहुँचवाकर महारानी कलावती युद्ध के मैदान मे कूद पड़ी। उसकी अपूर्व युद्ध कला मे पराजित होकर शत्रु सेना भाग खड़ी हुई। इधर कर्णसिह का उपचार करने वाले वैद्यों ने कहा कि यदि कोई अपने मुँह से विष को चूस ले तो इनकी जान बच सकती है। कर्णसिह दयालु था। वह अपनी रक्षा के लिए किसी दूसरे का जीवन खतरे में डालना नही चाहता था। रात को वह सोया था कि रानी ने सारा विष चूस लिया। प्रातः काल उठते ही कर्णसिह ने देखा कि कलावती ने मेरे लिए प्राणों का त्याग किया है तो उसके पतिव्रत धर्म से वहुत प्रभावित हुआ। लोगों ने जब कहा कि आप दूसरा विवाह कर लीजिए, तव उसने कहा– "जिसने मेरे लिए प्राणो का त्याग किया, उसके लिए क्या मै विषयों का भी त्याग नही कर सकता ?" कहने की आवश्यकता नहीं कि अपनी प्रिया की स्मृति वनाये रखने के लिए कर्णसिह अविवाहित ही रहे।

आपत्सु च गत नाथम् न त्यजेत्सा महासती॥

(सकटों मे फँसे पति का जो त्याग नही करती, वही महासती है)



३२६ : त्याग

क्या सम्पत्ति का दान और भोग करना चाहिए ?

हाँ; उसका सग्रह नही करना चाहिए। देखो, यहाँ मधुमक्खियों के द्वारा सचित अर्थ (मधु) को दूसरे ही लोग ले जाते है–

दातव्य भोक्तव्यं
सति विभवे सचयो न कर्त्तव्य.।
पश्येह मधुकरीणां,
सञ्चितमर्थं हरन्त्यन्ये ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

किसी महात्मा का धार्मिक प्रवचन सुनने के लिए एक कजूस भी आया। उसने कथा से प्रभावित होकर एक रुपया भेंट किया। महात्मा ने हाथ पकड़कर उस भाई को अपने निकट वैठा लिया। इस पर कजूस ने कहा– "लोभी होते है, वे पैसे वालों का सम्मान (आदर) करते है। आपने मुझे आदर क्यों दिया ? महात्मा होकर भी क्या सम्पत्ति का मोह आपसे छूट नही पाया है ?"

महात्मा ने उत्तर दिया – "भाई ! पुण्य कार्य मे आपने आज पहली वार एक रुपये का त्याग किया। इसलिए मैंने अपनी पंक्ति (त्यागियो की कतार) में आपको विठाया। यदि इसी प्रकार आप मे त्याग की वृत्ति पनपती रही तो स्वयं परमात्मा भी आपको अपने साथ विठायेगे।" उसी दिन से सेठ उदार वन गया।

यो न ददाति न भुङ्क्ते
सति विभवे नैव तस्य तद् द्रव्यम्।
तृणमयकृत्रिमपुरुषो
रक्षति शस्यं परस्यार्थे॥

[जो न देता है, न खाता है, धन होने पर भी वह धन उसका नहीं है। वह तो घास से वने हुए उस पुतले के समान है, जो दूसरो के लिए धान्य की रक्षा करता है।]

३२७ : दया

क्या दया ही धर्म की जड़ है ?

हाँ; दया से ही धर्म का जन्म होता है और अभिमान से पाप का—

दया धर्म का मूल है,
पाप-मूल अभिमान ।
तुलसी दया न छाँड़िये
जब लग घट में प्राण ।।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

एक श्रावक के घर किसी ने आठ दिनों का उपवास किया। पारणे के दिन श्रावक ने एक विशाल भोज का आयोजन किया। दूर-दूर तक निमंत्रण पत्र डाक से भेजे गये। लगभग दो हज़ार व्यक्तियों के लिए रसोई बनी। परन्तु वे चौमासे के दिन थे। रात को भीषण वर्षा के फलस्वरूप गाँव की नदी में बाढ़ आ गयी। किनारे बने झौपड़े बह जाने से सैकड़ों व्यक्ति बेघर हो गये। वे भूख से तड़पकर रो रहे थे। श्रावक के हृदय में दया का सागर लहराने लगा। उसने सभी अतिथिओं के सामने बेघर लोगों की दशा का वर्णन किया और कहा कि मैं इस रसोई से उनके पेट की ज्वाला शान्त करना चाहता हूँ। सब लोगों ने इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार किया और उन गरीबों को रसोई परोसने में मदद भी की।

शान्ति तुल्यं तपो नास्ति
न सन्तोषात्परं सुखम् ।
तृष्णाय न परो व्याधि
र्न च धर्मो दया परः ।।

(शान्ति के समान तप नहीं है — सन्तोष से बढ़कर सुख नहीं है — तृष्णा से प्रबल रोग नही है और दया से उत्तम कोई धर्म नहीं है।)



३२८ : दया

क्या धर्म के लिए दयालुता आवश्यक है ?

हाँ; दया ही धर्म की माता है–

धम्मस्स जणणी दया ।।

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक टी० टी० महोदय ने बड़ौदा जाने वाली ट्रेन के एक डिब्बे में देखा कि एक कोने में एक बूढ़ा बीमार आदमी पड़ा है और उसी डिब्बे मे दूसरी ओर एक खद्दरधारी सेठ अपने चार कुटुम्बियो के साथ आठ जनों की सीट रोककर बैठे हैं। चेकिग के समय बूढे ने अपनी अन्टी से दो रुपये निकाल कर कहा कि मेरे पास कुल इतने ही पैसे है । इन्हे आप दण्ड में गिन लीजिये या टिकिट वना दीजिए; परन्तु हर हालत मे मुझे बड़ौदा पहुँच जाने दीजिये अन्यथा मै वच न सकूंगा ।

उसके प्रति दया उमड़ आने से टी० टी० ने आराम से लेटने लायक सीट उसे दिला दी । इससे विगड़कर उस सेठ ने कहा कि आप जैसे लोग ही सरकार को हानि पहुँचाते है। उसे विना टिकिट यात्रा की अनुमति देने का आपको क्या हक है ?

इस पर टी० टी० ने कहा कि मै पहले मनुष्य हूँ, वाद मे और कुछ । क्या आप उसकी मरणासन्न बीमारी को नही देख रहे है ? रही वात टिकिट वनाने की, सो वह तो वनाऊँगा ही, परन्तु उसके लिए पैसे उससे नही, इस डिब्बे मे वैठे लोगो से लूँगा । मैं स्वय इस पुण्य-कार्य मे अपनी जेव से दो रुपये दे रहा हूँ । देखते-ही-देखते अन्य लोगो ने भी यहां तक कि एक अन्धी भिखारिन ने भी कुछ पैसे दे दिये परन्तु उस सेठ ने कुछ नही दिया ।

दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान ।
तुलसी दया न छाँड़िए, जब लग घट मे प्रान ।।

३२६ : दया

क्या दया दान से बढ़कर है ?

हाँ; कहते है–

दया दानाद्विशिष्यते ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

एक बार महाराज भगवतसिंहजी अपने पुत्र भोजराज कुँवर के साथ मोटर में बैठकर कहीं जा रहे थे। रास्ते में मोटर खराब हो गयी। दोनों नीचे उतरकर मोटरकार के आस-पास घूम रहे थे। ड्राइवर, क्लीनर आदि मोटरकार को सुधारने में लगे थे। उसी समय पिता-पुत्र ने देखा कि कुछ ही दूरी पर एक बुढ़िया कंडों से भरी हुई एक डलिया लेकर खड़ी थी। उसने पुकारा–"भाइयो ! जरा मेरी यह डलिया सिर पर रखवा दो।"

पिता की आज्ञा पाकर भोजराज कुँवर ने उसकी डलिया उठवा दी। वह भी वहाँ से चल दी, परन्तु उसके बाद उस रास्ते पर महाराज ने थोड़ी-थोड़ी दूर पर चबूतरे बनवा दिये, जिन पर थके मुसाफिर विश्राम भी कर सकें और अकेली औरत भी खुद अपनी डलिया उठा सके, किसी उठवाने वाले की प्रतीक्षा में समय नष्ट न हो।

दयाधर्मनदीतीरे,
सर्वे धर्मास्तृणाङ्कुराः ।
तस्यां शोषमुपेतायाम्,
कियत्तिष्ठन्ति ते चिरम् ॥

(दया धर्म रूपी नदी के किनारे पर सारे धर्म तिनकों के अंकुरों के समान है। उस दयारूपिणी नदी के सूखने पर भला वे कितनी देर ठहर सकते हैं ?)



३३० : दया

क्या दया ही समस्त सद्‌गुणों का मूल है ?

हाँ, जहाँ दया का अस्तित्व न हो, वह दीक्षा दीक्षा नही—भिक्षा भिक्षा नही, दान दान नही, तप तप नही, ज्ञान ज्ञान नही और ध्यान ध्यान नही—

न सा दीक्षा न सा भिक्षा,
न तद्दानं न तत्तपः ।
न तज्ज्ञान न तद्ध्यानम्
दया यत्र न विद्यते ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये—

एक गरीब किसान इधर-उधर से साठ रुपये उधार लेकर अपनी पत्नी का इलाज करने के लिए उसे नगर के एक अस्पताल मे ले गया। फिर उसे भरती करने के बाद डाक्टर के नुस्खे के अनुसार दवाएँ, फल आदि खरीदने के लिए बाजार मे जा रहा था कि रास्ते में उसकी जेब कट गयी। दूकान पर बिल चुकाते समय जब इसका पता उसे चला तो वह चिल्ला-चिल्ला कर रोने लगा। पास ही गिरहकटो का सरदार खड़ा था। उसे दया आ गयी। उसने किसान को अपनी ओर से पाँच रुपये मिलाकर उसे पैंसठ रुपये दे दिये और कहा कि पत्नी का अच्छी तरह इलाज कराओ। जेबकतरे से साठ रुपये मैं वसूल कर लूँगा। किसान ने उसे भगवान समझा और प्रणाम किया। दया ने उसकी आत्मा को महान् बना दिया—धर्मात्मा बना दिया।

न च धर्मो दयापरः ॥

(दया से बढकर कोई धर्म नही है।)



३३१ : दया

क्या दया ही धर्म का उद्गम है ?

हाँ; दया को धर्म का मूल कारण कहा गया है–

दया धर्म का मूल है,
पाप मूल अभिमान ।
'तुलसी' दया न छाँड़िये,
जब लग घट में प्राण ॥

कोई दृष्टान्त ?

सुनिये–

बात उन दिनों की है, जब बंगाल में सब बड़े-बड़े लोग इधर उधर आने-जाने के लिए पालकी का प्रयोग किया करते थे । एक दिन जगबन्धुदास पालकी में बैठकर किसी एक स्थान से दूसरे स्थान को जा रहे थे । सहसा उनकी दृष्टि एक ब्राह्मण पर पड़ी । वह बहुत दूर से चलकर आ रहा था; इसलिए बहुत थका हुआ था । मार्ग की धूप और धूल से भी वह परेशान हो रहा था । उसके भाल पर पसीने की बूँदें निकल आयी थीं ।

उसकी दयनीय दशा देखते ही जगबन्धुदास पालकी से नीचे उतर पड़े और सम्मानपूर्वक उस ब्राह्मण को पालकी में अपने पास बैठाकर उसके घर छोड़ दिया । इसके बाद ज्यों ही वे अपने गन्तव्य की ओर बढ़े, त्यों ही उनके सहृदय हृदय में यह विचार बिजली की तरह कौंध गया कि अमुक स्थान पर एक धर्मशाला की नितान्त आवश्यकता है । कुछ ही दिनों में वहाँ उन्होंने एक सुन्दर धर्मशाला बनवाकर खड़ी कर दी ।

"धम्मस्स जणणी दया ॥"

[धर्म की माता ही दया है ।]

